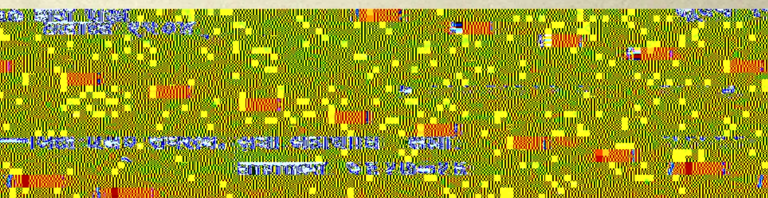
धम्मपद

भिक्षु धर्म रक्षित



६—पण्डितवग्गो

७—अरहन्तवग्गो

८—सहस्सवग्गो

९—पापवग्गो

१०—दण्डवग्गो

११—जरावग्गो

१३—लोकवग्गो

१४—बुद्धवग्गो

१७–कोधवग्गो

१८–मलवग्गो

१९—धम्मट्ठवग्गो

२०—मग्गवग्गो

२१—पकिण्णकवग्गो

२२—निरयवग्गो

२३—नागवग्गो

२४—तण्हावग्गो

२५—भिक्खुवग्गो

२६—ब्राह्मणवग्गो

वग्ग-सूची

धम्मपद

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धम्मपद

१—यमक वग्गो

मन ही प्रधान है

(चक्खुपाल स्थविर की कथा)

१, १

श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में चक्खुपाल नामक एक अन्धे अर्हत् भिक्षु थे। प्रातःकाल उनके टहलते समय पैरों के नीचे दबकर बहुत-सी बीरबहूटियाँ मर जाती थीं। एक दिन कुछ भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने कहा—भिक्षुओ! चक्खुपाल अर्हत् भिक्षु है, अर्हत् को जीवहिंसा करने की चेतना नहीं होती है।" तब उन भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! अर्हत्व की प्राप्ति के लिये पूर्व जन्म में पुण्य किये हुए होने पर भी चक्खुपाल क्यों अन्धा हो गये?" भगवान् ने कहा—चक्खुपाल ने अपने पूर्व जन्मों में एक बार वैद्य होकर बुरे विचार से एक स्त्री की आँखों को फोड़ डाला था, वह पाप-कर्म तब से चक्खुपाल के पीछे-पीछे लगा रहा, जो समय पाकर इस जन्म में अपना फल दिया है। जैसे बैलगाड़ी में नधे हुए बैलों के पैरों के पीछे-पीछे चक्के चलते हैं, वैसे ही व्यक्ति का किया हुआ पाप-कर्म अपना फल देने के समय तक उसके पीछे-पीछे लगा रहता है।"

यह कहकर उपदेश देते हुए भगवान् ने यह गाथा कही—

१—मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा,
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं'व वहतो पदं ॥ १ ॥

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उसका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई दूषित मन से वचन बोलता है या पाप

करता है, तो दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार कि चक्का गाड़ी खींचने वाले बैलों के पैर का।

मन ही प्रधान है।

[मट्ठकुण्डली की कथा]

१, २

श्रावस्ती में अदिन्नपूर्वक नामक एक महाकृपण ब्राह्मण को मट्ठकुण्डली नाम का इकलौता पुत्र था। सोलह वर्ष की अवस्था में मट्ठकुण्डली बीमार पड़ा। अदिन्नपूर्वक ने धन बरबाद होने के डर से उसकी समुचित दवा न करायी। वह मरणासन्न भगवान् को भिक्षाटन करते देख, उनपर मन को प्रसन्न करके मरकर तावतिंस (त्रायस्त्रिंश) देवलोक में उत्पन्न हुआ। अदिन्नपूर्वक को जब यह ज्ञात हुआ, तो उसने भगवान् को अपने घर भोजन के लिए निमंत्रित किया। भोजनोपरान्त उसने भगवान् से पूछा—"हे गौतम! आपको बिना दान दिये, बिना पूजा किये, बिना धर्म सुने, केवल मन में प्रसन्न होने मात्र से लोग स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं?"

"ब्राह्मण! न एक सौ, न दो सौ मेरे ऊपर मन को प्रसन्न करके स्वर्ग में उत्पन्न हुए व्यक्तियों की गणना नहीं है। मनुष्यों के पाप-पुण्य कर्मों को करने में मन अगुआ और प्रधान है। प्रसन्न मन से किया हुआ पुण्य-कर्म देवलोक अथवा मनुष्यलोक में उत्पन्न होनेवाले व्यक्तियों को, पीछे-पीछे लगी रहने वाली छाया के समान नहीं छोड़ता है।" भगवान् ने यह कह कर उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

२—मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी॥ २॥

मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है, मन उसका प्रधान है, वे मन से ही उत्पन्न होती हैं। यदि कोई प्रसन्न (स्वच्छ) मन से वचन बोलता है या काम करता है, तो सुख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है, जिस प्रकार कि कभी साथ नहीं छोड़ने वाली छाया।

वैर के शान्त होने का उपाय

(थुल्लतिस्स स्थविर की कथा)

१, ३

भगवान् के थुल्लतिस्स नामक एक चचेरे भाई थे। वह वृद्धावस्था में प्रव्रजित होकर श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में रहते थे। वे अपने से बड़े भिक्षुओं का आदर-सत्कार नहीं करते थे। एक दिन कुछ आगन्तुक भिक्षुओं ने उन्हें डाँटा, तब वे उठकर रोते हुए भगवान् के पास गये। वहाँ जाने पर भगवान् ने सब बात पूछ कर उल्टे थुल्लतिस्स को ही उन भिक्षुओं से क्षमा माँगने को कहा, किन्तु वे क्षमा न माँगे। तब भगवान् ने उनको पूर्व-जन्म में भी वैसा ही होने को बतलाकर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३— अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥ ३ ॥

उसने मुझे डाँटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया—जो ऐसा मन में बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त नहीं होता।

४—अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥ ४ ॥

उसने मुझे डाँटा उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया—जो ऐसा मन में नहीं बनाये रखते हैं, उनका वैर शान्त हो जाता है।

वैर से वैर नहीं शान्त होता

(काली यक्षिणी की कथा)

१, ४

दो स्त्रियाँ सौतिया डाह के कारण मरकर अनेक जन्मों से परस्पर बदला लेती हुई बुद्धकाल में यक्षिणी और कुलकन्या होकर श्रावस्ती में उत्पन्न हुई थीं।

कन्या सयानी होकर पति के घर गई। जब-जब उसे बच्चे होते, तब-तब यक्षिणी आकर उन्हें खा जाती। तीसरी बार वह अपनी माँ के घर आकर प्रसव की और जब बच्चा सयाना हो गया, तब अपने पति के साथ पुनः पति-गृह जाने के लिए प्रस्थान की। मार्ग में जेतवन महाविहार के पास बैठकर बच्चे को दूध पिलाती हुई, उस यक्षिणी को आती देख, डर के मारे भागती हुई भगवान् के पास गई और अपने नन्हें से पुत्र को भगवान् के पाद-पंकजों पर रखती हुई कही—"भन्ते ! इसे जीवन दान दीजिये।"

यक्षिणी को सुमन देवता ने जेतवन के द्वार पर ही रोक रखा था। भगवान् ने आनन्द को भेजकर उसे बुलाया और आकर खड़ा होने पर—"तू ऐसा क्यों कर रही है ? यदि तुम दोनों मेरे सम्मुख न आती, तो तुम्हारी शत्रुता कल्पों बनी रहती। क्यों वैर के प्रति वैर करती हो ? वैर अ-वैर से शान्त होता है, न कि वैर से।" कह कर इस गाथा को कहा—

५—नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥ ५ ॥

इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते, अ-वैर (मैत्री) से ही शान्त होते हैं—यही सदा का नियम है।

[गाथा के समाप्त होने पर यक्षिणी स्रोतापन्न हो गई। भगवान् के कहने पर उसे वह स्त्री अपने घर ले गई और तब से उसकी अग्र खाद्य-भोज्य से पूजा करने लगी। लोग सम्प्रति भी उस काली यक्षिणी को पूजते ही हैं।]

किसके कलह शान्त होते हैं ?

(कौशाम्बी के भिक्षुओं की कथा)

१, ५

कौशाम्बी के घोषिताराम में पाँच-पाँच सौ के दो गिरोह, विनयधर और धर्मकथित भिक्षु रहते थे। एक समय उनमें विनय सम्बन्धी साधारण बात पर फूट हो गई। भगवान् ने बहुत समझाया, किन्तु नहीं समझे। पीछे अपने दोषों को समझ कर परस्पर क्षमा याचना कर श्रावस्ती में भगवान् के पास गये। भगवान् ने—"भिक्षुओं ! तुम लोगों ने बहुत बड़ा दोष किया। तुम्हारे

समान दोषी कोई नहीं है, जो कि तुम लोग मेरे पास प्रव्रजित होकर, मेरे सिखाने पर भी नहीं सिखे, समझने पर भी नहीं समझे।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६—परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ॥ ६ ॥

अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं करते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे, जो इसका ख्याल करते हैं, उनके सारे कलह शान्त हो जाते हैं।

मार किसे नहीं डिगा सकता ?

(चूलकाल महाकाल की कथा)

१, ६

सेतव्य नगरवासी चूलकाल और महाकाल नामक व्यापारी भगवान् के पास आकर प्रव्रजित हो गये थे। महाकाल—जो बड़ा था, प्रव्रजित होने के बाद थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया। छोटा चूलकाल प्रव्रजित होकर भी घर-गृहस्थी और काम, विलास की ही बातों को सोचने में अपना समय बिताया।

एक समय भगवान् उनके साथ जब सेतव्य नगर गये, तब चूलकाल की स्त्रियों ने उसे पकड़कर श्वेत वस्त्र पहना दिया। दूसरे दिन महाकाल की स्त्रियों ने भी वैसा करना चाहा, किन्तु वह अपने ऋद्धिबल से निकल आये। भिक्षुओं के पूछने पर भगवान् ने—"भिक्षुओ! चूलकाल उठते-बैठते शुभ ही शुभ देखता विचारता था, जैसे कि प्रपात के तट पर कोई दुर्बल वृक्ष हो; किन्तु शुभ देखते हुए विचरने वाला महाकाल शैल पर्वत के समान अचल है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

७—सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं'व दुब्बलं ॥ ७ ॥

शुभ ही शुभ देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में असंयत,

भोजन में मात्रा न जानने वाले, आलसी और उद्योग-हीन पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को।

८—असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं'व पब्बतं॥ ८॥

अशुभ देखते हुए विहार करने वाले, इन्द्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान् और उद्योगी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगा सकता, जैसे वायु शैल पर्वत को।

काषाय वस्त्र का अधिकारी

(देवदत्त की कथा)

१, ७

एक समय राजगृहवासी उपासकों ने आयुष्मान् सारिपुत्र के उपदेश को सुनकर आपस में चन्दा कर भिक्षु संघ को भोजन दान दिया। उस समय एक सेठ ने चन्दे में एक महार्घ वस्त्र भी दिया और कहा कि यदि प्राप्त चन्दे से दान की सामग्री पर्याप्त न हो सके, तो इसे भी बेचकर दान दें और यदि पर्याप्त हो, तो जिसे चाहें इसे दान कर दें।

चन्दे से ही दान की सामग्री पूरी हो गई। इसके बाद वह वस्त्र, जो सारिपुत्र को देने योग्य था, उन्हें न देकर देवदत्त को दे दिये। वह उसे काट-कर चीवर बना पहन कर विचरण करता था। यह समाचार एक भिक्षु द्वारा श्रावस्ती में भगवान् को ज्ञात हुआ। उन्होंने देवदत्त को उस वस्त्र के अयोग्य बतलाते हुए कहा—

९—अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहिस्सति।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति॥ ९॥

जो बिना चित्तमलों को हटाये काषाय वस्त्र धारण करता है; वह संयम और सत्य से हीन काषाय वस्त्र का अधिकारी नहीं है।

१०—यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥ १० ॥

जिसने चित्तमलों को त्याग कर दिया है, शील पर प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है, वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है ।

सार को प्राप्त करने वाले

(अग्रश्रावकों की कथा)

१, ८

अग्रश्रावक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सर्वप्रथम भगवान् के पास जाते समय अपने पूर्व आचार्य संजय के पास गये और उसे भी चलने के लिये कहे । उसने इनकार करते हुए पूछा—"क्या लोक में मूर्ख बहुत हैं या पण्डित ?"

"मूर्ख बहुत हैं, पण्डित थोड़े ही हैं ।"

"यदि ऐसा है तो पण्डित लोग पण्डित श्रमण गौतम के पास जायेंगे और मूर्ख लोग मुझ मूर्ख के पास आयेंगे । मैं नहीं जाऊँगा, तुम लोग जाओ ।"

वे भगवान् के पास गये और सब कह सुनाये । भगवान् ने—"भिक्षुओ ! संजय से अपनी बुरी धारणा के कारण असार को सार और सार को असार मान लिया, किन्तु तुम लोग अपने पाण्डित्य से सार को सार और असार को असार जान कर असार को त्याग, सार को ही ग्रहण किये ।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

११—असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥ ११ ॥

असार को सार और सार को असार समझने वाले, मिथ्या संकल्प में पड़े वे सार को प्राप्त नहीं करते ।

१२—सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो ।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥ १२ ॥

जो असार को असार और सार को सार समझते हैं, वे सम्यक् संकल्प से युक्त सार को प्राप्त करते हैं ।

किसके चित्त में राग नहीं घुसता ?

(नन्द स्थविर की कथा)

१, ९

भगवान् के मौसेरे भाई आयुष्मान् नन्द भिक्षु जीवन से उदास रहा करते थे। उन्हें उनकी स्त्री का स्मरण हो आया करता था। भगवान् को जब यह ज्ञात हुआ, तब वे उन्हें तावतिंस-भवन में ले जा अप्सराओं को दिखलाकर कहे—'नन्द ! यदि तू इन्हें चाहता है तो ब्रह्मचर्य का पालन कर; हम इन्हें दिलाने के जमिन होते हैं।'' भिक्षुओं को जब इस बात का पता लगा, तब वे नन्द को नाना प्रकार से लज्जित करने लगे—"आयुष्मान् नन्द अप्सराओं के लिए नौकरी बजा रहे हैं। अप्सराओं द्वारा खरीद लिए गये हैं!" आयुष्मान् नन्द उनकी बातों से बहुत लज्जित हुए और शीघ्र ही समथ-विपश्यना करके अर्हत्व पा लिये।

एक दिन भिक्षुओं ने भगवान् से इस सम्बन्ध में पूछा। भगवान् ने—"भिक्षुओ ! पहले दिनों नन्द का जीवन ठीक से छाये हुए घर के समान था, किन्तु अब ठीक से छाये हुए घर के समान हो गया है। उसने अर्हत्व पा ली है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

१३—यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति॥ १३॥

जैसे ठीक से न छाये हुए घर में वृष्टि का जल घुस जाता है, वैसे ही ध्यान-भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है।

१४—यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति॥ १४॥

जैसे ठीक से छाये हुए घर में वृष्टि का जल नहीं घुसता है, वैसे ही ध्यानभावना से अभ्यस्त चित्त में राग नहीं घुसता है।

पापी शोक करता है

(चुन्द सूकरिक की कथा)

१, १०

श्रावस्ती में चुन्दसूकरिक नाम का एक गृहस्थ जीवन भर सूअरों को मार कर अन्त में सूअर के समान चिल्लाते हुए मर कर अवीचि नरक में उत्पन्न हुआ। जब भिक्षुओं को यह ज्ञात हुआ, तब उन्होंने भगवान् से पूछा। भगवान् ने—"भिक्षुओ! प्रमत्त प्रव्रजित हो या गृहस्थ, दोनों जगह शोक को ही प्राप्त होता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१५—इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहञ्ञति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ॥१५॥

इस लोक में शोक करता है और परलोक में जाकर भी; पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैले कर्मों का देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।

पुण्यात्मा प्रमोद करता है

(धार्मिक उपासक की कथा)

१, ११

श्रावस्ती में एक धार्मिक उपासक जीवन भर पुण्यकर्मों को करके मरकर तुषित देवलोक में उत्पन्न हुआ। जब भिक्षुओं को यह ज्ञात हुआ, तब उन्होंने भगवान् से पूछा। भगवान् ने—भिक्षुओ! अप्रमत्त प्रव्रजित हो या गृहस्थ, दोनों जगह प्रमोद ही करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१६—इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो ॥१६॥

इस लोक में मोद करता है और परलोक में जाकर भी पुण्यात्मा दोनों जगह मोद करता है। वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मोद करता है, प्रमोद करता है।

पापी सन्ताप करता है

(देवदत्त की कथा)

१, १२

देवदत्त जीवन भर भगवान् के साथ वैर करके, अन्त में जेतवन विहार की पुष्करणी के किनारे पृथ्वी में धँसकर अवीचि नरक में उत्पन्न हुआ। भिक्षुओं ने भगवान् से उसकी गति पूछी। भगवान् ने—"भिक्षुओ! देवदत्त अवीचि महानरक में उत्पन्न हुआ है। जो कोई प्रमाद के साथ विहरनेवाला प्रव्रजित हो या गृहस्थ, दोनों जगह सन्ताप ही करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१७—इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतन्ति तप्पति भीय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ॥१७॥

इस लोक में सन्ताप करता है और परलोक में जाकर भी "मैंने पाप किया है" सोच सन्ताप करता है। दुर्गति को प्राप्त हो और भी अधिक सन्ताप करता है।

पुण्यात्मा आनन्द करता है

(सुमनादेवी की कथा)

१, १३

अनाथपिण्डिक सेठकी सुमनादेवी नामकी एक कन्या थी, जो सकृदागामिनी होकर बचपन में ही मर गई। अनाथपिण्डिक रोता हुआ भगवान् के पास गया और उसकी गति पूछा। भगवान् ने—"गृहपति! सुमना मरकर तुषित देवलोक में उत्पन्न हुई है। जो कोई अप्रमाद के साथ विहरने वाला प्रव्रजित हो या गृहस्थ, दोनों जगह आनन्द करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१८—इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति भीय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ॥१८॥

इस लोक में आनन्द करता है और परलोक में जाकर भी; पुण्यात्मा दोनों जगह आनन्द करता है। "मैंने पुण्य किया है" सोच आनन्द करता है। सुगति को प्राप्त हो और भी अधिक आनन्द करता है।

श्रामण्य का अधिकारी

(दो मित्र भिक्षुओं की कथा)

१, १४

श्रावस्ती के दो मित्र गृहस्थ भगवान् का उपदेश सुनकर घरबार छोड़ प्रव्रजित हो गये। उनमें एक समथ-विपश्यना करता हुआ शीघ्र ही अर्हत्व पा लिया। दूसरा त्रिपिटक बुद्ध वचन को पढ़कर पाँच सौ भिक्षुकों को धर्म पढ़ाता था। उसके पास पढ़ने वाले सभी भिक्षु अर्हत्व पा लिये, किन्तु वह स्रोतापन्न भी न हुआ। एक दिन भिक्षुओं ने उन दोनों की चर्चा चलाई। उसे सुन भगवान् ने—"भिक्षुओं! ग्रन्थवाचक भिक्षु गाय चराने वाले ग्वाले के समान है, और विपश्यना में लगा रहने वाला भिक्षु पंचगोरस का उपभोग करने वाले स्वामी के समान।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

१९—बहुम्पि चे सहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो'च गावो गणयं परेसं न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥१९॥

चाहे कोई भले ही बहुत से ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु प्रमाद में पड़ यदि उसके अनुसार आचरण न करे, तो वह दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वाले की भाँति, श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता।

२०—अप्पम्पि चे सहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामञ्ञस्स होति।

चाहे कोई भले ही थोड़े ग्रन्थों का पाठ करने वाला हो, किन्तु धर्मानुकूल आचरण करता हो, राग, द्वेष और मोह को छोड़ सचेत और मुक्तचित्त वाला हो तथा इस लोक या परलोक में कहीं भी आसक्ति न रखता हो, तो वह श्रामण्य का अधिकारी होता है।

अप्पमादवग्गो

निर्वाण को प्राप्त करने वाले

(सामावती और मागन्दिय की कथा)

२, १

कौशाम्बी के राजा उदयन की रानी मागन्दिय भगवान् से वैर करके परम बुद्ध-भक्तिनी सामावती नामक राजा की दूसरी रानी को, उसकी पाँच सौ सहेलियों के साथ अन्तःपुर में आग लगवा कर जला डाली ! भिक्षुओं ने भिक्षाटन के समय उसे देखकर भगवान् के पास आ उनकी गति पूछी। भगवान् ने—"भिक्षुओ ! उन उपासिकाओं में कुछ तो स्रोतापन्न, कुछ सकृदागामी और कुछ अनागामी थीं। उनकी मृत्यु निष्फल नहीं हुई है। जो प्रव्रजित या गृहस्थ प्रमाद के साथ विहरने वाले हैं, वे हजारों वर्ष जीते हुए भी मरे ही हैं, किन्तु जो अप्रमाद के साथ विहरने वाले हैं, वे मरे हुए भी जीवित हैं। मागन्दिय जीवित होने पर भी, मरने पर भी, मरी ही है, किन्तु सामावती अपने सहेलियों के साथ मरी हुई भी जीवित है। भिक्षुओ ! अप्रमादी नहीं मरते।" कहकर इन गाथाओं को कहा—

२१—अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥ १ ॥

प्रमाद न करना अमृत-पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्यु-पद का। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे ही हैं।

२२—एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।
अप्पमादे पमोदन्ति आरियानं गोचरे रता ॥ २ ॥

पण्डित लोग अप्रमाद के विषय में इसे अच्छी तरह जान, बुद्धों के उपदिष्ट आचरण में रत हो, अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।

२३—ते झायिनो सातातिका निच्चं दल्ह-परक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बानं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥ ३ ॥

सतत ध्यान का अभ्यास करने वाले नित्य, दृढ़ पराक्रमी वीर पुरुष परमपद योग-क्षेम निर्वाण का लाभ करते हैं।

अप्रमादी का यश बढ़ता है

(कुम्भघासक की कथा)

२, २

राजगृह में कुम्भघोषक नाम का एक सेठ-पुत्र था। उसके माँ-बाप बचपन में ही चालीस करोड़ खजाने के निधान को बतला कर अहिवातक (प्लेग) रोग से मर गये थे। वह सयाना होने पर भी उस खजाने का उपयोग न करके नौकरी करता हुआ जीवन-यापन करता था। जब राजा बिम्बिसार को उस खजाने का पता लगा, तो उन्होंने उसे अपने यहाँ बुला मँगाया तथा सेठ पुत्र को कन्या देकर सेठ बना दिया।

एक दिन राजा उसके साथ भगवान् के पास आया और सब कह सुनाया। भगवान् ने—"महाराज! ऐसे जीने वाले का जीवन धार्मिक है, जो कि पाप कर्मों से वंचित हो संयम के साथ जीवन-यापन करता है। उसका यश बढ़ता ही है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२४—उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्य यसोभिवड्ढति ॥४॥

जो उद्योगी, सचेत, शुचि कर्मवाला तथा सोचकर काम करने वाला है, और संयत, धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता है।

अपने लिये द्वीप बनाना

(चुल्लपन्थक स्थविर की कथा)

२, ३

राजगृह के वेणुवन विहार में महापन्थक और चुल्लपन्थक नाम के दो भाई भिक्षु थे। महापन्थक प्रव्रजित होकर थोड़े ही दिनों में अर्हत् हो गये। चुल्लपन्थक मन्द-बुद्धि था। वह एक गाथा को चार महीने में भी नहीं याद कर सका। तब महापन्थक ने उसे विहार से निकल जाने को कहा। चुल्लपन्थक

दूसरे दिन प्रातः विहार से निकल ही रहा था कि शास्ता ने उसे रोक कर उपदेश दिया और प्रातः से दोपहर तक ही विपश्यना करके प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व प्राप्त कर लिया। सन्ध्या को भिक्षुओं ने भगवान् से कहा—"भन्ते! चुल्लपन्थक चार महीने में एक गाथा मात्र को भी याद नहीं कर सका, वह आज थोड़े ही समय में अर्हत् हो गया।" तब भगवान् ने—भिक्षुओ! उद्योगी पुरुष लोकोत्तर धर्म को प्राप्त करता ही है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२५—उट्ठानेनप्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥ ५ ॥

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा (अपने लिये ऐसा) द्वीप बनावें, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

अप्रमादी सुख पाता है

(बाल-नक्षत्र-घोषण की कथा)

२, ४

श्रावस्ती में बाल-नक्षत्र (=होली) की घोषणा हुई थी। सप्ताह तक न तो उपासक-उपासिकायें घर से निकलीं और न तो भिक्षु लोग ही नगर में भिक्षाटन के लिये गये। सप्ताह के व्यतीत होने पर आठवें दिन उपासकों ने भगवान् के साथ भिक्षु संघ को महादान देकर कहा—"भन्ते! बड़े ही दुःखपूर्वक हम लोगों के सात दिन बीते भूर्खों की गालियाँ सुनने वालों के कान फूटने के समान हो जाते थे। कोई किसी की लज्जा नहीं करता था।"

शास्ता ने उनकी बात सुन—"मूर्खों, गँवारों के काम ऐसे ही होते हैं, किन्तु बुद्धिमान लोग हुँडी के समान अप्रमाद की रक्षा करके अमृत महा-निर्वाण-सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते हैं।" कह कर इन दो गाथाओं को कहा—

२६—पमादमनुयुञ्जन्ति बालां दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं'व रक्खति ॥ ६ ॥

मूर्ख अनाड़ी लोग प्रमाद में लगते हैं, बुद्धिमान् श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की रक्षा करता है।

२७—मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं॥ ७॥

मत प्रमाद में फँसो, मत कामों में रत होओ, मत कामरति में लिप्त हो। प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते महान् सुख को प्राप्त होता है।

अज्ञानियों को देखता है

महाकस्सप स्थविर की कथा)

२, ५

एक समय महाकस्सप स्थविर प्रमादी और अप्रमादी लोगों को मरते, उत्पन्न होते देखते हुए राजगृह की पिप्फलि-गुहा में बैठे थे। उस समय भगवान् ने जेतवन महाविहार में विहरते हुए अवभास स्वरूप इस गाथा को कहा—

२८—पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुह असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठ'व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति।

जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह शोक रहित हो—शोकाकुल प्रजा को, प्रज्ञा रूपी प्रासाद पर चढ़कर—जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही धीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

बुद्धिमान् आगे हो जाता है

(दो मित्र भिक्षुओं की कथा)

२, ६

जेतवन महाविहार में दो मित्र भिक्षु भगवान् के पास प्रव्रजित होकर आरण्य में चले गये। उनमें एक सतत प्रयत्न करता हुआ थोड़े ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर लिया। दूसरा अपना सारा समय आग तपाने और खा-पीकर

सोने में बिता दिया। जब वे वर्षावास के बाद भगवान् के पास आये तब भगवान् ने पूछा—"क्या अप्रमाद के साथ श्रमण धर्म किया ?"

इसे सुनकर दूसरे ने कहा—"भन्ते ! इसे अप्रमाद कहाँ ? जाने के समय से लेकर सोकर नींद की करवट बदलते हुए समय बिताया।"

"किन्तु तू भिक्षु !"

"भन्ते ! मैं प्रातः ही लकड़ी ला आग करके प्रथम पहर को आग तापते हुए बैठकर न सोते हुए ही बिताता था।"

तब भगवान् ने—"तुम प्रमत्त होकर समय बिता 'अप्रमत्त हूँ' कह रहे हो, और अप्रमत्त को प्रमत्त बना रहे हो। तुम मेरे पुत्र के सन्मुख दुर्बल घोड़े के समान हो, किन्तु यह तुम्हारे सन्मुख तेज घोड़े के समान है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२९—अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं'व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो ॥ ९ ॥

प्रमादी लोगों में अप्रमादी, तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लागों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान उसी तरह आगे निकल जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।

अप्रमाद की प्रशंसा होती है

(महाली के प्रश्न की कथा)

२, ७

वैशाली का महाली लिच्छवी कूटागारशाला में भगवान् के पास जाकर "भन्ते ! क्या आपने इन्द्र को देखा है ?" आदि अनेक प्रश्नों को पूछा। भगवान् ने प्रश्नों का उत्तर देकर—"महाली ! इन्द्र अप्रमाद में जुटा हुआ ऐसी सम्पत्ति को प्राप्त किया। अप्रमाद की बुद्ध आदि सभी आर्य-जन प्रशंसा करते हैं। अप्रमाद से ही सारी लौकिक-लोकोत्तर सम्पदा की प्राप्ति होती है। उपदेश देते हुये इस गाथा को कहा—

३०—अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥ १० ॥

अप्रमाद (=आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना। सभी अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं और प्रमाद की सदा निन्दा होती है।

अप्रमादी बन्धनों को जला डालता है

(किसी भिक्षु की कथा)

२, ८

कोई एक भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान सीख कर आरण्य में चला गया। जब वह बहुत प्रयत्न करने पर भी अर्हत्व न पा सका, तब पुनः लौट कर भगवान् के पास आने लगा। मार्ग में दावाग्नि भभक उठा। वह डर कर एक छोटे पर्वत पर चढ़ गया और आग को देखकर सोचने लगा—"जिस प्रकार यह आग छोटे-बड़े सभी तृणों को जलाते जा रही है, उसी प्रकार यह आर्य-मार्ग का ज्ञान छोटे-मोटे सभी क्लेशों को जला देता होगा।" भगवान् ने गन्ध-कुटी में बैठे हुए ही उसके विचारों को देख—"ऐसा ही है भिक्षु! ऐसा ही है भिक्षु! ज्ञान की आग से इन छोटे-मोटे सभी क्लेशों को जला देना चाहिये, ताकि वे फिर उत्पन्न होने योग्य न रह जायँ।" कहते हुए उसके सम्मुख होकर उपदेश देने के समान इस गाथा को कहा—

३१—अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
सञ्ञोजनं अणुं थूलं डहं अग्गी,व गच्छति॥ ११॥

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है या प्रमाद से भय खानेवाला है, वह आग की भाँति छोटे मोटे बन्धनों को जलाते हुए जाता है।

अप्रमादी का पतन नहीं

(निगमवासी तिस्स स्थविर की कथा)

२, ९

श्रावस्ती के निकट निगम ग्राम के तिस्सस्थविर प्रव्रजित होने के समय से सदा अपने ग्राम में ही भिक्षाटन करते थे। एक दिन भिक्षुओं ने भगवान् से

कहा कि वह भिक्षु गृहस्थों में हिलमिलकर विहरता है, अन्यत्र भोजन के लिए जाता भी नहीं। भगवान् ने तस्सस्थविर को बुलाकर पूछा—"क्या भिक्षु! यह सत्य है कि तू गृहस्थों में हिलमिलकर विहरता है?" उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा—"भन्ते! मुझे जहाँ कहीं भी रूखा-सूखा मिल जाता है, उसी से संतोष कर लेता हूँ, फिर भोजन के लिए नहीं घूमता। गृहस्थों में हिलमिलकर क्या विहरूँगा।" तब भगवान् ने—"साधु! भिक्षु!! तेरे जैसे ही अन्य भिक्षुओं को भी होना चाहिये। ऐसे भिक्षु का मार्ग-फल से कभी पतन नहीं होता, प्रस्तुत वह निर्वाण के निकट पहुँचा होता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३२—अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय निब्बानस्सेव सन्तिके॥ १२॥

जो भिक्षु अप्रमाद में रत है, या प्रमाद से भय खानेवाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, वह तो निर्वाण के समीप पहुँचा हुआ है।

३—चित्तवग्गो

चित्त चंचल है

(मेघिय स्थविर की कथा)

३, १

एक समय भगवान् चालिका नगर में चालिक नामक पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् मेघीय स्थविर भगवान् की सेवा-टहल में लगे थे। तब आयुष्मान् मेघिय भगवान् के पास आकर किमिकाला नदी के किनारे के आमों के बगीचा में जाकर विहार करने के लिए अनुमति माँगे। भगवान् के "मेघिय! ठहरो, अभी मैं अकेला हूँ, किसी दूसरे भिक्षु को आ लेने दो।" कह कर मना करने पर भी नहीं रुके और वहाँ चले गये। उनका चित्त एकाग्र नहीं हुआ। नाना प्रकार के वितर्क उठने लगे। तब सन्ध्या को लौट कर वह भगवान् के पास आये और सब कह सुनाये। भगवान् ने—"मेघिय! भिक्षु को इच्छाचारी नहीं होना चाहिये, यह चित्त क्षणिक है, इसे अपने बस में रखना चाहिये।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३३—फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो'व तेजनं॥ १॥

चित्त क्षणिक है, चंचल है, इसे रोक रखना कठिन है और इसे निवारण करना भी दुष्कर है। (ऐसे चित्त का) मेधावी पुरुष उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनाने वाला बाण को।

३४—वारिजो'व थले खित्तो ओकमोकत-उब्भतो।
परिफन्दतिदं चित्तं मारधेय्यं पहातवे॥ २॥

जैसे जलाशय से निकाल कर स्थल पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फन्दे से निकलने के लिये तड़फड़ाता है।

चित्त का दमन सुखदायक है

(किसी भिक्षु की कथा)

३, ३

कोसल देश में पर्वत के पास मातिगाम नाम का एक गाँव था। वहाँ एक उपासिका चार प्रतिसम्भिदा और पाँच अभिज्ञा के साथ अनागामी फल को प्राप्त थी। जो भिक्षु उसके यहाँ रहते थे, वह सबके चित्त को जानकर भोजन आदि का प्रबन्ध करती थी। एक भिक्षु उसकी प्रशंसा सुनकर वहाँ गया और थोड़े ही दिनों में लौट आया। आने पर भगवान् ने पूछा—"क्या भिक्षु! तू वहाँ नहीं वास पाया?"

"हाँ भन्ते! वहाँ नहीं रहा जा सकता है। वह उपासिका सोचने के क्षण ही सब जान लेती है और पृथग्जन भला भी सोचते हैं, बुरा भी सोचते हैं। बुरा सोचने के समय वह सामान के साथ चोर को पकड़ने के समान चित्त से जान कर निग्रह करेगी, मैं वहाँ नहीं रह सकता।"

तब भगवान् ने उस भिक्षु को पुनः वहीं जाने के लिए कहा, किन्तु वह जाने के लिए राजी नहीं हुआ। ऐसा देखकर भगवान् ने—"भिक्षु! यदि तू वहाँ नहीं जाता है, तो अपने चित्त मात्र की रक्षा कर, उसी का निग्रह कर।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

३५—दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकाम निपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखवाहं॥ ३॥

जिसका निग्रह करना बड़ा कठिन है, जो बहुत हल्के स्वभाव का है, जो जहाँ चाहे झट चला जाता है—ऐसे चित्त का दमन करना उत्तम है। दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।

सुरक्षित चित्त सुखदायक है

(किसी उत्कण्ठित भिक्षु की कथा)

३, ३

श्रावस्ती के एक सेठ का पुत्र बड़ी श्रद्धा के साथ प्रव्रजित हो, धर्म और विनय की महानता को देखकर उत्कण्ठित हो गया। उसने एक दिन भिक्षुओं से

कहा—"मैं घर में रहकर धर्म कर सकता हूँ। यह धर्म और विनय इतने महान् हैं कि सबका पालन नहीं किया जा सकता।" उन्होंने भगवान् से कहा। भगवान् ने उस भिक्षु को बुलाकर—"भिक्षु! क्यों उत्कण्ठित हुए हो, यदि तू एक की रक्षा कर सकोगे, तो और की रक्षा करने की जरूरत नहीं है, तू केवल एक चित्त मात्र की रक्षा कर।" उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३६—सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ काम निपातिनं।
चित्तं रक्खेय्य मेधावी चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥ ४ ॥

जिसे समझना आसान नहीं, जो अत्यन्त चालाक है, जो जहाँ चाहे झट चला जाता है—ऐसे चित्त की बुद्धिमान् पुरुष रक्षा करे। सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है।

चित्त का संयम

(भागिनेय्य संघरक्खित स्थविर की कथा)

३, ४

श्रावस्ती के संघरक्खित स्थविर के छोटे भाई के पुत्र का नाम भागिनेय्य संघरक्खित था। वह स्थविर के पास प्रव्रजित होकर श्रमणधर्म में लग गया। कुछ दिनों के बाद वह दो वस्त्रों को दान पाकर, एक आचार्य को देने के लिए उनके पास गया। स्थविर के पास पर्याप्त चीवर थे। उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। भागिनेय्य संघरक्खित ताड़ का पंखा लेकर उन्हें झल रहा था। झलते हुए उसने—"आचार्य मेरे दान को नहीं लेते हैं, अब मुझे यहाँ रहने से क्या लाभ? इस वस्त्र का बेचकर एक भेड़ खरीदूँगा और जब कुछ भेड़ें हो जायेंगे, तब उन्हें भी बेचकर स्त्री लाऊँगा। पुत्र उत्पन्न होने पर स्त्री के स्थविर के दर्शन के लिये आऊँगा। मार्ग में स्त्री के बात न मानने पर उसे इस प्रकार मारूँगा।" सोचते हुए पंखे से स्थविर को मारा। स्थविर ने उसके वितर्क को जान कर कहा—"आवुस! तूने स्त्री को मारते हुए मुझे ही मारा?

भागिनेय्य संघरक्खित ने यह सोच कर कि स्थविर मेरी बात जान गये, भागना शुरू किया। उसे दूसरे तरुण श्रामणेर दौड़ कर पकड़े और भगवान् के

पास ले गये। भगवान् ने सब पूछकर उसे उपदेश देते हुए—"भिक्षु ! मत चिन्ता करो, यह चित्त दूरगामी है।" यह कह कर इस गाथा को कहा—

३७—दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥ ५ ॥

दूरगामी, अकेला विचरनेवाले, निराकार, गुहाशयी इस चित्त का जो संयम करेंगे, वही मार के बन्धन से मुक्त होंगे।

जागृत पुरुष को भय नहीं

(चित्तहत्थ स्थविर की कथा)

३, ५

श्रावस्ती का एक गृहस्थ खोये हुए बैल को खोजते हुए जंगल में गया। वहाँ भिक्षुओं के पास बचे हुए भात को खाकर प्रव्रजित हो गया। दो चार दिन के बाद उत्कण्ठित होकर चीवर छोड़ दिया। फिर घर से खिन्न होकर जाकर प्रव्रजित हुआ। इस प्रकार वह छः बार प्रव्रजित हुआ और गृहस्थ बना। सातवीं बार जब प्रव्रजित होने के लिए भिक्षुओं के पास गया, तब वे उसे प्रव्रजित करना नहीं चाहे, किन्तु उसके बहुत प्रार्थना करने पर प्रव्रजित कर दिये। उसने अबकी बार कुछही दिनों में अर्हत्व पा लिया। एक दिन भिक्षुओं ने पूछा—'आवुस चित्तहत्थ ! कब गृहस्थ होओगे, इस बार तो विलम्ब हुआ ?" उसने कहा—"भन्ते ! अब गृहस्थी का आलय नहीं है।" भिक्षु यह सुनकर भगवान् के पास जाकर कहे—"भन्ते ! यह भिक्षु पहले छः बार गृहस्थ होकर सातवीं बार गृहस्थी के प्रति अनाशक्ति कह रहा है।" भगवान् ने—भिक्षुओ ! पहले अ-स्थिर चित्त के समय वह घर गया और आया, अब इसके पाप-पुण्य प्रहीण हो गये हैं।" कहते हुए इन गाथाओं को कहा—

३८—अनवट्ठित चित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥ ६ ॥

जिसका चित्त अ-स्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा चंचल है, उसकी प्रज्ञा पूर्ण नहीं हो सकती।

३९—अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।
पुञ्ञपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं ॥ ७ ॥

जिसके चित्त में राग नहीं, जिसका चित्त दोष से रहित है, जो पाप पुण्य विहीन है, उस जागृत पुरुष को भय नहीं।

मार से युद्ध कर अपनी रक्षा करे

(पाँच सौ विपश्यक भिक्षुओं की कथा)

३, ६

श्रावस्ती में पाँच सौ भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान ग्रहण कर सौ योजन दूर एक जंगल में ध्यान भावना करने के लिए गये। जंगल के देवताओं ने उन्हें भय भैरव दिखलाया और वे पुनः भगवान् के पास लौट आये। भगवान् ने उन्हें फिर वहीं भेजा और कहा कि वे वहाँ 'करणीयमेत्त' सूत्र का पाठ करके रहें

भिक्षु पुनः वहाँ गये और भगवान् के बतलाये हुये उपाय से रहते हुए ध्यान-भावना करने लगे। अबकी बार देवता उनकी हर एक प्रकार से रक्षा करने का प्रबन्ध किये। भगवान् ने जब देखा कि वहाँ विहरते हुए उनका चित्त एकाग्र होकर अनित्यता के प्रत्येक क्षण में लग गया है, तब गन्ध कुटी से ही उनके सम्मुख होकर उपदेश देने के समान इस गाथा को कहा—

४०—कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा ।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥ ८ ॥

इस शरीर को घड़े के समान (अनित्य) जान, इस चित्त को नगर के समान (रक्षित और दृढ़) ठहरा, प्रज्ञा रूपी हथियार से मार से युद्ध करे। जीत लेने पर अपनी रक्षा करे तथा आसक्ति रहित हो।

शरीर क्षणभंगुर है

(पूतिगत्त तिस्स स्थविर की कथा)

३, ७

श्रावस्ती का एक गृहस्थ अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ। उसका नाम तिस्स स्थविर पड़ा। कुछ दिनों के बाद स्थविर के शरीर में बहुत से फोड़े

हुए। बहुत कुछ दवा करने पर भी जब अच्छा नहीं हुआ, तब उसके सहायक भिक्षु छोड़ दिये। वह अत्यन्त घृणितावस्था को प्राप्त हो चारपाई पर पड़े पड़े कराहता था। एक दिन भगवान् ने उसे अपनी महाकरुणा-समापत्ति में देखा। दिन निकलने पर पानी गर्म कराया तथा स्वयं जाकर स्नान कराया। स्नान के पश्चात् उसे चारपाई पर सुलवा दिया। उसी समय भगवान् ने "भिक्षु! यह तेरा शरीर विज्ञान रहित हो काष्ठ की भाँति भूमि पर पड़ा रहेगा।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

४१—अचिरं वत'यं कायो पठविं अधिसेस्सति।
छुड्डो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं'व कलिङ्गरं॥ ९॥

अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना रहित हो निरर्थक काष्ट की भाँति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।

झूठे मार्ग पर लगा चित्त अहितकर

(नन्द गोपाल की कथा)

३, ८

श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक सेठ की गौवों की रक्षा करने वाला नन्द नाम का एक ग्वाला था। वह भगवान् को भिक्षु संघ के साथ निमंत्रित करके एक सप्ताह पञ्चगोरस दान दिया। सातवें दिन जब भगवान् दानानुमोदन करके चलने लगे, तब वह भगवान् का पात्र लेकर पीछे-पीछे चला। थोड़ी दूर जाने पर भगवान् ने उससे पात्र लेकर लौट जाने को कहा। वह लौट ही रहा था कि एक व्याधे ने उसे मार डाला। पीछे आने वाले भिक्षुओं ने उसे मरा देख भगवान् से कहा—"भन्ते! यदि आप उसके यहाँ दान ग्रहण करने नहीं गये होते तो वह नहीं मरता।" यह सुनकर भगवान् ने—भिक्षुओ! मैं जाता या नहीं जाता, वह मृत्यु से नहीं छूटता। जिसे चोर या वैरी नहीं करते हैं, उसे इन प्राणियों के भीतर बुरा और झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

४२—दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे ॥ १० ॥

जितनी हानि शत्रु शत्रु को या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है ।

ठीक मार्ग पर लगा चित्त हितकर

(सोरेय्य स्थविर की कथा)

३, ९

सोरेय्य नगर के सेठ का पुत्र एक दिन रथ पर बैठा हुआ बहुत से लोगों के साथ नहाने जा रहा था । उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन सोरेय्य नगर में भिक्षाटन के लिये चीवर पहन रहे थे । सेठ-पुत्र ने उनके सुवर्ण सदृश्य शरीर को देख कर मन में सोचा—"अहो ! यही स्थविर मेरी स्त्री होते या मेरी स्त्री ऐसी ही रूपवती होती !" सोचने के क्षण ही उसका पुरुष-लिङ्ग अन्तर्हित हो गया और स्त्री लिङ्ग प्रगट हुआ । उसने वहाँ से रथ से उतर कर दूसरों को बिना जनाये ही तक्षशिला की राह लिया । तक्षशिल पहुँचने पर उसका विवाह एक सेठ के साथ हुआ और उसे दो पुत्र उत्पन्न हुए । इसी बीच सोरेय्य नगर के उसके साथी व्यापार हेतु तक्षशिला गये थे । उन्होंने जब जाना तब आयुष्मान् महाकात्यायन को निमन्त्रित करके महादान दे क्षमा कराया । स्थविर के क्षमा करते ही उसे पुनः पुरुष-लिङ्ग उत्पन्न हो गया । वह अपनी इस गति से उद्विग्न हो महाकात्यायन के पास ही प्रव्रजित भी हो गया ।

एक समय महाकात्यायन उस सोरेय्या स्थविर के साथ श्रावस्ती आये । सोरेय्य स्थविर को पहले पुरुष होने के समय दो पुत्र थे और स्त्री होने के समय दो, इस तरह उस चार पुत्रों के पिता से लोग पूछा करते थे कि उन्हें किन पुत्रों पर अधिक प्रेम है । वे सदा कहा करते थे कि जो मेरे पेट से उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं पर अधिक प्रेम है किन्तु एक दिन पूछने पर उन्होंने कहा कि

मुझे कोई भी प्यारा नहीं है। तब भिक्षु इसे सुनकर भगवान् से कहे। भगवान् ने—"भिक्षुओं! मेरे पुत्र के चित्त को ठीक मार्ग पर लगने के समय से किसी पर भी उसे स्नेह नहीं है, जिस सम्पत्ति को माता पिता नहीं दे सकते हैं, उसे इन प्राणियों के भीतर प्रवर्तित हुआ ठीक मार्ग पर लगा चित्त देता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

४३—न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे॥ ११॥

जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बन्धु नहीं कर सकते हैं, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।

४—पुप्फवग्गो

शैक्ष्य जीतेगा

(पाँच सौ भिक्षुओं की कथा)

४, १

पाँच सौ भिक्षु जनपद की चारिका से लौटकर सन्ध्या को जेतवन की आसन-शाला में बैठे, अपने विचरे हुए प्रदेशों की पृथ्वी के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे—'वहाँ की पृथ्वी काली है, वहाँ की पृथ्वी पीली है।" आदि भगवान् ने आकर बात-चीत के विषय में पूछा—"भिक्षुओ यह बाह्य पृथ्वी है, तुम लोगों को अध्यात्मिक पृथ्वी में परिकर्म करना चाहिये।" कह कर इन दो गाथाओं को कहा—

४४—को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥ १॥

इस पृथ्वी तथा देवताओं सहित इस यमलोक को कौन जीतेगा? कौनकुशलपुरुषपुष्प की तरह भली प्रकार से उपदिष्ट धर्म-पदों को चुनेगा?

४५—सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥ २ ॥

शैक्ष्य इस पृथ्वी तथा देवताओं सहित यमलोक को जीतेगा। कुशल शैक्ष्य पुष्प की तरह धर्म-पदों को चुनेगा।

शरीर को असार जानो

(मरीचि कर्मस्थानिक स्थविर की कथा)

४, २

श्रावस्ती में शास्ता के पास एक भिक्षु ने कर्मस्थान को ग्रहण कर जंगल में जो बहुत प्रयत्न किया, किन्तु अर्हत्व नहीं पा सका। लौटते समय वह मार्ग में मरीचि को देख उसके असार होने को सोचता हुआ अचिरवती (= राप्ती) नदी में स्नान कर किनारे बैठ गया। नदी में पानी के फेन को उठ-उठ कर

फूटते हुए देख विचार करने लगा कि जिस प्रकार यह फेन उठ कर फूटते हैं वैसे ही यह शरीर भी है। भगवान् ने गंधकुटी में बैठे हुए उस भिक्षु के विचारों को जानकर—"भिक्षु ! यह शरीर ऐसा ही है, फेन और मरीचि के समान उत्पन्न और नाश होने के स्वभाव वाला है।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

४६—फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥३॥

इस शरीर को फेन के समान तथा (मृग-) मरीचिका के समान (असार) जान, मार के फन्दे को तोड़कर यमराज की दृष्टि से परे हो जाय।

मृत्यु पकड़ ले जाती है

(विडूडभ की कथा)

४, ३

कोसलनरेश प्रसेनजित् का पुत्र विडूडभ—जो शाक्यों की दासी-पुत्री वासभखत्तिया का पुत्र था—शाक्यों का विनाश करने के लिये तीन बार धावा बोला; किन्तु भगवान् ने तीनों बार भी मार्ग में जाकर विडूडभ को लौटा दिया, किन्तु चौथी बार शाक्यों के पूर्व-जन्म के कर्म-विपाक को बलवान देख, भगवान् विडूडभ को नहीं रोकने गये। उसने कपिलवस्तु जाकर शाक्यों का बध करा, शाक्य-कुल को उच्छिन्न कर, रात में अचिरवती (=राप्ती) नदी के किनारे पड़ाव डाला। उसके महा-पातक कर्म के कारण अकस्मात् आधी रात में बड़े जोरों की बाढ़ आई और विडूडभ के साथ उसकी सारी सेना नदी में बह गई।

भिक्षुओं ने इस समाचार को सुनकर एक दिन धर्म-सभा में इसकी चर्चा की। भगवान् ने उसे सुन—"भिक्षुओ ! इन प्राणियों के मनोरथ के बिना पूर्ण हुए ही मृत्यु उसी प्रकार जीवितेन्द्रिय का नाश कर चारों अपाय रूपी। महासमुद्रों में डुबा देती है, जिस प्रकार कि सोये हुए ग्राम को बड़ी बाढ़।" कह कर इस गाथा को कहा—

४७—पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चु आदाय गच्छति ॥ ४ ॥

(काम भोग रूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी प्रकार पकड़ ले जाती है, जिस प्रकार कि सोये हुए ग्राम को बड़ी बाढ़ ।

मृत्यु वश में कर लेती है

(पति-पूजिका की कथा)

४, ४

श्रावस्ती में एक परम बुद्ध भक्तिनी स्त्री थी। उसे जन्म के समय जातिस्मर ज्ञान हो आया था, जिससे वह जानती थी कि देवलोक के मालभारी देवपुत्र के पास से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुई है। वह उसे पुनः चाहती हुई पुण्य कर्मों के अन्त में कहा करती थी—"इस पुण्य से मैं अपने स्वामी के पास उत्पन्न होऊँ।" चूँकि वह सदा पति को ही चाहती थी, अतः भिक्षुओं ने उसका नाम पतिपूजिका रख दिया था।

एक दिन अचानक सन्ध्या को उसकी मृत्यु हो गई। दूसरे दिन जब भिक्षुओं ने उसकी मृत्यु का समाचार सुना, तब उन्हें बहुत संवेग उत्पन्न हुआ और उन्होंने भगवान् से कहा—"भन्ते! प्राणियों की आयु बहुत थोड़ी है, पतिपूजिका प्रातःकाल हम लोगों को भोजन परस कर सन्ध्या को मर गई।' शास्ता ने—"भिक्षुओ! प्राणियों की आयु बहुत थोड़ी है, ऐसा होने पर भी काम-भोगों में अतृप्त ही प्राणियों की मृत्यु अपने वश में करके रोते-चिल्लाते लेकर चली जाती है।" कह कर इस गाथा को कहा—

४८—पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यसत्तमनसं नरं।
अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरुते वसं॥ ५॥

(काम-भोग रूपी) पुष्पों को चुनने वाले आसक्तियुक्त पुरुष को, काम भोगों में अतृप्त हुए ही मृत्यु अपने वश में कर लेती है।

भ्रमर के समान भिक्षाटन करे

(कंजूस कोसिय सेठ की कथा)

४, ५

राजगृह के पास सक्खर नामक निगम (=कस्बा) में कोसिय नाम का एक कंजूस सेठ रहता था। वह महाधनवान् होते हुए भी कभी किसी को कुछ नहीं देता था और न तो अपने ही उसका उपभोग करता था। एक बार जब वह अपने घर की सातवीं मंजिल के ऊपर अकेले खाने के लिए मालपूआ बनवा रहा था, तब आयुष्मान् मौद्गल्यायन अपने ऋद्धिबल से वहाँ जाकर उसका दमन कर उसे उपदेश दिये और मालपूआ के साथ श्रावस्ती में भगवान् के पास लाए। उसने भगवान् के साथ सारे भिक्षु संघ को मालपूआ खिलाया और बुद्ध, धर्म, संघ की शरण जाकर अपने सारे धन को बुद्ध शासन में लगा दिया।

एक दिन भिक्षु बैठे हुए आयुष्मान् मौद्गल्यायन की इस सम्बन्ध में प्रशंसा कर रहे थे, तब भगवान् ने वहाँ आकर उनकी बातों को सुन कर "भिक्षुओ! कुलों का दमन करनेवाले भिक्षु को लोगों की श्रद्धा को बढ़ाते हुए भ्रमर के समान भिक्षाटन करना चाहिये, जैसा कि मेरा पुत्र मौद्गल्यायन करता है।" उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा--

४९---यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे॥ ६॥

जैसे भ्रमर पुष्प के वर्ण और गन्ध को बिना हानि पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही मुनि ग्राम में भिक्षाटन करे।

अपने ही कृत्याकृत्य को देखे

(पाठिक आजीवक की कथा)

४, ६

श्रावस्ती की एक गृह-स्वामिनी पाठिक नामक आजीवक को बहुत मानती थी। एक दिन वह भगवान् की कीर्ति को सुनकर उपदेश सुनने के लिये जेतवन जाना चाही, किन्तु आजीवक ने उसे रोक दिया। दूसरे दिन उसने अपने पुत्र को

भेजकर भिक्षु संघ के साथ भगवान् को अपने घर भोजन के लिए निमंत्रित किया। भगवान् भिक्षु संघ के साथ समय पर आये और भोजन करके दानानुमोदन करना आरम्भ किये। गृहस्वामिनी साधु-साधु कह कर उपदेश सुन रही थी। इसे देख कर पाठिक आजीवक से नहीं रह गया। वह पास वाले घर से निकल कर गृहस्वामिनी और भगवान्—दोनों को बुरा-भला कहते हुए भाग गया। भगवान् ने देखा कि गृहस्वामिनी उसकी बातों को सुनकर लज्जित हुई ठीक से उपदेश नहीं सुन रही है, तब—"उपासिके! ऐसे अनमेल व्यक्तियों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये, केवल अपने कृत्याकृत्य को ही देखना चाहिये।" समझाते हुए इस गाथा को कहा—

५०—न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो'व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च॥ ७॥

न तो दूसरों के विरोधी (वचन) पर ध्यान दे, न दूसरों के कृत्याकृत्य को देखे, केवल अपने ही कृत्याकृत्य का अवलोकन करे।

निष्फल और सफल वाणी

(छत्तपाणि उपासक की कथा)

४, ७

श्रावस्ती में छत्तपाणि नामक एक आनागामी उपासक था। एक दिन छत्तपाणि जब भगवान् के पास जाकर वन्दना करके बैठा, तभी महाराज प्रसेनजित् भी भगवान् के दर्शनार्थ पधारा। छत्तपाणि ने भगवान् के गौरव से उठकर राजा को प्रणाम नहीं किया। पीछे एक दिन राजा ने उसे राजभवन के पास से होकर जाते हुए देख, बुला कर उस दिन प्रणाम न करने का कारण पूछा। छत्तपाणि ने बुद्धगौरव से न उठने की बात कही। तब उसने उस पर प्रसन्न होकर अपने अन्तःपुर में रानियों को बुद्धवचन पढ़ाने के लिए कहा, किन्तु उसने उसे नहीं स्वीकार किया। तत्पश्चात् राजा ने भगवान् के पास जाकर एक भिक्षु माँगा। भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को यह काम सौंपा। वह नित्य मल्लिका और वासभखत्तिया को पढ़ाने के लिए राजभवन में जाया

करते थे। उनमें मल्लिका मन लगाकर पढ़ती और याद करती थी, किन्तु वासभखत्तिया न तो मन लगाकर पढ़ती थी और न याद करती थी। एक दिन भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से इस बात को जान—"मेरे द्वारा उपदिष्ट धम मन लगा कर नहीं सुनने वाले और नहीं धारण करनेवाले के लिए वर्णयुक्त गन्ध रहित पुष्प के समान निष्फल होता है, किन्तु मन लगाकर सुनने वाले और धारण करने वाले के लिए महाफलवान।" कह कर इस गाथा को कहा—

५१—यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ॥ ८ ॥

जैसे सुन्दर, वर्णयुक्त निर्गन्ध पुष्प होता है, वैसे ही (कथनानुसार) आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।

५२—यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा सफला होति कुब्बतो ॥ ९ ॥

जैसे सुन्दर वर्णयुक्त सुगन्धित पुष्प होता है, वैसे ही (कथनानुसार) आचरण करनेवाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।

बहुत पुण्य करना चाहिये

(विशाखा उपासिका की कथा)

४, ८

विशाखा उपासिका अङ्ग राष्ट्र के भद्दिय नगर के धनञ्जय सेठ की पुत्री थी। उसने सात वर्ष की ही अवस्था में शास्ता के धर्मोपदेश को सुनकर स्रोतापत्तिफल को प्राप्तकर लिया था। पीछे उसका पिता राजा प्रसेनजित् के आग्रह से साकेत में आकर बस गया था। वहीं विशाखा उपासिका का श्रावस्ती के मृगार सेठ के पुत्र पूर्णवर्द्धन कुमार के साथ विवाह हुआ। विशाखा भगवान् बुद्ध और भिक्षु संघ पर श्रद्धा रखती थी, किन्तु उसका पति निर्ग्रन्थों पर। कुछ समय के बाद विशाखा के प्रयत्न से मृगा सेठ और पूर्णवर्द्धन भगवान् के शिष्य हो गये। विशाखा ने अवसर पाकर सत्ताइस करोड़ मुद्रा खर्च करके पूर्वाराम विहार को बनवाकर भगवान् के साथ भिक्षु संग को दान किया।

एक दिन उसने अपने किये हुए दान और पुण्य कर्म का अनुस्मरण करती हुई उदान (= प्रीति वाक्य) कहा। जिसे भिक्षुओं ने सुनकर भगवान् से कहा कि "भन्ते! विशाखा गीत गा रही थी।" भगवान् ने—"भिक्षुओ! विशाखा गीत नहीं गा रही थी, उसने उदान कहा।" कह कर धर्मोपदेश देते हुए—"भिक्षुओ! जैसे चतुर मल्हारी (= मालाकार) नाना प्रकार के पुष्पों की राशि करके नाना प्रकार की मालाओं को बनाता है, ऐसे ही विशाखा का चित्त नाना प्रकार के पुण्यों को करने की ओर झुकता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

५३—यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुशलं बहुं॥ १०॥

जैसे पुष्पराशि से बहुत-सी मालायें बनाये, ऐसे ही उत्पन्न हुए प्राणी को बहुत पुण्य करना चाहिये।

शील की सुगन्ध उत्तम है

(आनन्द स्थविर के प्रश्न की कथा)

४, ५

एक दिन आनन्द स्थविर ध्यान से उठ कर भगवान् के पास गये और प्रणाम करके पूछा—"भन्ते! सारगन्ध, मूलगन्ध और पुष्पगन्ध—सीधी हवा ही जाती हैं, उल्टी-हवा नहीं जातीं, क्या ऐसी भी कोई गन्ध है, जो सीधी-हवा भी जाती है और उल्टी हवा भी?" भगवान् ने उत्तर देते हुए इन गाथाओं को कहा—

५४—न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति सब्बा दिसासप्पुरिसो पवाति॥ ११॥

पुष्प, चन्दन, तगर या चमेली किसी की भी सुगन्ध उल्टी-हवा नहीं जाती, किन्तु सज्जनों की सुगन्ध उल्टी-हवा भी जाती है, सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है।

५५—चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी ।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ १२ ॥

चन्दन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगन्धों से शील (= सदाचार) की सुगन्ध उत्तम है ।

सील की सुगन्ध उत्तम है

(महाकाश्यप स्थविर को पिण्डपात-दान की कथा)
४, १०

आयुष्मान् महाकाश्यप स्थविर राजगृह की पिप्पलिगुहा में रहते समय एक दिन सप्ताह भर की समाधि से उठकर निर्धनों का उपकार करने के लिए भिक्षाटन को गये। उसी समय इन्द्र की परिचारिकाएँ पाँच सौ अप्सराएँ उनके पास आईं और पिण्डपात (= भिक्षा) देना चाहीं, किन्तु उन्होंने उनका पिण्डपात नहीं ग्रहण किया। उन्होंने लौटकर यह बात इन्द्र से कहीं। तब इन्द्र स्वयं पिण्डपात देने की इच्छा से राजगृह की उस गली में आकर, जिस गली में कि वे भिक्षाटन हेतु जाने वाले थे, तन्तुवाय का रूप धारण कर ताना-बाना करने लगा और उसकी स्त्री असुर कन्या सुजा नरी भरने लगी। जब आयुष्मान् महाकाश्यप वहाँ पहुँचे, तब उनके पात्र को लेकर घर के भीतर गया और हाँड़ी से भात निकाल पात्र भर कर पिण्डदान दिया। इस पिण्डपात में तरह-तरह के व्यञ्जन और सूप थे।

जब महाकाश्यप ने जाना कि यह इन्द्र है, तब उससे कहा—"इन्द्र! जो कर चुका सो तो कर चुका, फिर कभी ऐसा मत करना।" इन्द्र—"भन्ते! मैं भी पुण्य करना चाहता हूँ, मुझे भी पुण्य कमाने की इच्छा है।" कह कर उन्हें प्रणाम कर चला गया। भगवान् ने वेणुवन में विहार करते हुए इन्द्र के इस पिण्डदान को देखा और उदान कह कर "भिक्षुओ! इन्द्र ने मेरे पुत्र के शील की गन्ध से आकर पिण्डपात दिया है।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

५६—अप्पमत्तो अयं गन्धो या'यं तगरचन्दनी ।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो ॥ १३ ॥

तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अल्पमात्र है, और जो यह शीलवानों की गन्ध है, वह उत्तम (गन्ध) देवताओं में फैलती है।

शीलवानों के मार्ग को मार नहीं पाता

(गोधिक स्थविर के परिनिर्वाण की कथा)

४, ११

राजगृह के इसिगिलि पर्वत की कालशिला पर विहार करते समय आयुष्मान् गोधिक एक रोग के कारण छः बार जब ध्यान को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए भी नहीं प्राप्त कर सके, तब बाल बनाने वाले छूरे से अपनी गर्दन रेत कर आत्महत्या कर लिये। जिन्होंने आत्महत्या करते समय अर्हत्व भी पा लिया। भगवान् ने दिव्यचक्षु से इस कृत्य को देखा और भिक्षुओं के साथ वहाँ पधारे। आयुष्मान् गोधिक का मृत शरीर वहाँ बिछावन पर पड़ा था। उस समय पापी मार भी यह खोजता हुआ इधर-उधर विचर रहा था कि गोधिक का पुनर्जन्म कहाँ हुआ है? भगवान् ने उसे—"पापी! गोधिक कुलपुत्र के उत्पन्न होने के स्थान को तुम्हारे समान सैकड़ों, हजारों भी नहीं देख सकते।" कह कर इस गाथा को कहा—

५७—तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं।
सम्मदञ्ञा विमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥ १४ ॥

जो वे शीलवान निरालस हो विहरने वाले यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गये हैं, उनके मार्ग को मार नहीं पाता।

बुद्ध-श्रावक प्रज्ञा से शोभता है

(गरहदिन्न की कथा)

४, १२

श्रावस्ती में सिरिगुत्त और गरहदिन्न नामक दो मित्र थे। उनमें सिरिगुत्त बुद्ध-भक्त उपासक था और गरहदिन्न निर्ग्रन्थ श्रावक। गरहदिन्न के बार-बार कहने पर सिरिगुत्त ने निर्ग्रन्थों को एक बार निमन्त्रित करके गूथ के गड्ढों में

गिरा कर खूब छकाया। अतः गरहदिन्न ने भी कुछ दिनों के पश्चात् पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान् को निमन्त्रित करके अग्नि कुण्ड में गिरा कर छकाना चाहा, किन्तु जब भगवान् भिक्षुओं के साथ गये, तब अग्नि कुण्ड में पद्म-पुष्प उग आया, जिसे देखकर गरहदिन्न आश्चर्यचकित होकर भगवान् की शरण में आया। भोजनोपरान्त भगवान् ने दानानुमोदन करते हुए—"ये प्राणी प्रज्ञाचक्षु के अभाव से बुद्ध शासन के श्रावकों के गुण को नहीं जानते हैं क्योंकि प्रज्ञा-चक्षु से रहित तो अन्धे हैं और प्रज्ञावान् चक्षुष्मान्।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

५८—यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ॥ १५ ॥
५९—एवं संकारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥ १६ ॥

जैसे बड़ी सड़क के किनारे फेंके कूड़े के ढेर पर कोई सुगन्धित सुन्दर पद्म उत्पन्न होवे, ऐसे ही कूड़े के समान अन्धे पृथक्-जनों में सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से अत्यधिक शोभित होता है।



५——बालवग्गो

मूढ़ों के लिए संसार लम्बा होता है

(दरिद्र सेवक की कथा)

५, १

कोसलनरेश प्रसेनजित् एक दरिद्र सेवक की स्त्री पर मोहित था। वह उसे मार कर उसकी स्त्री को राज्य-भवन में लाना चाहता था। एक दिन उसने सेवक को कहा——"अमुक नदि से कुमुद का पुष्प और लाल मिट्टी लेकर सन्ध्या को मेरे स्नान करने के समय तक आ जाओ, यदि ठीक समय पर नहीं आओगे, तो तुझे दण्ड दिया जायेगा।" नदी बहुत दूर थी। सेवक कुमुद-पुष्प और लाल मिट्टी लाने के लिए वहाँ गया। इधर राजा ने समय से पूर्व ही नगर के द्वार को बन्द करा कुञ्जी अपने पास मँगा ली। जब सेवक पुष्प और मिट्टी लेकर आया, तो द्वार बन्द पाकर राजा की सारी करतूत को जान चिल्लाता हुआ जेतवन विहार में जाकर भिक्षुओं के पास भय से त्रसित हुआ सो रहा।

उस रात राजा ने भयानक स्वप्न देखा और दूसरे दिन भगवान् के पास जाकर स्वप्न फल पूछा। तब भगवान् ने स्वप्न को निष्फल बतलाया। तब उसने कहा——"भन्ते आज की रात बड़ी लम्बी जान पड़ी।" उसी समय उस दरिद्र उपासक ने भी अवसर पाकर कहा—"भन्ते! मुझे कल योजन भी बड़ा लम्बा जान पड़ा था।" दोनों की बातों को सुनकर शास्ता ने—"एक को रात लम्बी होती है, एक को योजन लम्बा होता है, किन्तु मूढ़ों के लिए संसार लम्बा होता है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६०——दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्य योजनं।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं॥ १॥

जागने वाले को रात लम्बी होती है। थके हुए के लिए योजन लम्बा होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूढ़ों के लिए संसार (-चक्र) लम्बा होता है।

मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं

(महाकाश्यप स्थविर के शिष्य की कथा)

५, २

महाकाश्यप स्थविर के राजगृह में विहरते समय उसके साथ दो शिष्य रहते थे। एक आज्ञाकारी और सेवा करने वाला था तथा दूसरा आज्ञा न मानने वाला और दूसरे के किये हुए काम को अपना कहने वाला था। महाकाश्यप ने उसे वैसा करने से मना किया। वह उनकी बात सुनकर क्रोधित हो एक दिन जब आज्ञाकारी शिष्य के साथ भिक्षाटन करने के लिए गये थे, विहार में आग लगा कर भाग गया। यह समाचार एक भिक्षु द्वारा श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में विहरते हुए भगवान् को मिला। भगवान् ने कपि जातक को कह कर—"मेरे पुत्र काश्यप को ऐसे मूर्ख के साथ रहने से अकेले ही रहना अच्छा है।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

६१—चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो।
एकचरियं दल्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥ २ ॥

विचरण करते यदि अपने से श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पाये, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरे। मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं।

मनुष्य का कुछ नहीं

(आनन्द सेठ की कथा)

५, ३

श्रावस्ती में आनन्द नामक एक महाधनवान् सेठ था। वह कभी किसी को कुछ नहीं देता था। अपने पुत्र मूलसिरि को भी कंजूसी करने को ही सिखाता था। वह कुछ दिनों के बाद मरकर श्रावस्ती में ही एक चांडाल के घर उत्पन्न हुआ। जब वह सयाना हुआ, तो उसे जातिस्मर ज्ञान हो आया। वह एक दिन भीख माँगता हुआ, जब मूलसिरि के घर के पास गया, तब उसे अपना घर जानकर बेधड़क अन्दर घुस गया। मूलसिरि ने उस चाण्डाल पुत्र के इस साहस को देख पिटवाकर बाहर निकलवा दिया। भिक्षाटन के समय

जब भगवान् आनन्द स्थविर के साथ नगर में प्रवेश किये तब इस समाचार को जानकर आनन्द से कहे। आयुष्मान् आनन्द ने मूलसिरि को जेतवन में बुलवाया। भगवान् ने आनन्द सेठ को मूलगिरि के पिता होने की बात को बतला कर धर्मोपदेश कहते हुए इस गाथा को कहा—

६२—पुत्ता मत्थि धनम्मत्थि इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं॥ ३॥

'मेरा पुत्र है' 'मेरा धन है'—इस प्रकार मूर्ख परेशान होता है, जब मनुष्य अपना आप नहीं है, तो पुत्र और धन उसके कहाँ तक होंगे?

यथार्थ में मूर्ख कौन है?

(गिरहकट चोरों की कथा)

५, ४

श्रावस्ती में दो मित्र गिरहकट चोर थे। वे दोनों एक दिन धर्म-श्रवण करने वाले लोगों के साथ जेतवन गये। उनमें से एक भगवान् के उपदेश को सुनकर स्रोतापन्न हो गया। दूसरा किसी का गिरह काट कर केवल पाँच माषक पाया, जिससे दूसरे दिन उसके घर भोजन का काम चला। स्रोतापन्न चोर के घर आग भी न जली। इसे देख दूसरे चोर ने मजाक करते हुए अपनी स्त्री से कहा—"तुम अपने पाण्डित्य से भोजन का भी प्रबन्ध नहीं कर सकती!" इसे सुन स्रोतापन्न चोर ने भगवान के पास जाकर सब कह सुनाया। शास्ता ने उसे धर्म का उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६३—यो बालो मञ्ञति बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो।
बालो च पण्डितमानी स वे बालो'ति वुच्चति॥ ४॥

जो मूर्ख अपनी मूर्खता को समझता है, इस कारण वह पण्डित है। जो मूर्ख हो अपने को पण्डित समझता है वही यथार्थ में मूर्ख है।

मूर्ख को धर्म की जानकारी नहीं

(उदायी स्थविर की कथा)

५, ५

उदायी स्थविर महास्थविरों के चले जाने के बाद जेतवन की धर्म-सभा के आसन पर बैठते थे। एक दिन आगन्तुक भिक्षुओं ने यह जानकर कि यह कोई बड़े स्थविर होंगे-- गम्भीर प्रश्न पूछा। जब उदायी स्थविर उत्तर न दे सके, तब उन्होंने उनका परिचय पूछ, भगवान् के पास जाकर यह बात कही। भगवान् ने उन्हें धर्म का उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६४—यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पयिरुपासति।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ॥ ५ ॥

यदि मूर्ख जीवन भर पण्डित के साथ रहे, तो भी वह धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता है, जैसे कि कलछी दाल (=सूप) के रस को।

विज्ञ शीघ्र धर्म को जान लेता है

(भद्रवर्गीय भिक्षुओं की कथा)

५, ६

पाठेय्य देशवासी तीस भद्रवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् के अनमतग्ग सुत्त के धर्मोपदेश को सुनकर जब उसी आसन पर अर्हत्व पा लिया, तब अन्य भिक्षु उनके शीघ्र अर्हत्व-प्राप्ति की प्रशंसा करने लगे। एक दिन यही बात जेतवन की धर्म सभा में भी चल रही थी कि भगवान् आये और इसे जानकर तुण्डिल-जातक कह उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६५—मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥ ६ ॥

यदि विज्ञ पुरुष एक मुहुर्त भी पण्डित की सेवा में रहे, तो वह शीघ्र ही धर्म को जान लेता है, जैसे कि जिह्वा दाल के रस को।

मूर्ख स्वयं अपना शत्रु बनता है

(सुप्रबुद्ध कोढ़ी की कथा)

५, ७

राजगृह में सुप्रबुद्ध नाम का एक महादरिद्र, दुःखी और असहाय कोढ़ी था। एक दिन जब भगवान् वेणुवन विहार में बड़ी परिषद् के बीच बैठे उपदेश कर रहे थे, तब वह भी वहाँ गया और किनारे बैठ कर उपदेश सुनने लगा। उपदेश को सुनकर उसे ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसने स्रोतापत्ति फल को प्राप्त कर लिया। अन्त में जब सब लोग चले गये, तब वह भगवान् के पास जाकर वन्दना कर, शरण और शील ले नगर की ओर लौटा। रास्ते में एक साँड़ ने उसे पटक कर जान से मार डाला। वह मर कर तावतिंस-भवन में उत्पन्न हुआ।

इस समाचार को पाकर सन्ध्या को भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! सुप्रबुद्ध कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

"तावतिंस भवन में।"

"भन्ते! क्या कारण था कि सुप्रबुद्ध कोढ़ी इतना दीन-हीन और असहाय था?"

"भिक्षुओ! उसने पूर्व जन्म में तगरशिखी प्रत्येक बुद्ध को देखकर थूक फेंककर 'यह कौन कोढ़ी जा रहा है!" कहा था, उसी पाप-कर्म से बहुत दिनों तक नरक में पककर उस कर्म विपाक के अवशेष से कोढ़ी हुआ था। भिक्षुओ! ये प्राणी अपने ही अपने लिए कड़ुआ फल देने वाले कर्म करते विचरण करते हैं।" भगवान् ने यह कहकर इस गाथा को कहा—

६६—चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्तो पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं॥ ७॥

दुर्बुद्धि मूर्ख अपना शत्रु स्वयं होकर पाप कर्म करते विचरण करता है, जिसका फल कड़ुआ होता है।

पछतानेवाले कर्म को करना ठीक नहीं

(कृषक की कथा)

५, ८

श्रावस्ती का एक कृषक प्रातःकाल उठकर हल को अपने खेत में ले जाकर चला रहा था। उसी खेत में रात के समय चोरों ने नगर से माल लाकर बाँटा था, जिसमें से हजार की एक थैली गिर गई थी। उस दिन आनन्द-स्थविर के साथ भगवान् उधर गये और उस थैली को देखकर कहे—"देखो, आनन्द! इस आशीविष को।" वह कृषक भगवान् की बात सुनकर थोड़ी देर बाद उन्हें मारने के विचार से वहाँ गया और हजार की थैली देख, लाकर खेत के एक किनारे गाड़ दिया। उसी समय गाँव वाले चोरों को खोजते हुए वहाँ आये और उस गड़ी हुई थैली को पाकर कृषक को राजा के पास पकड़ ले गये। राजा ने उसे फाँसी की सजा दी। वह फाँसी के लिये ले जाते समय भगवान् की कही हुई बात को कहते जा रहा था। जब राजा को इसका पता लगा, तब उसे छोड़वा कर सन्ध्या समय उसके साथ ही भगवान् के पास गया। भगवान् ने राजा को अपनी कही हुई सारी बात बता कर "जिस काम को करके पछताना पड़ता है, वैसे कर्म को पण्डित पुरुष को नहीं करना चाहिए।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

६७—न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति॥ ८॥

वह काम करना ठीक नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसके फल को अश्रुमुख रोते हुए भोगना पड़े।

न पछताने वाले कर्म को करना ठीक है

(सुमन माली की कथा)

५, ९

राजगृह में राजा बिम्बिसार का सुमन नाम का एक माली था। वह प्रतिदिन राजा के पास आठ नाली फूल लाता था। इसे राजा की ओर से

नित्य आठ कार्षापण मिलते थे। एक दिन उसने भिक्षाटन करते समय भगवान् को देख प्रसन्न होकर—"चाहे राजा मुझे मार डाले या राज्य से निकाल दे, मैं तथागत की पूजा करूँगा। सोच उन फूलों से भगवान् की पूजा की। जब राजा को इस बात का पता लगा तब उसने उन्हें बुलाकर उसके विचारों को पूछ उसकी प्रशंसा कर आठ आठ हाथी, घोड़ा, दासी, आभूषण तथा आठ हजार कार्षापण, आठ समालंकृत-स्त्रियों और आठ गावों को दिया।

सन्ध्या समय धर्म-सभा में सुमन माली की सर्वाष्टक सम्पत्ति के पाने के सम्बन्ध में चर्चा हो रही थी। भगवान् ने आकर उसे पूछ—"भिक्षुओ, जिस कर्म को करके पछताना नहीं पड़े, प्रत्युत उसे स्मरण करने के समय सौमनस्य उत्पन्न हो, वैसे कर्म को ही करना चाहिये।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६८—तञ्च मम्मंकृतं साधु यं कृत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥ ९ ॥

वही काम करना ठीक है, जिसे करके पछताना न पड़े, और जिसके फल को प्रसन्न मन भोग करे।

मूर्ख पाप को मीठा समझता है

(उप्पलवण्णा थेरी की कथा

५, १०

उप्वलवण्णा श्रावस्ती के एक सेठ की अत्यन्त रूपवती कन्या थी। उसकी सुन्दरता को सुनकर जम्बूद्वीप के सभी राजा उसे चाहते थे। सेठ ने इस आपत्ति से बचने के लिए उप्पलवण्णा को भिक्षुणी-आश्रम में ले जाकर प्रव्रजित करा दिया। उसने थोड़े ही दिनों में अर्हत्व को प्राप्त कर लिया और अन्धवन में रहने लगी।

उप्पलवण्णा के मामा का पुत्र नन्दमाणव घर रहते समय से ही उस पर मोहित था। एक दिन जब उप्पलवण्णा भिक्षाटन के लिए गई थी, तब वह उसके आने से पहले ही अन्धवन में जा उसकी कुटी में घुसकर चारपाई के

नीचे छिप रहा। जब उप्पलवण्णा भिक्षाटन से कुटी में घुसकर द्वार बन्द करके चारपाई पर सोई, तब नन्दमाणव नीचे से निकल कर उसके चिल्लाते हुए ही बलात्कार कर चल दिया। ज्यों ही वह कुटी से बाहर हुआ, त्यों ही पृथ्वी फटी और वह उसमें धँस मरा।

भिक्षुओं ने भिक्षुणियों द्वारा यह समाचार जान भगवान् से कहा—भगवान् ने "भिक्षुओ ! भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका में जो कोई मूर्ख पाप कर्म करता हुआ मधु, शक्कर आदि को खाने के समान बड़ी प्रसन्नता के साथ करता है वह दुःख भोगता है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

६९—माधुवा मञ्ञती बालो याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति ॥१०॥

जब तक पाप का विपाक नहीं मिलता, तब तक मूर्ख उसे मधु के समान (मीठा) समझता है, किन्तु जब उसका फल मिलता है, तब मूर्ख दुःख को प्राप्त होता है।

सोलहवें भाग के बराबर नहीं

जम्बूक आजीवक की कथा)

५, ११

राजगृह में जम्बूक नामक एक आजीवक था। वह नगर के बाहर एक चट्टान पर दिन में पैर उठाये और मुख फैलाये रहता था, किन्तु रात में आस-पास घूम कर गूथ खाता था। लोग समझते थे कि वह केवल वायु पीकर रहता है। उस समय उसका इतना यश फैला हुआ था कि अंग-मगध के राष्ट्रवासी सदा उसका दर्शन करने आते थे और नाना प्रकार के चढ़ावा चढ़ाते थे। उसे गूथ के अतिरिक्त और कोई भोजन अच्छा नहीं लगता था, अतः लोगों के श्रद्धापूर्वक प्रदत्त भोजन को कुश की नोक मात्र से लेकर जिह्वा पर रखता था और कहता था कि यदि मैं बहुत खाऊँगा तो मेरा तप नष्ट हो जायेगा।

एक दिन भगवान् उसके पास गये और रात में उससे थोड़ी दूर पर वास किये। भगवान् के उपस्थान के लिए रात में क्रमशः चातुर्महाराजिक देवता, इन्द्र और महाब्रह्मा आये। जम्बूक आजीवक ने सबको देखा। प्रातःकाल उसने भगवान् के पास जाकर पूछा कि रात में सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कौन आये थे। भगवान् ने उसे बतलाया और उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में जम्बूक आजीवक ने चार प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा लिया। वहीं पर प्रव्रजित हो गया।

उस दिन जब जम्बूक आजीवक के दर्शनार्थ चारों दिशाओं से लोग आकर एकत्र हुए, तब भगवान् ने—"यह इतने दिनों तक तुम लोगों के लाये हुए भोजन को कुश की नोक से जिह्वा पर रख कर 'मैं तपश्चर्य्या कर रहा हूँ', कहता था। यदि इस प्रकार सौ वर्ष तक तपश्चर्य्या करता, तो वह भी इसके इस संकोच से भोजन न करने की कुशल चेतना के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हो सकती।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

७०—मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोलसिं॥ ११॥

यदि मूर्ख महीने-महीने पर कुश की नोक से भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें भाग के बराबर नहीं हो सकता।

पाप शीघ्र फल नहीं लाता

(अहिप्रेत की कथा)

५, १२

एक दिन गृद्धकूट पर्वत से भिक्षाटन के लिए उतरते समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन मुस्कराये। उनको मुसकराते हुए देखकर लक्षण स्थविर ने मुसकराने का कारण पूछा। तब उन्होंने भिक्षाटन करके भगवान् के पास पूछने को कहा। जब वे लोग राजगृह में भिक्षाटन करके भगवान् के पास आये, तब पुनः लक्षण स्थविर ने पूछा। मैंने ऐसे एक अहिप्रेत को देखा कि जिसका सिर मनुष्य के समान था और शेष शरीर अहि के समान। उसके सिर से उठी

हुई ज्वाला पूँछ तक जाती थी और पूँछ से उठी हुई ज्वाला सिर तक।" इसे सुनकर भगवान् ने—"मैंने भी उस प्रेत को सम्बोधि प्राप्त करने के दिन ही देखा था, किन्तु किसी से कहा नहीं था, वह अपने पूर्व जन्म में एक प्रत्येक बुद्ध की कुटी को जला कर इस गति को प्राप्त हुआ है। भिक्षुओ! पाप-कर्म करते ही फल नहीं देता है, किन्तु जब फल देता है, तब इस प्रकार के दुःख में डालता है।" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

७१—न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरं'व मुच्चति।
डहन्तं बालमन्वेति भस्माच्छन्नो'व पावको ॥ १२ ॥

जैसे ताजा दूध शीघ्र ही नहीं जम जाता, ऐसे ही किया गया पाप कर्म शीघ्र ही अपना फल नहीं लाता। राख से ढँकी आग की भाँति वह जलाता हुआ मूर्ख का पीछा करता है।

मूर्ख का ज्ञान अनर्थकारक होता है

(साठ कूट वाले प्रेत की कथा)

५, १३

पूर्व कथा के समान ही भिक्षाटन से लौटकर भगवान् को प्रणाम कर लक्षण स्थविर ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से मुसकराने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—"आवुस! मैंने ऐसे प्रेत को देखा, जिसका शरीर तीन गव्यूति का था।

साठ हजार आदीप्त और प्रज्वलित लौह-कूट उसके सिर के ऊपर गिरते हुए सिर को फोड़ते थे।" इसे सुनकर भगवान् ने—"मैंने भी उस प्रेत को बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे हुए ही देखा था, किन्तु किसी से नहीं कहा था। वह अपने पूर्व जन्म में कंकड़ चलाने की विद्या जानता था। एक बार उसने कंकड़ चला-कर एक प्रत्येक बुद्ध के कान को आरपार छेद दिया, जिससे वे परिनिर्वृत्त हो गये। उस पाप कर्म से वह बहुत दिनों तक नरक में पड़ कर अब इस शरीर को पाया है। भिक्षुओ! मूर्ख की विद्या या सम्पत्ति उसके ही अनर्थ के लिए होती है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

७२—यावदेव अनत्थाय ञतं बालस्य जायति।
हन्ति बालस्य सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं ॥ १३ ॥

मूर्ख का जितना भी ज्ञान होता है, वह उसके ही अनर्थ के लिए होता है। वह मूर्ख की अच्छाई का नाश करता है और उसकी प्रज्ञा (= शिर) को नीचे गिरा देता है।

मूर्ख की इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं

(सुधम्म स्थविर की कथा)

५, १४

मच्छिकासण्ड नगर में चित्त नाम का एक स्रोतापन्न गृहपति था। उसने अपने अम्बाटक वन नामक उद्यान में विहार बनवाकर भिक्षुसंघ को दान किया था, उसमें सुधम्म स्थविर रहते थे। एक बार चित्त गृहपति के गुण की प्रशंसा सुन कर अग्रश्रावक वहाँ गये। चित्त गृहपति उनकी अगवानी करके उन्हें अपने विहार में लाया और उपदेश सुना। उपदेश सुनकर वह अनागामी हो गया तथा दूसरे दिन भोजन के लिए निमंत्रित किया। सुधम्म स्थविर से भी कहा कि "भन्ते! मैंने अग्रश्रावकों को भोजन के लिये निमंत्रित किया है, आप भी इनके साथ भोजन करने आइयेगा।" सुधम्म स्थविर पीछे निमंत्रण पाने के कारण उस पर रुष्ट होकर निमंत्रण नहीं स्वीकार किये। दूसरे दिन भोजन करने के लिए कहने पर भी आसन पर नहीं बैठे और विहार सौंप कर श्रावस्ती को चल दिये। श्रावस्ती पहुँचने पर भगवान् ने सब पूछ कर कहा—"सुधम्म! तेरा ही दोष है, जाओ चित्त से क्षमा माँगो।" सुधम्म चित्त के पास गये और क्षमा माँगे किन्तु उसने क्षमा नहीं किया, तब फिर भगवान् के पास गये। भगवान् ने पुनः एक दूत भिक्षु को देकर जाने के लिए कहा—"श्रमण को मेरा विहार है, मेरा निवास-स्थान है, मेरा उपासक है, मेरी उपासिका है—ऐसा सोच कर मान या ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, ऐसे करने पर ईर्ष्या, मान आदि क्लेश बढ़ते हैं।" उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

७३—असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु ।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥ १४ ॥
७४—ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो ।
म मेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मचि ।
इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति ॥ १५ ॥

भिक्षुओं के बीच अगुआ होना, मठों का अधिपति बनना, गृहस्थ परिवारों में पूजित होना, गृही और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया माने, सभी प्रकार के काम में वे मेरे ही अधीन रहें—ऐसा मूर्ख का संकल्प होता है, जिससे उसकी इच्छा और अभिमान बढ़ते हैं।

सत्कार का अभिनन्दन न करना

(वनवासी तिस्स स्थविर की कथा)

५, १५

राजगृह में आयुष्मान् सारिपुत्र के पिता का एक सहायक निर्धन ब्राह्मण आयुष्मान् सारिपुत्र को खीर और वस्त्र दान कर मरने पर श्रावस्ती में एक सेठ के घर उत्पन्न हुआ। उसका नाम तिस्स रखा गया। वह सात वर्ष की अवस्था में आयुस्मान् सारिपुत्र के पास ही प्रव्रजित हुआ। पूर्व दान के पुण्य-प्रताप से उसका बहुत सत्कार होता था। भिक्षुओं को जिन वस्तुओं की अवश्यकता होती थी, वे उसके साथ जाकर प्राप्त कर लेते थे। पीछे उस सातवर्ष के तिस्स श्रामणेर ने श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर जाकर एक वन में वास किया। तब उसका नाम वनवासी तिस्स पड़ा। उसने वहाँ रहते हुए थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया।

एक बार सभी महाश्रावक भिक्षुओं के साथ उसके पास गये। भगवान् भी वहाँ पधारे। जब श्रामणेर के ईर्यापथ को देख कर सब भिक्षु श्रावस्ती लौटे, तब धर्म-सभा में तिस्स के सम्बन्ध में चर्चा होने लगी—'अहो! तिस्स श्रामणेर दुष्कर कार्य कर रहा है! वह अपने तनाम लाभ-सत्कार को छोड़ कर इस समय

वन में वास कर रहा है !" भगवान् ने उसी समय आ भिक्षुओं में चलती हुई चर्चा को पूछ कर—"भिक्षुओ ! लाभ-सत्कार का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का दूसरा । जो लाभ-सत्कार में लगे रहते हैं, उनके लिए चारों अपायों के द्वार खुले होते हैं, किन्तु जो लाभ-सत्कार को त्याग कर अरण्य में रहते हैं, वे उद्योग करते हुए अर्हत्व प्राप्त कर लेते हैं।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

७५—अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान-गामिनी ।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको ।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ॥१६॥

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण को ले जाने वाला दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्षु सत्कार का अभिनन्दन न करे, और विवेक (=एकान्त वास) को बढ़ावे ।



६—पण्डितवग्गो

पण्डित का साथ करे

(राध स्थविर की कथा)

६, १

श्रावस्ती में राध नामक एक दरिद्र ब्राह्मण था। वह जेतवन में आकर प्रव्रजित होना चाहते भिक्षुक लोगों की सेवा-टहल करते हुए रहा। एक दिन भगवान् ने उससे पूछा—"राध ! भिक्षु तुझे मानते हैं न ?"

"भन्ते ! भदन्त लोग मुझे भोजन देते हैं, किन्तु प्रव्रजित नहीं करते हैं।"

यह सुनकर भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—"कोई इसके पूर्व-कृत उपकार को जानता है ?" तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने कहा—"इसने मुझे एक दिन एक कलछी भात दूसरे से दिलाया था।" तब भगवान् ने सारिपुत्र को उस अपने उपकारक राध ब्राह्मण को प्रव्रजित करने को कहा। सारिपुत्र ने भगवान् की आज्ञा मान उसे प्रव्रजित किया।

राध स्थविर प्रव्रजित होने के समय से जैसा-जैसा आयुष्मान् सारिपुत्र बतलाये, वैसा-वैसा करते हुए शीघ्र ही अर्हत्व पा लिए। एक दिन चारिका से लौटने पर भगवान् ने राध के सम्बन्ध में पूछा। आयुष्मान् सारिपुत्र ने कहा—"भन्ते ! राध आज्ञाकारी है। किसी दोष के कहने पर क्रोध नहीं करता है।" यह सुनकर भगवान् ने—भिक्षुओं को राध के समान ही आज्ञाकारी होना चाहिये। दोषों को दिखलाकर उपदेश करने पर क्रोध नहीं करना चाहिये। उपदेशक को निधि बतलाने वाले के समान समझना चाहिये।" कहकर इस गाथा को कहा—

७६—निधीनं'व पवत्तारं यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥

निधियों को बतलाने वाले की भाँति दोष दिखाने वाले वैसे संयमवादी, मेधावी पण्डित का साथ करे, क्योंकि वैसे का साथ करने से कल्याण ही होता है, बुरा नहीं।

उपदेशक प्रिय और अप्रिय भी

(अस्सजी और पुनब्बसु की कथा)

६, २

कीटागिरि में अस्सजी और पुनब्बसु नामक अग्रश्रावकों के दो शिष्य नाना प्रकार के पाप-आचरण करते हुए कुल-दूषण कर्म से जीविका चलाते थे। उनके साथ और भी पाँच सौ भिक्षु वहाँ रहते थे। जेतवन में विहार करते हुए भगवान् ने इस बात को सुनकर दोनों अग्रश्रावकों को उनका पब्बाजनीय-कर्म करने के लिए आमन्त्रित कर—"भिक्षुओ! जाओ जो तुम लोगों की बात न माने, उनका पब्बाजनीय कर्म करो और जो माने उन्हें उपदेश देकर समझाओ। उपदेशक दुर्जनों को अप्रिय होता है, किन्तु सज्जनों को प्रिय।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

७७—ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥ २ ॥

जो उपदेश दे, सुमार्ग दिखाये तथा कुमार्ग से निवारण करे, वह सज्जनों को प्रिय होता है, किन्तु दुर्जनों को अप्रिय।

उत्तम पुरुषों का सेवन करे

(छन्न स्थविर की कथा)

६, ३

जेतवन में रहते समय छन्न स्थविर आयुष्मान् सारिपुत्र आदि का इस प्रकार आक्रोशन किया करते थे—"भगवान् के साथ मैंने भी घर बार छोड़ा, उस समय दूसरा कोई तो नहीं था, किन्तु 'अब मैं सारिपुत्र हूँ' 'मैं

मौद्गल्यायन हूँ' 'मैं अग्रश्रावक हूँ' कह कर विचरते हैं !" जब भगवान् को इस बात का पता लगा, तब उन्होंने छन्न स्थविर को दो बार बुलाकर समझाया, किन्तु भगवान् के कहते समय चुपचाप सुनकर फिर वा वैसे ही कहते थे। तीसरी बार भगवान् ने छन्न स्थविर को बुला कर उपदेश दे—"छन्न! दोनों अग्रश्रावक तुम्हारे कल्याण-मित्र हैं, उत्तम पुरुष हैं, इस प्रकार के कल्याण-मित्रों का साथ करो, सेवन करो।" कह कर इस गाथा को कहा—

७८—न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥ ३ ॥

बुरे मित्रों का साथ न करे, न अधम पुरुषों का सेवन करे। अच्छे मित्रों का साथ करे, उत्तम पुरुषों का सेवन करे।

सुखपूर्वक सोता है

(महाकप्पिन स्थविर की कथा)

६, ४

कुक्कुटवती नगर में महाकप्पिन नामक राजा था। वह श्रावस्ती से गये हुए व्यापारियों से बुद्ध, धर्म और संघ की प्रशंसा सुन, राजपाट छोड़कर हजार अमात्यों के साथ निकल पड़ा। भगवान् जेतवन विहार में बैठे हुए उसे आते देख, चन्द्रभागा नदी के किनारे एक बरगद के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गये। कप्पिन अमात्यों के साथ वहाँ आकर भगवान् को पहचान प्रणाम कर बैठा। भगवान् ने उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में कप्पिन के साथ सभी अमात्य स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त हो गये और प्रव्रजित होने के लिये प्रार्थना की, तब भगवान् ने हाथ फैला कर "आओ भिक्षुओ!" कह कर उन्हें प्रव्रजित किया। कप्पिन की देवी और अमात्यों की स्त्रियाँ भी घर बार छोड़ कर वहाँ आईं और क्रमशः श्रावस्ती जाकर उप्पलवण्णा के साथ प्रव्रजित हुईं।

जेतवन में रहते समय आयुष्मान् कप्पिन रात में भी, दिन में भी—"अहो, सुख! अहो, सुख!!" कहा करते थे। इसे सुन भिक्षुओं ने भगवान् से कहा कि आयुष्मान् कप्पिन राज्य-सुख का स्मरण करके ऐसा कहते हैं।

भगवान् ने कप्पिन को बुलवा कर पूछा—"कप्पिन ! क्या यह सत्य है कि तू राज्य-सुख का स्मरण करके अहो, सुख ! अहो सुख !! कहता है ?

"भन्ते ! भगवान् राज्य-सुख के प्रति मेरे कहे हुए या नहीं कहे हुए को जानते हैं।" यह सुनकर भगवान् ने—"भिक्षुओ ! मेरा पुत्र राज्य सुख का स्मरण करके ऐसा नहीं कहता है, प्रत्युत मेरे पुत्र को धर्म-प्रीति, धर्म-रस उत्पन्न होता है। वह अमृत महानिर्वाण के प्रति ऐसा कहता है।" कह कर धर्म का उपदेश करते हुए इस गाथा को कहा—

७९—धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥ ४ ॥

धर्म-रस का पान करने वाला प्रसन्न चित्त से सुखपूर्वक सोता है, बुद्धपण्डित के उपदिष्ट धर्म में सदा रमण करता है।

पण्डित अपना दमन करते हैं

(पण्डित श्रामणेर का कथा)

६, ५

श्रावस्ती में सारिपुत्र के एक सेवक के घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बड़ा भाग्यवान था। जब वह सात वर्ष का हुआ तब उसके माँ बाप ने सारिपुत्र के पास लाकर उसके इच्छानुसार प्रव्रजित करा दिया। वह सारिपुत्र के पास रहते हुए एक दिन भिक्षाटन के लिए जा रहा था। सारिपुत्र आगे-आगे जा रहे थे और वह पीछे-पीछे उनका चीवर और पात्र लिये हुये चल रहा था। मार्ग में उसने नहर से पानी ले जानेवाले लोगों, बाण बनाते हुए इषुकार तथा चक्का बनाते हुए बढ़ई को देख कर सोचा—"इन चेतना रहित चीजों को ये आदमी जैसा चाहते हैं, करते हैं, जहाँ चाहते हैं, ले जाते हैं तो क्या सचेतन प्राणी अपने चित्त को वश में नहीं कर सकता ?" ऐसा सोचकर वह आयुष्मान् सारिपुत्र को उनका पात्र चीवर देकर विहार में लौट गया और बैठ कर उसी का चिन्तन करते हुए थोड़ी देर में अनागामी हो गया। भगवान् पण्डित श्रामणेर के चित्त को देख

सारिपुत्र के आने के समय विहार के पास गये और सारिपुत्र से कुछ प्रश्न पूछे। प्रश्नोत्तर को सुनकर श्रामणेर ने अर्हत्व पा लिया।

सन्ध्या को धर्म-सभा में इसकी चर्चा चली। भगवान् ने आकर उसे जान—"भिक्षुओ! नहर से पानी ले जाने वाले लोगों, वाण बनाते हुए इषुकार तथा चक्का बनाते हुए बढ़ई को देखकर—इतने आलम्बन को ग्रहण कर पण्डित (जन) अपना दमन कर अर्हत्व प्राप्त कर लेते हैं।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

८०—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और पण्डित जन अपना दमन करते हैं।

पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते

(लकुण्टक भद्दिय स्थविर की कथा)

६, ६

जेतवन में विहरते समय लकुण्टक भद्दिय स्थविर के नाक को भी, कान को भी पकड़ कर पृथक् जन श्रामणेर कहते थे—"कहो छोटे पिता! अच्छी तरह विहरते हो न! शासन में मन लगता है न?" वे वैसा करने पर उनपर क्रोध नहीं करते थे। एक दिन धर्म सभा में—"देखो न, लकुण्टक भद्दिय को श्रामणेर इस प्रकार परेशान करते हैं और वे कुछ बोलते भी नहीं हैं।" भिक्षुओं में बात चल रही थी। भगवान् ने आकार इसे जान "भिक्षुओ! क्षीणाश्रव क्रोध नहीं करते हैं, वे ठोस पहाड़ के समान अचल होते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

८१—सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥ ६ ॥

जैसे ठोस पहाड़ हवा से नहीं डिगता, वैसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से नहीं डिगते।

धर्म को सुन कर शुद्ध हो जाते हैं

(काण माता की कथा)

६, ७

श्रावस्ती की काणमाता ने चार बार अपनी पुत्री को विदा करने के लिए पुवा बनाया और चार बार भिक्षाटन में आये हुए भिक्षुओं को दे दी। इस प्रकार विलम्ब हो जाने से काणा के पति ने अपना दूसरा विवाह कर लिया। जब काणा को यह बात मालूम हुई, तब उसने भिक्षु को देखकर गाली देना शुरू किया "मुझे इन्हीं मथमुण्डों ने अभागिनी बना दिया।" उसकी गाली को सुनकर भिक्षुओं ने उस गली में जाना ही छोड़ दिया। शास्ता इस समाचार को पाकर उस गली में गये। काण-माता ने भगवान् को देखकर आसन बिछा भोजन कराया। काणा भी चुपचाप रोती हुई खड़ी थी। भगवान् ने पूछा—"काणे! क्यों चुपचुप रोती खड़ी है?" तब काणमाता ने "भन्ते! इसने पहले दिनों भिक्षु लोगों को गाली देने के कारण आज लज्जित होकर रो रही है।" इसे सुनकर भगवान् ने काणा को उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में वह स्रोतापन्न हो गई।

महाराज प्रसेनजित् ने यह समाचार भगवान् द्वारा सुनकर काणा का विवाह एक महामात्य से करा दिया। तब से वह रातों दिन भिक्षु और भिक्षुणी संघ को मानती, पूजती, दान देती हुई धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगी।

एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने इसकी चर्चा की। भगवान् ने उसे सुन बब्बुक जातक को कह उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥ ७ ॥

धर्म को सुनकर पण्डित लोग गम्भीर, स्वच्छ, निर्मल जलाशय की भाँति शुद्ध हो जाते हैं।

सत्पुरुष कामभोग की बात नहीं करते

(पाँच सौ जूठा खाने वालों को कथा)

६, ८

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय भिक्षुओं के जूठे भातों को खाकर पाँच सौ आदमी विहार में रहते थे। जूठा खाकर इधर-उधर विचरते, नदी में नहाते, नाना प्रकार के अनाचर करते थे। एक दिन धर्म सभा में भिक्षुओं ने इसकी चर्चा चलाई—'आवुस ! आज कल ये जूठा खाने वाले मद-मस्त होकर अनाचर करते फिरते हैं, जो वेरञ्जा के अकाल में दिखाई भी नहीं देते थे, किन्तु भिक्षु जैसे शान्तभाव से पहले थे वैसे ही इस समय भी है।" भगवान् ने धर्म-सभा में आकर इसे जान वालोदक जातक को कह— "भिक्षुओ ! सत्पुरुष लोभ को त्याग कर सुख और दुःख—दोनों में विकार-रहित ही होते हैं।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

८३—सब्बत्थ वे सप्पुरिसा वजन्ति न कामकामालपयन्ति सन्तो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ॥८॥

सत्पुरुष सभी (छन्द राग आदि) को त्याग देते हैं, वे काम-भोगों के लिए बात नहीं चलाते। सुख मिले या दुःख, पण्डितजन विकार नहीं प्रदर्शन करते।

कौन शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है ?

(धम्मिक स्थविर की कथा)

६, ९

श्रावस्ती का एक गृहस्थ, स्त्री के पुत्र पैदा होते ही घर से निकल कर प्रव्रजित हो गया और उद्योग करके थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया। पीछे अपने पुत्रों को देखने के विचार से जाकर उसने उसे भी उपदेश देकर प्रव्रजित कर दिया। बाद में स्त्री भी पुत्र और पति से रहित होकर अकेले घर में न

रह सकी, उसने भी भिक्षुणियों के पास जाकर प्रव्रजित होकर थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया।

एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने इसकी चर्चा की—"आवुस! धार्मिक उपासक ने घर से निकल कर अपने ता दुःख से छुटकारा पाया ही, स्त्री-पुत्र का भी आधार हुआ।" भगवान् ने आकर इसे जान—"भिक्षुओ! पण्डित को न अपने लिए और न दूसरे के लिए समृद्धि चाहनी चाहिये, केवल धार्मिक बनने और बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

८४—न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया॥ ९॥

जो अपने लिये या दूसरों के लिए पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहता और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वही शीलवान्, प्रज्ञावान और धार्मिक है।

पार जाने वाले थोड़े ही हैं

(धर्म श्रवण की कथा)

६, १०

श्रावस्ती नगर की एक गली के लोगों ने एक दिन समग्र होकर बारी-बारी से सारी रात धर्मोपदेश करवाया। सारी रात धर्म-श्रवण करने वालों में बहुत से थोड़ी देर सुनकर काम-क्लेश से पीड़ित होकर घर चले गये, कुछ वहीं बैठे-बैठे झँपने लगे। दूसरे दिन धर्म सभा में इसकी चर्चा हुई। भगवान् ने—"भिक्षुओ! इन प्राणियों में थोड़े ही पार जानेवाले हैं, शेष सभी भव-चक्र में पड़े हुए ही विहरते हैं।" कह कर धर्म का उपदेश देते हुए इन गाथाओं का कहा—

८५—अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावती॥ १०॥

मनुष्यों में पार जाने वाले थोड़े ही हैं, यह दूसरे लोग तो किनारे ही किनारे दौड़ने वाले हैं।

८६—ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ॥ ११ ॥

जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं, वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार करेंगे।

वह निर्वाण-प्राप्त हैं

(आगन्तुक पाँच सौ भिक्षुओं की कथा)

६, ११

कोसल राष्ट्र में पाँच सौ भिक्षु वर्षावास करके, जब भगवान् के दर्शनार्थ जेतवन में आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठे, तब भगवान् ने उन्हें उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

८७—कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो।
ओका अनोकं आगम्य विवेके यत्थ दूरमं ॥ १२ ॥

८८—तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ॥ १३ ॥

पण्डित बुरी बात को छोड़ अच्छी का अभ्यास करे। घर से बेघर हो एकान्त स्थान में रहे। भोगों का छोड़ अकिञ्चन हो वहीं रत रहने की इच्छा करे। पण्डित चित्त के मलों से अपने को शुद्ध करे।

८९—येसं सम्बोधि अङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं।
आदान-पटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता।
खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ॥ १४ ॥

जिनका चित्त सम्बोध्यङ्गों में अच्छी तरह अभ्यस्त हो गया है, जो अनासक्त हो परिग्रह के त्याग में रत, क्षीणाश्रव और द्युतिमान् हैं, वे ही लोक में निर्वाण पा चुके हैं।

———

७—अरहन्तवग्गो

विमुक्त को कष्ट नहीं

(जीवक की कथा)

७, १

राजगृह के गृद्धकूट पर्वत के ऊपर से देवदत्त ने भगवान् को मारने के लिए शिला-खण्ड फेंका, किन्तु वह एक उठी हुई चट्टान से रुक गया और उससे एक पपटी आकर भगवान् के पैरों में लगी, जिससे भगवान् के पैर से रुधिर निकल पड़ा। भगवान् को कड़ी वेदना हुई। भिक्षु उन्हें मद्दकुच्छि ले गये और वहाँ से फिर जीवकम्बवन में लाये। जीवक ने जब इस बात को सुना, तब आकर एक तेज दवा बाँधा और "भन्ते! एक दूसरे को भी दवा किया हूँ, उसे देखकर अभी आऊँगा, जब तक मैं न आऊँ, दवा ऐसी ही बँधी रहने दीजियेगा।" कह कर चला गया। वहाँ जाकर आते समय सन्ध्या हो गई। जब वह नगर-द्वार पर पहुँचा तब द्वार बन्द हो गया था। वह सोचने लगा—'अहो! मैंने बड़ा भारी अपराध किया। अन्य लोगों की भाँति तथागत के पैर में तेज दवा बाँध कर खोलने के लिए नहीं पहुँच सका और उसे खोलने का यह समय है, यदि नहीं खोला जायेगा, तो रात में भगवान् को कष्ट होगा।" भगवान् ने जीवक के मन की बात जान आयुष्मान् आनन्द से दवा खोलवा दी। दवा के खोलते ही रोग अच्छा हो गया।

प्रातःकाल जीवक जल्दी-जल्दी भगवान् के पास आया और प्रणाम करके पूछा—"भन्ते! भगवान् को रात में कष्ट हुआ?"

"जीवक! तथागत के सभी कष्ट बोधि-वृक्ष के नीचे ही शान्त हो गये।" भगवान् ने यह कह कर धर्मोपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९०—गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि।
सब्बगन्थप्पहीनस्स परिलाहो न विज्जति॥ १॥

जिसने मार्ग तय कर लिया है, जो शोक-रहित तथा सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ प्रहीण हो गई हैं, उसे कोई कष्ट नहीं।

स्मृतिमान् आलय को त्याग देते हैं

(महाकाश्यप स्थविर की कथा)

७, २

भगवान् के राजगृह में रहते हुए एक समय भगवान् के साथ चारिका जाने के लिए महाकाश्यप अपने चीवर आदि को धोने लगे। उसे देख, भिक्षुओं ने परस्पर कहा—"महाकाश्यप क्यों चीवर धो रहे हैं? इन्हें तो यहीं रहना चाहिये। राजगृह के अठारह करोड़ आदमियों में से अधिकांश इनके सम्बन्धी और सेवक हैं।" भगवान् ने भी जाते समय सोचा—"राजगृह के विहारों को खाली करके जाना अच्छा नहीं है, यहाँ किसी भिक्षु को रखना आवश्यक है। काश्यप के बहुत से यहाँ सेवक और सम्बन्धी हैं, उसे ही रखना समुचित होगा।" और महाकाश्यप को बुलाकर कहा—"काश्यप! तुम यहीं रहो।" महाकाश्यप ने "बहुत अच्छा भन्ते!" कह कर रहना स्वीकार कर लिया। तब भिक्षु परस्पर कहने लगे—"हम लोगों की बात सच्ची हुई, काश्यप को तो यहीं रहना चाहिये। भगवान् ने भिक्षुओं की इस बात को सुनकर—भिक्षुओं! मेरा पुत्र प्रत्ययों या कुलों में आसक्त होने वाला नहीं है, वह मेरी बात मानकर ही रुक गया है। मेरा पुत्र सरोवर में उतर विचरण कर चले जाने वाले राजहंस की भाँति अनासक्त होकर विहरने वाला है।" ऐसे धर्मोपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९१—उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते।
हंसा'व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते॥ २॥

स्मृतिमान् (ध्यान विपश्यना आदि) में लगे रहते हैं, वे आलय में रत नहीं होते। वे तो सरोवर को छोड़ चले जाने वाले हंस की भाँति आलय को त्याग देते हैं।

निर्वाण-प्राप्त की गति अज्ञेय है

(वेलट्ठिसीस स्थविर की कथा)

७, ३

जेतवन में रहते समय वेलट्ठिसीस स्थविर भिक्षाटन के लिए जाकर पाये

हुए भोजन को खाकर और भी भिक्षाटन कर सूखा भोजन ला रख देते थे, और ध्यान-भावना में कई दिन बिता कर आवश्यकता होने पर उसे खाते थे। प्रतिदिन भिक्षाटन जाने में उन्हें झंझट लगता था। भिक्षु इसे जान उन्हें बुरा-भला कहने लगे। जब यह बात भगवान् को ज्ञात हुई तब भगवान् ने शिक्षा-पद द्वारा ऐसा करने को निषेध करते हुए, स्थविर की अल्पेक्षता को प्रगट करने के लिए उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९२—येसं सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया॥ ३॥

जिन्हें कोई संग्रह नहीं, जो भोजन में संयत हैं, शून्य और अनिमित्त विमोक्ष (= निर्वाण) जिनका गोचर (= विचरण-स्थान) है, उनकी गति, आकाश में पक्षियों की गति की भाँति अज्ञेय है।

निर्वाण-प्राप्त की गति अज्ञेय है

(अनुरुद्ध स्थविर की कथा)

७, ४

राजगृह के वेलुवन महाविहार में विहरते समय एक दिन अनरुद्ध स्थविर चीवर फट जाने के कारण घूरे आदि पर वस्त्र खण्डों को चीवर बनाने के लिए खोज रहे थे। इसे देख उनके पूर्व जन्म की भार्या—जो तावतिंस के भवन में उत्पन्न हुई थी—एक घूरे में तेरह हाथ लम्बे और चार हाथ चौड़े तीन वस्त्रों को ऐसे छिपा कर रखा था, जिसे कि वे देख सकें। अनुरुद्ध स्थविर उन्हें देख, लेकर विहार आये। दूसरे दिन सभी भिक्षु चीवर सीने में लग गये। भगवान् भी वहीं रहे। उस दिन वह अनुरुद्ध स्थविर के पूर्व जन्म की भार्या नगर में घूम-घूम कर घोषणा की, कि आज आर्य लोग भिक्षाटन के लिये नहीं आयेंगे, विहार में ही दान पहुँचाना चाहिये। दोपहर में इतना अधिक यवागु, भात आदि आया कि भिक्षुओं के खाने के बाद बहुत बच गया। उसे देख बहुत से भिक्षु परस्पर कहने लगे—"आयुष्मान् अनुरुद्ध को ऐसा नहीं करना चाहिये कि

इतना अधिक भोजन मँगा कर फेंकना पड़े, क्या वे यह तो नहीं दिखाना चाहते कि उनके यहाँ बहुत सम्बन्धी हैं ?" इसे सुन, भगवान् ने—"भिक्षुओ ! क्या तुम लोग इसे अनुरुद्ध द्वारा मँगाया जानते हो ? यह मेरे पुत्र द्वारा मँगाया नहीं है। क्षीणाश्रव आहार सम्बन्धी बातें नहीं करते हैं। यह एक देवता के अनुभाव से आया है।" कह कर धर्मोपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९३—यस्सा'सवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥ ४ ॥

जिसके आश्रव (= मल) क्षीण हो गये हैं, जो आहार में आसक्त नहीं, तथा शून्य और अनिमित्त विमोक्ष जिसका गोचर है, उसकी गति, आकाश में पक्षियों की गति की भाँति अज्ञेय है।

अर्हत् की देवता स्पृहा करते हैं

(महाकात्यायन स्थविर की कथा)

७, ५

भगवान् के श्रावस्ती के पूर्वाराम में विहार करते समय महाकात्यायन स्थविर अवन्ती में रहते थे। वे नित्य सन्ध्या को धर्म श्रवण करने के लिए वहाँ से आते थे। एक समय महाप्रवारणा के दिन जब मृगारमाता के प्रासाद के नीचे सब महास्थविर लोग धर्म-श्रवण के लिए बैठे तब इन्द्र भी अपने परिवार के साथ आया। उसने महाकात्यायन स्थविर को न देखकर सोचा 'अच्छा होता यदि स्थविर भी आते।' उसी समय महाकात्यायन स्थविर भी अवन्ती से आकर अपने आसन पर बैठे हुए ही दिखाई दिये। उसने उन्हें देख कर प्रसन्न मन उनके पास जाकर पैर पकड़ कर प्रणाम किया और माला, पुष्प, गन्ध आदि से पूजा की। यह देख कर बहुत से भिक्षु परस्पर कहने लगे—"इतने महास्थविरों के होते हुए भी इन्द्र महाकात्यायन का ही पूजता है ! मानो यह मुख देखकर सत्कार करता है !" भगवान् ने इसे सुन—"भिक्षुओ ! मेरे पुत्र

महाकात्यायन के समान संयतइन्द्रिय वाले भिक्षु मनुष्यों और देवताओं को भी प्रिय होते हैं।" कह कर धर्मोपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९४—यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥५॥

सारथी द्वारा दमन किये गये अश्व के समान जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हो गई हैं, वैसे अहंकार रहित अनाश्रव सन्त (=अर्हत्) की देवता भी स्पृहा (= चाह) करते हैं।

अर्हत् अकम्प्य होता है

(सारिपुत्र स्थविर की कथा)

६, ७

जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु ने सारिपुत्र स्थविर के साथ इसलिए वैर बाँधा कि उन्होंने उसे नाम गोत्र से पुकार कर चारिका चलने को नहीं कहा। जब सारिपुत्र स्थविर अपने परिवार के भिक्षुओं के साथ चारिका के लिए निकले, तब उसने भगवान् के पास जाकर कहा—"भन्ते ! सारिपुत्र मेरी कनपट्टी तोड़ते हुए के समान मार कर बिना क्षमा कराये ही चले गये हैं।" भगवान् ने यह सुनकर सारिपुत्र स्थविर को, एक भिक्षु भेजकर बुलवाया। उस समय चारों ओर से भिक्षु एकत्र हो आये। भगवान् ने सारिपुत्र स्थविर से इस सम्बन्ध में छा। उन्होंने—"भन्ते ! जिसे कायगता स्मृति उपस्थित न हो, वह एक ब्रह्मचारी को मार कर जा सकता है। जैसे भन्ते ! पृथ्वी पर अशुचि भी फेंकते हैं और शुचि भी, किन्तु पृथ्वी न तो घृणा करती है और न आनन्दित ही होती है, ऐसे ही भन्ते ! जिसे कायगता स्मृति उपस्थित होती है, वह पृथ्वी के समान अकम्प्य होता है।" आदि प्रकार से अपने निर्दोष होने की बात कही। वह दोष लगाने वाला भिक्षु इसे सुन रोता हुआ, आँसू बहाता हुआ भगवान् के पैरों पर गिर पड़ा। तब भगवान् ने उसे सारिपुत्र से क्षमा माँगने को कहा। अभी वह भगवान् के पैरों पर ही गिरा था कि सारिपुत्र स्थविर ने उकड़ू बैठ दोनों हाथ जोड़—"भन्ते ! मैं उस

आयुष्मान् के दोष को क्षमा करता हूँ, यदि मुझसे दोष हुआ हो, तो उसे आयुष्मान् क्षमा करें।" कहा।

भिक्षु परस्पर सारिपुत्र स्थविर की प्रशंसा करने लगे—"आयुष्मान् सारिपुत्र ने मिथ्या दोषारोपण करने वाले भिक्षु पर क्रोध मात्र भी नहीं करके उकड़ूँ बैठ कर क्षमा माँगते हैं। भगवान् ने उनकी बातों को सुन—' भिक्षुओ ! सारिपुत्र जैसा व्यक्ति क्रोध नहीं कर सकता। उसका चित्त स्वच्छ जलाशय और इन्द्रकील के समान है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९५—पठवीसमो नो विरुज्झति इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो।
रहदो'व अपेत-कद्दमो संसारा न भवन्ति तादिनो ॥६॥

सुन्दर व्रत धारी तादि (= अर्हत्) पृथ्वी के समान क्षुब्ध नहीं होने वाला और इन्द्रकील के समान अकम्प्य होता है। वैसे पुरुष को कर्दम-रहित जलाशय की भाँति संसार (= मल) नहीं होते।

अर्हत् शान्त होते हैं

(कौशाम्बी वासी तिस्स स्थविर की कथा)

७, ७

कौशाम्बी का एक कुल पुत्र शास्ता के पास प्रव्रजित होकर कौशाम्बी वासी तिस्स स्थविर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब तिस्स स्थविर कौशाम्बी में वर्षा वास करके शास्ता के दर्शनार्थ श्रावस्ती जाने को तैयार हुए, तब उनके सेवक ने अपने सात वर्ष के पुत्र को स्थविर की सेवा करने के लिये लाकर उनके पास प्रव्रजित करा दिया। उसने श्रामणेर प्रव्रज्या के दिन सिर का बाल बनाते समय ही प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा लिया। स्थविर ने उसे साथ लेकर श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया।

मार्ग में वे दोनों एक विहार में गये। श्रामणेर को स्थविर आसन को ठीक करते ही समय निकल गया, तब स्थविर ने कहा—"श्रामणेर यहीं तुम भी सो रहे हो, आगन्तुक को बाहर सोना ठीक नहीं।" स्थविर

पृथग्जन थे। वह थोड़ी ही देर में सो गये। श्रामणेर ने देखा कि आज उपाध्याय के साथ रहते हुए तीसरी रात है, यदि यहाँ सोऊँगा, तो आपत्ति होगी। अतः वह एक किनारे बैठ कर ही सारी रात बिताया। प्रातः स्थविर ने उठकर उसे वैसे बैठे देख क्रोध से पंखा चला कर मारा वह श्रामणेर की आँख पर लगा तथा उसकी एक आँख फूट गई। श्रामणेर स्थविर को न बता एक हाथ से आँख दबाये, दूसरे हाथ से सारा कार्य किया। जब वह गर्म पानी के साथ स्थविर को एक हाथ से ही दातौन भी दिया, तब उनका श्रामणेर के आँख फूटने की बात मालूम हुई। वे उसके पैरों पर पड़ कर गिर क्षमा माँगे। श्रामणेर ने—'भन्ते! मैं क्षमा करता हूँ। इसमें आपका दोष नहीं है, यह संसार-चक्र का ही दोष है।" कह समझाया। किन्तु स्थविर को महा खेद हुआ। वे पश्चात्ताप करते हुए श्रामणेर के साथ भगवान् के पास गये। जब भगवान् ने कुशल क्षेम पूछा, तब सब बतला कर कहे—"यह श्रामणेर बड़ा ही गुणवान् है। आँख फूट जाने पर भी मेरे ऊपर क्रोध न करके कहा कि यह संसार-चक्र का ही दोष है।" यह सुनकर भगवान् ने—भिक्षु! क्षीणाश्रव किसी पर क्रोध नहीं करते हैं, वे शान्त इन्द्रिय और शान्त मन वाले होते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा जिसके अन्त में तिस्स स्थविर प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा लिए—

९६—सन्तं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो॥ ७॥

यथार्थ रूप से जानकर मुक्त हुए उपशान्त अर्हत् का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होते हैं।

उत्तम पुरुष

(सारिपुत्र स्थविर के प्रश्नोत्तर की कथा)

७, ८

जेतवन में रहते समय एक दिन तीस आरण्यक भिक्षु भगवान् के पास आये और वन्दना करके बैठे। भगवान् ने उनके अर्हत्व के निश्चय को देखकर

सारिपुत्र से पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी प्रश्न पूछा। प्रश्नोत्तर को सुनकर उन भिक्षुओं को कुछ सन्देह हुआ, तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र के प्रश्नोत्तर को ठीक बतला कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९७—अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो।
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥ ८ ॥

जो (अन्ध-) श्रद्धा से रहित है, अकृत (= निर्वाण) को जानने वाला है, (संसार की) सन्धि का छेदन करने वाला है, और उत्पत्ति-रहित है, तथा जिसने सारी तृष्णा को वमन (= त्याग) कर दिया है, वही उत्तम पुरुष है।

अर्हतों के विहरने की भूमि रमणीय

(खादिरवनिय रेवत स्थविर की कथा)

७, ९

रेवत स्थविर आयुष्मान् सारिपुत्र के छोटे भाई थे। वे विवाह के बाद मार्ग में से भाग कर आरण्यक भिक्षुओं के साथ प्रव्रजित होकर खदिरवन में चले गये और वहाँ सात वर्ष की ही अवस्था में उद्योग करते हुए प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा लिए। वर्षावास के बाद भगवान् आयुष्मान् सारिपुत्र आदि स्थविरों के साथ वहाँ गये। रेवत ने उनके आने को जान ऋद्धिबल से आसन आदि निर्मित किया। भगवान् खदिरवन (= खैरा के वृक्षों का जंगल) में एक महीना रहे। आते समय दो भिक्षुओं के उपाहन, तेल की फोंफी और जल-पात्र छूट गये। वे मार्ग में लौट कर फिर जब उन्हें लाने गये तब सारे वास-स्थान को काँटों से भरा पाये।

श्रावस्ती लौटने पर वे दोनों भिक्षु प्रातःकाल महोपासिका विशाखा के घर यवागु पीने गये। विशाखा ने उन्हें सत्कार पूर्वक यवागु आदि देकर पूछा—"भन्ते! आर्य रेवत का वासस्थान कैसा है?"

"मत पूछो उपासिके ! सारा काटों से भरा है।"

फिर दूसरे भिक्षु गये उनसे भी विशाखा ने पूछा। उन्होंने कहा— उपासिके ! रेवत का वासस्थान सुधर्मा देव-सभा जैसा है, मानो ऋद्धि से बनाया गया हो !" इसे सुनकर विशाखा को बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर में भगवान् भी भिक्षु-संग के साथ पधारे तब उसने पूछा—"भन्ते ! आर्य रेवत के स्थान के विषय में पूछने पर आपके साथ गये हुए भिक्षुओं में से कोई सुन्दर और कोई काँटो से भरा हुआ कहते हैं, क्या बात है ?" भगवान् ने—"उपासिके ! गाँव हो या जंगल, जिस स्थान में अर्हत् विहरते हैं, वह रमणीय ही होता है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

९८—गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमि रामायणेय्यकं ॥ ९ ॥

गाँव में या जंगल में, नीचे या ऊँचे, जहाँ कहीं अर्हत् विहार करते हैं, वह भूमि रमयणीय है।

आरण्य में वीतराग रमण करते हैं

(किसी स्त्री की कथा)

७, १०

एक पिण्डपातिक भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान ग्रहण कर एक कटे हुए उद्यान में जाकर श्रमण-धर्म करने लगे। श्रावस्ती की एक वेश्या किसी पुरुष को वहाँ आने का संकेत करके उद्यान के पास गई, किन्तु वह पुरुष नहीं गया। वेश्या बड़ी देर तक उसकी राह देख कर इधर-उधर घूमती हुई उस भिक्षु को देखी और उसे मोहित करने के लिए सामने खड़ी होकर नाना प्रकार के हाव-भाव दिखने लगी। भिक्षु को उसकी क्रिया से धर्म-संवेग उत्पन्न हो आया। उसी समय जेतवन-विहार की गन्धकुटी में बैठे हुए सर्वज्ञ शास्ता ने वेश्या के इस अनाचार और भिक्षु के धर्म-संवेग उत्पन्न हुए चित्त को

देख "भिक्षु ! काम भोग को खोजने वालों के न रमण करने योग्य स्थान में ही वीतराग रमण करते हैं।" इस प्रकार कह प्रकाश को व्याप्त करते हुए इस गाथा को कहा—

९९—रमयणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो ।
वीतराग रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥ १० ॥

वह रमणीय वन, जहाँ साधारण लोग रमण नहीं करते, वहाँ काम (= भोगों) को न खोजने वाले वीतराग रमण करेंगे।



८—सहस्सवग्गो

सार्थक एक पद श्रेष्ठ है

(तम्बदाठिक चोरघातक की कथा)

८, २

राजगृह में तम्बदाठिक नाम का एक चोरघातक (=जल्लाद) था, वह प्रति दिन प्राणदण्ड पाये हुए चोरों का वध करता था। यह कर्म करते हुए पचपन वर्ष हो गये थे। अब वह वृद्ध हो चला था। अतः राज्य की ओर से उसे अपदस्थ कर दिया गया। जिस दिन वह अपदस्थ हुआ, उस दिन घर आकर दूध में यवागु बनवाया और नदी में स्नान करके बैठकर उसे पीने की तैयारी करने लगा। उसी समय आयुष्मान् सारिपुत्र भिक्षा के लिए उसके द्वार पर आये। वह उन्हें सत्कारपूर्वक घर में बैठा कर यवागु दिया और उनके कथनानुसार स्वयं भी यवागु पिया। यवागु पीने के पश्चात् सारिपुत्र स्थविर ने दानानुमोदन किया, जिससे उसे स्रोतापत्ति की अनुलोमिक शान्ति प्राप्त हुई।

जब सारिपुत्र स्थविर विहार जाने लगे तब वह भी थोड़ी दूर पीछे-पीछे जाकर लौटा। लौटते समय एक यक्षिणी गाय के वेष में आकर उसे जान से मार डाली। वह मर कर तावतिंस भवन में उत्पन्न हुआ।

भिक्षुओं ने यह समाचार पाकर भगवान् से कहा और उसकी गति को पूछा। भगवान् ने तावतिंस-भवन में उत्पन्न होने को बतलाया। तब भिक्षुओं ने कहा—"भन्ते! अनुमोदन का धर्मोपदेश बलवान् नहीं है, प्रत्युत पचपन वर्ष तक उसके द्वारा किया गया पाप कर्म महान् है, कैसे उसने इस विशेषता को प्राप्त की?" भगवान् ने—"भिक्षुओ! मेरे उपदिष्ट धर्म को थोड़ा या बहुत मत समझो। सार्थक एक वचन भी श्रेष्ठ है।" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१००—सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति॥ १॥

व्यर्थ के पदों से युक्त हजार वचन से भी, सार्थक एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है।

एक गाथापद श्रेष्ठ है

(दारुचीरिय स्थविर की कथा)

८, २

सुप्पारक बन्दरगाह (= तीर्थ) पर दारुचीरिय नामक एक वल्कलधारी साधु बड़े लाभ-सत्कार के साथ वास करता था। वह भगवान् के गुणों को सुन, वहाँ से चलकर जेतवन आया। जिस समय दारुचीरिय जेतवन पहुँचा, उस समय भगवान् भिक्षाटन के लिए नगर में गये हुए थे। वह भिक्षुओं से पूछ भगवान् के पास गया और एक गली में भिक्षाटन करते हुए पाया। उसने भगवान् से धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना की, किन्तु भगवान् ने असमय कह कर इनकार किया। बार-बार के आग्रह से परम करुणालु तथागत ने संक्षेप में खड़े-खड़े उपदेश दिया जिसे सुनकर उसका चित्त सभी मलों से विमुक्त हो गया। वह भगवान् को प्रणामकर पुनः जेतवन की राह लिया। मार्ग में एक यक्षिणी गाय के वेष में आकर जान से मार डाली।

भगवान् ने भिक्षाटन से लौटते समय दारुचीरिय के मृत शरीर को देखकर भिक्षुओं द्वारा चिता बनवा कर जलवाया तथा स्तूप का निर्माण करवाया जेतवन में जाने पर भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित करके कहा—"भिक्षुओ ! मेरे श्रावकों में दारुचीरिय क्षीप्र ज्ञान प्राप्त करने वालों में सर्वश्रेष्ठ है।" भिक्षुओं ने भगवान् से दारुचीरिय को उपदेश देने की सारी बात पूछी। भगवान् ने बतलाते हुए—"भिक्षुओ ! मेरे धर्म को थोड़ा या बहुत मत समझो व्यर्थ के पदों से युक्त हजार गाथाओं से भी अर्थयुक्त एक गाथा पद श्रेष्ठ है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१०१—सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता।
एकं गाथपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ २ ॥

अनर्थ पदों से युक्त हजार गाथाओं से भी एक गाथा पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है।

एक धर्म-पद श्रेष्ठ है

(कुण्डलकेशी थेरी की कथा)

८, ३

राजगृह की रहने वाली जम्बू नाम की एक परिव्राजिका थी। वह जामुन की शाखा के साथ घूमती हुई प्रश्न पूछती थी। वह भिक्षाटन के साथ नगर के बाहर एक जगह जामुन की शाखा को गाड़ देती थी और कह जाती थी कि जो मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सके, वह इसे उखाड़े। एक बार वह घूमते हुए श्रावस्ती पहुँची और नगर के बाहर जामुन की शाखा को गाड़ कर भिक्षाटन के लिए गई। आयुष्मान् सारिपुत्र ने उसे देख लड़कों से पूछकर उखड़वा दिया। जम्बू परिव्राजिका आकर शाखा को उखड़ी हुई पा लड़कों से पूछी। लड़कों के बतलाने पर आयुष्मान् सारिपुत्र के पास प्रश्न पूछने गई। वह जितने प्रश्नों को पूछी स्थविर ने सबका उत्तर देकर उससे "एक नाम क्या है?" पूछा किन्तु वह कुछ उत्तर न दे सकती हुई स्थविर से ही पूछी। स्थविर ने कहा—"बिना प्रव्रजित हुए मैं नहीं बता सकता।" तब वह भिक्षुणियों के पास जाकर प्रव्रजित हो गई। अब उसका नाम कुण्डलकेशी पड़ा। वह ध्यानभावना करके कुछ दिनों में प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा ली।

एक दिन धर्म-सभा में उसकी चर्चा हुई। भगवान् ने आकर उसे जान—"भिक्षुओ! मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म को थोड़ा या बहुत मत समझो, अनर्थपदों से युक्त बहुत गाथायें नहीं श्रेष्ठ होती हैं, किन्तु धर्मपद एक भी श्रेष्ठ होता है।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

१०२—यो च गाथासतं भासे अनत्थपदसंहिता।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥ ३ ॥

जो अनर्थपदों से युक्त सौ गाथायें भी कहे, उससे धर्म का एक पद भी श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर उपशान्त हो जाता है।

१०३—सो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥ ४ ॥

जो संग्राम में हजारों मनुष्य को जीत ले, उससे उत्तम संग्राम-विजयी वही है जो एक अपने स्वयं को जीत ले।

अपने को जीतना श्रेष्ठ है

(अनर्थ पूछने वाले ब्राह्मण की कथा)

८, ४

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन एक जुआड़ी ब्राह्मण उनके पास जाकर 'अनर्थ' पूछा। भगवान् ने उसे 'अनर्थ' की बातों को बता कर ब्राह्मण से पूछा—"ब्राह्मण ! जूये में तुम्हारी जय होती है या पराजय ?"

"जय भी होती है और पराजय भी।"

"ब्राह्मण ! दूसरे को जीतना श्रेष्ठ नहीं है, किन्तु जो अपने को क्लेशों से जीत लेता है, वही जय श्रेष्ठ है, उस जय को फिर कोई बेजीता नहीं कर सकता।" भगवान् ने यह कह कर धर्मोपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

१०४—अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा प्रजा।
अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्ञतचारिनो ॥ ५ ॥

१०५—नेव देवो न गन्धब्बो न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥ ६ ॥

इन अन्य प्रजाओं के जीतने की अपेक्षा अपने को जीतना श्रेष्ठ है। अपने को दमन करने वाला, और नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है, उसके जीते को न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा सहित मार बेजीता कर सकते हैं।

परिशुद्ध मन वाले की पूजा श्रेष्ठ है

(सारिपुत्र स्थविर के मामा की कथा)

८, ५

राजगृह के वेलुवन में विहार करते समय एक दिन सारिपुत्र स्थविर अपने मामा ब्राह्मण के पास गये और पूछे—"क्या ब्राह्मण ! कोई पुण्य कर्म करता है ?"

"हाँ भन्ते ब्रह्मलोक जाने के लिए महीने-महीने हजार रुपये व्यय करके निर्ग्रन्थों को दान देता हूँ।"

इसे सुनकर स्थविर ने उसे भगवान् के पास चलकर ब्रह्मलोक जाने वाले मार्ग को पूछने के लिए कहा। वह स्थविर के साथ ही भगवान् के पास गया और अपनी सब क्रिया कह सुनाया। भगवान् ने—"ब्राह्मण ! तेरे इस प्रकार से दिये गये सौ वर्ष के दान से भी मुहूर्तमात्र प्रसन्न चित्त से मेरे श्रावकों को देखना या कलछी भर भिक्षा देनी श्रेष्ठ है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१०६—मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ७ ॥

जो महीने-महीने सौ वर्ष तक हजार (=रुपये) से यजन करे, और यदि परिशुद्ध मन वाले एक (पुरुष) को मुहूर्त भर भी पूजे, तो सौ वर्ष के हवन से वह पूजा ही श्रेष्ठ है।

परिशुद्ध मनवाले की पूजा श्रेष्ठ है

(सारिपुत्र स्थविर के भांजा की कथा)

८, ६

सारिपुत्र स्थविर का भांजा ब्रह्मलोक जाने के लिए महीने-महीने एक पशु का वध करके अग्निहोत्र करता था। एक दिन स्थविर उसके पास गये और

ब्रह्मलोक का मार्ग बतलाने के लिए भगवान् के पास बुला लाये। भगवान् ने—"ब्राह्मण! सौ वर्ष भी इस प्रकार अग्निहोत्र करने से मुहूर्त भर भी मेरे श्रावकों को पूजना श्रेष्ठ है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१०७—यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावितत्तानं मुहूत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥ ८ ॥

जो प्राणी सौ वर्ष तक वन में अग्निहोत्र करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को मुहुर्त भर भी पूजे, तो सौ वर्ष के हवन से वह पूजा ही श्रेष्ठ है।

यज्ञ और हवन से प्रणाम करना श्रेष्ठ है

(सारिपुत्र स्थविर के मित्र की कथा)

८, ७

सारिपुत्र स्थविर का एक मित्र ब्रह्मलोक जाने के लिए यज्ञ करता था। एक दिन स्थविर उसके पास गये और बुलाकर भगवान् के पास लाये। भगवान् ने—"ब्राह्मण! वर्ष भर यज्ञ करके सांसारिक मनुष्यों को दिया हुआ दान प्रसन्न चित्त से, मेरे श्रावकों को वन्दना करने से उत्पन्न हुए पुण्य के चौथाई भाग के बराबर भी नहीं है।" कह कर धर्म का उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

यज्ञ हवन
१०८—यं किञ्चि यिट्ठं च हुतं च लोके
संवच्छरं यजेय पुञ्ञपेक्खो। पुण्य चाहने वाला।
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥ ९ ॥

यदि पुण्य को चाहने वाला वर्ष भर लोक में यज्ञ और हवन करे, तो भी वह सब ऋजुभूत (व्यक्तियों) को किये गए अभिवादन के चौथाई फल के बराबर भी नहीं होता, प्रत्युत अभिवादन ही श्रेष्ठ है।

चार बातें बढ़ती हैं

(दीर्घायु कुमार की कथा)

८, ८

एक समय भगवान् दीघलम्बक में विहार कर रहे थे। वहाँ विरहते समय एक दिन एक ब्राह्मण अपने नन्हें बच्चे और स्त्री के साथ भगवान् के पास आकर प्रणाम किया। भगवान् ने ब्राह्मण और उसकी स्त्री के प्रणाम करने पर "दीर्घायु हो।" कहा, किन्तु बच्चे के प्रणाम करने पर मौन धारण कर लिया। यह देखकर ब्राह्मण ने कारण पूछा। भगवान् ने कहा—"ब्राह्मण! यह बच्चा केवल सप्ताह भर ही जीयेगा।" तब ब्राह्मण ने बच्चे के दीर्घायु होने का उपाय पूछा। भगवान् ने अपने घर मण्डप बना कर सप्ताह भर रातों दिन परित्राण-पाठ करवाने को कहा। ब्राह्मण भिक्षु और भगवान् को निमन्त्रित कर परित्राण-पाठ कराया। आठवें दिन बच्चे के प्रणाम करने पर शास्ता ने 'दीर्घायु हो' कहा। ब्राह्मण ने पूछा—"भन्ते! यह कितने वर्ष तक जीयेगा?" "एक सौ बीस वर्ष तक।"

एक दिन धर्म सभा में भिक्षुओं में चर्चा होने लगी—"देखो आवुस! जो आयुवर्धन कुमार सप्ताह भर में ही मरने वाला था, वह अब सयाना होकर पाँच सौ उपासकों से घिरा विचरता है। जान पड़ता है इन प्राणियों की आयु वृद्धि के कारण हैं।" भगवान् ने भिक्षुओं की बातों को सुन—"भिक्षुओ! न केवल आयु से ही, यह प्राणी गुणवानों को प्रणाम करते हुए चारों बातों में बढ़ते हैं, विघ्न से छूट जाते हैं और आयु-पर्यन्त जीवित रहते हैं।" कह कर धर्मोपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१०९—अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं॥ १०॥

जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करने वाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—(१) आयु (२) वर्ण (३) सुख और (४) बल।

शीलवान् का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है

(संकिच्च श्रामणेर की कथा)

८, १

जेतवन में रहते समय तीस भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान ग्रहण कर ध्यान-भावना करने के लिए जंगल में जाने के लिए आज्ञा माँगे। भगवान् ने उनके भविष्य विघ्न को देख कर कहा—"भिक्षुओ! सारिपुत्र से मिलकर जाओ।" जब वे सारिपुत्र स्थविर के पास गये तब उन्होंने भगवान् द्वारा इनको भेजने का कारण जानकर पूछा—"क्या आवुस! तुम लोगों के साथ कोई श्रामणेर नहीं है?" "नहीं आवुस!"

"अच्छा, तो इन संकिच्छ श्रामणेर को लेकर जाओ।" उनके बहुत मना करने पर भी सारिपुत्र स्थविर ने समझा बुझा कर संकिच्च श्रामणेर को उनके साथ भेजा। वे श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर जाकर एक जंगल में ध्यान भावना करने लगे। उसी जंगल में पाँच सौ चोर रहते थे। एक दिन वे इनके पास आकर कहे—"भन्ते! हम लोगों को एक भिक्षु की आवश्यकता है, उसे ले जाकर देवता को बलि चढ़ायेंगे।" यह सुनकर क्रमशः सभी भिक्षु उनके साथ जाने को तैयार हुए किन्तु अन्त में संकिच्च श्रामणेर ने उन भिक्षुओं को रोक कर स्वयं जाने को तैयार हुआ। भिक्षु श्रामणेर को जाने देना नहीं चाहते थे, किन्तु उसने कहा कि इसी को देखकर भगवान् की जिज्ञासा के अनुसार हमारे आचार्य ने आप लोगों के साथ भेजा था।

चोर श्रामणेर को जब ले जाने लगे, तब वे आँसू भरी आँखों से उसे देखते हुए अपने हृदय को नहीं रोक सके। संकिच्च श्रामणेर सात वर्ष की अवस्था में ही प्रव्रजित होने के दिन प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व पा लिया था, अतः उसे कोई चिन्ता न हुई। जब चोर उसे ले गये और बलि करने के लिए चोरों का अगुआ उसे मारना चाहा, तब उसकी तलवार श्रामणेर के शरीर पर लग कर टेढ़ी हो गई। श्रामणेर उस समय वह ध्यान समापन्न होकर निश्चल बैठा था। अन्त में सभी चोर आश्चर्य-चकित हो श्रामणेर के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगे, तथा उसके साथ ही दस शील को ग्रहण कर प्रव्रजित हो गये।

श्रामणेर उन प्रव्रजितों को साथ लेकर क्रमशः चलकर भगवान् के पास गया। भगवान् ने संकिच्च श्रामणेर द्वारा सभी कथा को सुन, उन प्रव्रजितों को सम्बोधित कर—"तुम लोगों के चोरी करके दुःशील में रहने वाले सौ वर्ष के जीवन से, इस समय शील में प्रविष्ट हुआ एक दिन का भी जीवन श्रेष्ठ है।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

११०——यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो ॥ ११ ॥

दुःशील और एकाग्रता रहित के सौ वर्ष के जीने से भी शीलवान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है

(खाणु कोण्डञ्ञ स्थविर की कथा)

८, १०

खाणु कोण्डञ्ञ स्थविर भगवान् के पास कर्म-स्थान को ग्रहण कर जंगल में जा ध्यान-भावना करके थोड़े दिनों में अर्हत्व पा लिये। अर्हत्व-प्राप्ति के बाद वे भगवान् के पास दर्शनार्थ जेतवन की ओर चल दिये। मार्ग में थकावट के कारण एक जगह एक पत्थर की चट्टान पर बैठकर ध्यान समापन्न हो गये। रात में पाँच सौ चोर किसी गाँव को लूट कर गठरी बाँधे माल असबाब लेकर उस मार्ग से जाते हुए स्थविर स्थाणु (=खाणु) समझ कर उनके ऊपर सारा माल-असबाब रखकर सो रहे। प्रातःकाल जब वे अपना माल-असबाब लेकर चले, तब स्थविर उठे। उन्हें वे अमनुष्य समझ कर चिल्लाकर भागने लगे। स्थविर ने "उपासको! मैं भिक्षु हूँ, मत डरो।" कहा। वे लौट कर स्थविर के पैरों पर गिर कर क्षमा माँग उन्हीं के पास प्रव्रजित हो गये।

खाणु कोण्डञ्ञ स्थविर उनके साथ भगवान् के पास गये और प्रणाम करके एक बैठे। भगवान् ने इन नवागत भिक्षुओं की सारी बातों को पूछकर—

"भिक्षुओ ! ऐसे दुष्प्रज्ञ-कामों में लगे सौ वर्ष जीने से इस समय तुम लोगों का प्रज्ञा-युक्त एक दिन का भी जीवन श्रेष्ठ है।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१११—यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो ॥ १२ ॥

दुष्प्रज्ञ और एकाग्रता रहित के सौ वर्ष के जीने से भी प्रज्ञावान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

उद्योगी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है

(सप्पदासक स्थविर की कथा)

८, ११

सप्पदासक स्थविर प्रव्रज्या के थोड़े ही दिनों के बाद भिक्षु चर्या से उदास हो गये। वे पुनः गृहस्थ होने से मर जाना श्रेष्ठ समझते थे। उन्होंने एक दिन एक साँप डँसा कर मर जाने का प्रयत्न किया, किन्तु सफलता न मिली। फिर एक दिन आत्म-हत्या करने के लिए हजाम के छूरे को लेकर जेतवन से बाहर जाकर एक वृक्ष के सहारे खड़ा हो गये। उस समय उन्हें उपसम्पदा से लेकर अपना शील बिल्कुल परिशुद्ध दिखाई दिया, जिससे प्रीति उत्पन्न हो आई और चित्त विपश्यना की ओर दौड़ा। वे वहीं खड़े-खड़े अर्हत्व पा लिये।

जब भिक्षुओं को यह बात मालूम हुई तब वे एक दिन भगवान् से कहे—"भन्ते ! सप्पदासक स्थविर ने छूरा लेकर आत्म-हत्या करने के लिये खड़ा होने मात्र में भी अर्हत्व पा लिया !" भगवान् ने—"हाँ, भिक्षुओ ! उद्योगी भिक्षु पैर उठाकर रखने मात्र में ही अर्हत्व पा लेता है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

११२—यो च वस्ससतं जीवे कुसीतो हीनवीरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतो दल्हं ॥ १३ ॥

आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़ उद्योगी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

उत्पत्ति और विनाश का मनन करना श्रेष्ठ है

(पटाचारा थेरी की कथा)

८, १२

श्रावस्ती की एक स्त्री अपने दो पुत्रों, और पति के मरने के बाद माता, पिता और भाई को एक ही चिता में जलते हुए देखकर शोक से पागल हो गई। उसे अपने वस्त्र का भी ख्याल नहीं रहा। नंगी ही इधर-उधर विचरती थी। वह एक दिन जेतवन के पास गई। उसे देखकर आदमी उधर जाने से रोकना चाहे, किन्तु भगवान् ने रोकने से मना किया। जब वह भगवान् के पास गई तब उसे होश आया और अपने को नंगी देख लज्जित हो भूमि पर उकड़ूँ बैठ गई। उस समय एक पुरुष ने उसे वस्त्र दिया, जिसे पहन कर वह भगवान् के पैरों पर गिर कर पञ्चाङ्ग प्रणाम की। भगवान् ने उसे समझाते हुए उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में वह स्रोतापत्ति फल को पा ली और प्रव्रजित होने की कामना की। तत्पश्चात् भगवान् ने उसे भिक्षुणियों के पास भेज कर प्रव्रजित कराया। तब से उसका नाम पटाचारा थेरी पड़ा।

एक दिन पटाचारा थेरी पानी से पैर धोती हुई पञ्चस्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश का मनन कर रही थी। शास्ता ने गन्धकुटी में बैठे हुए ही उसके चित्त-प्रवृत्ति को जानकर "पटारे! पञ्चस्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश का मनन न करने वाले के सौ वर्ष के जीवन से भी, मनन करने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।" ऐसे कहते हुए सामने खड़ा होकर उपदेश देने के समान इस गाथा को कहा—

११३— यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बयं ॥ १४ ॥

पञ्चस्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश का मनन न करने वाले के

सौ वर्ष के जीवन से, उत्पत्ति और विनाश का मनन करने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

निर्वाणदर्शी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है

(किसा गोतमी की कथा)

८, १३

श्रावस्ती के एक महासम्पत्तिशाली सेठ की किसी गोतमी नामक स्त्री थी। वह अपने नन्हें इकलौते पुत्र के मर जाने पर, उसे गोद में लेकर मरे हुए को जीवित करने वाले वैद्यों को खोजती फिरती थी। लोगों के कथनानुसार वह जेतवन में भगवान् के पास गई और प्रणाम कर दवा पूछी। भगवान् ने मन्त्र पढ़ने के लिए उसे ऐसे घर से थोड़ा सरसों लाने को कहा, जिस घर में कोई मरा न हो। वह नगर में जाकर सबके घर छूती-पूछती थक गई, किन्तु कोई भी घर ऐसा नहीं मिला, जिसमें कोई मरा न हो। अन्त में वह संसार की इस विषम परिस्थिति को समझ कर मरे हुए पुत्र के शरीर को एक झाड़ी में फेंक दी, और भगवान् के पास गई। भगवान् ने पूछा—"क्या सरसों लाई है?"

"भन्ते! सरसों कहाँ? जीवित लोगों से बहुत अधिक तो मरे ही हैं।"

इसे सुनकर भगवान् ने उसे संसार की अनित्यता को दिखलाते हुए उपदेश दिया। उपदेश को सुनकर वह स्रोतापत्ति फल को प्राप्त हो गई और प्रव्रजित होने की कामना की। भगवान् ने उसे भिक्षुणियों के पास भेजकर प्रव्रजित कराया।

एक दिन किसा गोतमी थेरी उपोशथ-गृह में दीपक जलाती हुई लौ को जलती हुई देख संसार की उत्पत्ति और विनाश का मनन करने लगी। उस समय भगवान् गन्धकुटी में बैठे हुए उसकी चित्त-प्रवृत्ति को जान, प्रकाश फैला कर सामने बैठे हुए उपदेश करने के समान—"गोतमी! ये प्राणी दीपक की लौ की भाँति उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, केवल निर्वाण प्राप्त ही नहीं दिखाई देते हैं। ऐसे ही निर्वाण नहीं देखने वालों के सौ वर्ष जीने से, निर्वाण देखने वाले का क्षण मात्र का भी जीवन श्रेष्ठ है।" कह कर इस गाथा को कहा—

११४—यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं ॥ १५ ॥

निर्वाण को न देखने वाले के सौ वर्ष के जीवन से निर्वाण को देखने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

धर्मदर्शी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है

(बहुपुत्तिका थेरी की कथा)

८, १४

श्रावस्ती में एक स्त्री को सात पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं । पति के मर जाने के बाद वह अपने धन को पुत्रों में बाँट कर उनके पास रहने लगी, किन्तु थोड़े ही दिनों में वे इसका अनादर करने लगे, तब वह भिक्षुणियों के पास आकर प्रव्रजित हो गई । भिक्षुणियों ने उसका नाम बहुपुत्रिका थेरी रखा ।

वह वृद्धावस्था में प्रव्रजित होने के कारण सदा श्रमण धर्म में लगी रहती थी । एक दिन शास्ता ने उसके चित्त को धर्म में लगा हुआ देख कर गन्धकुटी में बैठे हुए ही प्रकाश व्याप्त कर उसके सामने बैठकर उपदेश करने के समान—"बहुपुत्तिके ! मेरे उपदिष्ट धर्म को न देखने वाले के सौ वर्ष के जीवन से भी, धर्मदर्शी का एक मुहूर्त का जीवन श्रेष्ठ है ।" कह कर इस गाथा को कहा—

११५—यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं ॥ १६ ॥

उत्तम धर्म को न देखने वाले के सौ वर्ष के जीवन से, उत्तम धर्म को देखने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

९—पापवग्गो

पुण्य करने में शीघ्रता करे

(चूकेलसाटक ब्राह्मण की कथा)

९, १

श्रावस्ती में चूकेलसाटक नाम का एक ब्राह्मण था। उसके पास एक ही ओढ़ने के लिये चादर थी। जिसे स्त्री-पुरुष दोनों ओढ़ते थे। एक रात ब्राह्मण जेतवन में भगवान् का उपदेश सुनते हुए सोचा—"इस चादर को भगवान् को दान कर दूँ" किन्तु फिर मोह हो आया। तत्पश्चात् पुनः दान करने के लिए चित्त उत्पन्न होकर मोह से कंजूसी के रूप में बदल गया। इसी प्रकार दान और मात्सर्य के चित्तों से संग्राम करते ही प्रथम और मध्यम याम बीत गया। पिछले याम में वह उसे ले जाकर भगवान के पाद-पंकजों पर रख कर "मैं जीत लिया, मैं जीत लिया" कहा। कोशल नरेश प्रसेनजित् इसे सुनकर, ऐसा कहने का कारण पुछवाया। जब राजा को ज्ञात हुआ कि चूकेलसाटक ब्राह्मण ने महा दुष्कर दान दिया है, तब प्रसन्न होकर उसे एक जोड़ा वस्त्र दिया। वह उसे पाकर भगवान् को दान कर दिया। इस प्रकार राजा ने क्रमशः ब्राह्मण को बत्तीस जोड़े वस्त्र दिया। ब्राह्मण ने केवल दो जोड़े वस्त्र स्त्री और अपने लिए लेकर शेष सब भगवान् को दान कर किया।

दूसरे दिन राजा ने चूकेलसाटक ब्राह्मण को चार हाथी, चार घोड़े, चार स्त्रियाँ, चार हजार कार्षापण और चार गाँवों को दिया। सन्ध्या को धर्म सभा में इसकी चर्चा चली। भगवान् ने आकर चलती हुई बात के विषय में पूछ— "भिक्षुओ! पुण्य कर्म करने वाले को उत्पन्न हुए कुशल चित्त के क्षण ही कर लेना चाहिये, विलम्ब नहीं करना चाहिये।" ऐसे कुशल-कर्म करने के लिए उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

११६—अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मिं रमते मनो॥ १॥

पुण्य करने में शीघ्रता करे, पाप से चित्त को हटाये। पुण्य-कार्य को धीमी गति से करने वाले का मन पाप में लग जाता है।

पाप का संचय दुःख-दायक है

(सेय्यसक स्थविर की कथा)

९, २

सेय्यसक स्थविर लालुदायी स्थविर के कहने पर जब बार-बार 'संघादिसेस' कर्म को किये, तब भगवान् ने उसे जान शिक्षापद का प्रज्ञापन कर—"पाप कर्म इस जन्म में भी, दूसरे जन्म में भी दुःखदायक ही होता है।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

११७—पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥ २ ॥

मनुष्य यदि पाप कर दे तो उसे बार-बार न करे। उसमें रत न होवे, क्योंकि पाप का संचय दुःखदायक है।

पुण्य का संचय सुखदायक है

(लाजदेवधीता की कथा)

९, ३

महाकाश्यप स्थविर पिप्फलि गुहा में रहते समय सातवें दिन ध्यान से उठकर भिक्षाटन के लिए गये। एक खेत की रखवाली करने वाली कन्या स्थविर को लावा (= लाजा) दान की। स्थविर जब लावा लेकर आगे बढ़े, तब कन्या को एक विषधर सर्प ने डँस दिया, जिससे वह वहीं मर गयी। कन्या प्रसन्न चित्त से मर कर स्थविर को दान देने के पुण्य से तावतिंस भवन में देव कन्या होकर उत्पन्न हुई। वह वहाँ अपने उत्पन्न होने के कारण का विचार करती हुई महाकाश्यप स्थविर को दान देने के कारण को जान, नित्य प्रातः पिप्फलिगुहा के पास आकर झाड़ू लगाना, पानी लाकर रखना आदि काम करना शुरू की, जिससे की उसकी सम्पत्ति स्थिर हो जाय। जब स्थविर को इसका पता लगा तब उन्होंने देवकन्या को फिर कभी ऐसा न करने को कहा।

देव कन्या स्थविर का उपस्थान करना चाहती हुई, बार-बार आज्ञा माँगी, किन्तु स्थविर ने निषेध ही किया। तब वह आकाश में खड़ी होकर रोने लगी।

श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में बैठे हुए भगवान् ने देवकन्या के रोने के शब्द को सुनकर प्रकाश को फैला, उसके सामने बैठकर उपदेश करने के समान—"देवधीते! मेरे पुत्र काश्यप का रोकना कर्त्तव्य है, किन्तु पुण्य करना चाहने वाले का पुण्य-कर्मों को करना ही। पुण्य का करना इस लोक और परलोक—दोनों जगह में सुखदायक है।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

११८—पुञ्ञञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो॥ ३॥

यदि मनुष्य पुण्य करे, तो उसे बार-बार करे। उसमें रत होवे, क्योंकि पुण्य का संचय सुखदायक होता है।

फल प्राप्त होने पर कर्म सूझते हैं

(अनाथपिण्डिक सेठ की कथा)

९, ४

अनाथपिण्डिक सेठ के घर के चौथे द्वार पर एक देवता रहता था। एक दिन रात में जब अनाथपिण्डिक सोने के लिए शय्या पर गया, तब वह उसके पास आकर कहा—"गृहपति! दान देते-देते तुम्हारा सारा धन खर्च हो गया, अब तुम निर्धन हो चले। श्रमण गौतम और भिक्षुओं को दान न देकर शेष धन को व्यापार आदि में लगाओ।" इसे सुनकर स्रोतापन्न उपासक देवता को बहुत डाँटा और कहा कि वह उसके घर से निकल जाय। देवता स्रोतापन्न उपासक की बातों को सुनकर वहाँ खड़ा न रह सका। नगर में इधर-उधर रहने के लिए स्थान खोजा, किन्तु वैसा सुन्दर स्थान नहीं पाया। अन्त में वह उपासक से क्षमा माँगने के लिए इन्द्र के परामर्श से अन्न द्वारा उसके सारे कोष्ठागारों और चौवन करोड़ अशर्फियों से खजाने को भर कर पुनः एक रात उपासक के पास जाकर अपने दण्ड-कर्म को बतलाकर क्षमा माँगा। उपासक ने उसे अपने साथ भगवान् के पास चलने को कहा।

दूसरे दिन अनाथपिण्डिक उसे अपने साथ लेकर भगवान् के पास गया। देवता ने शास्ता के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगी। भगवान् ने उसे क्षमा देकर गृहपति से भी क्षमा दिलायी और पुण्य-पाप के विपाक के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए—"गृहपति! पापी व्यक्ति भी जब तक पाप अपना फल नहीं देता है, तब तक उसे अच्छा समझता है, किन्तु जब फल देता है, तब वह पाप को देखता है। ऐसे ही पुण्यात्मा भी जब तक पुण्य अपना फल नहीं देता है, तब तक उसे बुरा समझता है, किन्तु जब फल देता है, तब उसे अच्छा मानता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

११९—पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति॥ ४॥

जब तक पाप का फल नहीं मिलता है, तब तक पापी भी पाप को अच्छा नहीं समझता है, किन्तु जब पाप का फल मिलता है, तब उसे पाप दिखाई पड़ने लगते हैं।

१२०—भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति॥ ५॥

जब तक पुण्य का फल नहीं मिलता है, तब तक पुण्यात्मा भी पुण्य को भी बुरा समझता है, किन्तु जब पुण्य का फल मिलता है, तब उसे पुण्य दिखाई पड़ने लगते हैं।

पाप को थोड़ा न समझे

(असंयत परिष्कार वाले भिक्षु की कथा)

९, ५

जेतवन महाविहार में एक असंयत-परिष्कार वाला भिक्षु जिस परिष्कार को जहाँ ले जाता था, उसे वहीं छोड़ देता था। भिक्षुओं को समझाने और कहने पर भी उनकी बातों पर ध्यान नहीं देता था। एक दिन भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने उस भिक्षु को बुलवा कर सब बातों को पूछ—"भिक्षु! भिक्षुओं को ऐसा नहीं करना चाहिए। पाप-कर्म को

थोड़ा नहीं समझना चाहिये। जैसे खुले मैदान में रखा हुआ बर्तन वर्षा होने पर एक बूँद से भर जाता है, ऐसे ही पाप कर्म करने वाला व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा करके बहुत अधिक पाप कर्मों को कर डालता है।" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२१—मावमञ्ञेथ पापस्स न मन्तं आगमिस्सति।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति।
वालो पूरति पापस्स थोक-थोकम्पि आचिनं॥ ६॥

"वह मेरे पास नहीं आयेगा" ऐसा सोचकर पाप की अवहेलना न करे। (जैसे) पानी की बूँद के गिरने से घड़ा भर जाता है, ऐसे ही मूर्ख थोड़ा-थोड़ा संचय करके पाप को भर लेता है।

पुण्य को थोड़ा न समझे

(बिलालपादक सेठ की कथा)

९, ६

श्रावस्ती का एक गृहस्थ भगवान् के उपदेश को सुन कर दूसरे दिन भोजन करने के लिए उन्हें भिक्षु संघ के साथ निमन्त्रित किया। उसके पास चावल, दाल आदि की कमी थी, अतः नगर में घूम-घूम कर घोषणा किया—"मैंने कल बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को दान देने के लिए निमन्त्रित किया है, आप लोग अपने सामर्थ्य के अनुसार हमारी सहायता कीजिये।" इसे सुनकर नगरवासी सभी उपासकों ने उसे चावल, दाल आदि दिया किन्तु एक बिलालपादक नाम के सेठ को उसकी घोषणा अच्छी न लगी। वह महा धनवान् होते हुए भी, यह सोचकर कि इसने सामर्थ्य न होने पर भी, इतने बड़े संघ को निमन्त्रित किया है, बहुत थोड़ा सा चावल आदि दिया। उपासक उसे अलग बर्तन में लेकर रखा। सेठ के मन में हुआ—'जान पड़ता है यह कल हमारी बेइज्जती करेगा।'

दूसरे दिन दान के समय सेठ छूरा लेकर गया कि यदि वह हमारा नाम लेगा तो उसे वहीं मार डालूँगा, किन्तु दान के अन्त में उस उपासक ने

कहा—"भन्ते ! जो-जो नगरवासी अपने सामर्थ्य के अनुसार थोड़ा-बहुत दान दिये हैं, उन सबके लिए यह महत्फल हो।" उपासक की बात को सुनकर सेठ को बड़ी प्रसन्नता हुई कि इसने उसका नाम नहीं लिया, प्रत्युत सबके लिए एक ही भाँति अनुमोदन किया। वह उपासक के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगा और सब बात स्पष्टतः सुना दिया।

भगवान् ने इसे जान उस सेठ को सम्बोधित कर—"उपासक ! पुण्य को थोड़ा समझ कर उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। बुद्धिमान् लोग पुण्य करते हुए बूँद-बूँद करके घड़े को पानी से भर जाने के समान थोड़ा-थोड़ा पुण्य करके पुण्य से भर जाते हैं!" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२२—मावमञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मन्तं आगमिस्सति।
उदविन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति।
धीरो पूरति पुञ्ञस्स थोकथोकम्पि आचिनं॥ ७॥

"वह मेरे पास नहीं आयेगा"—ऐसा सोचकर पुण्य की अवहेलना न करे। (जैसे) पानी की बूँद के गिरने से घड़ा भर जाता है, ऐसे ही धीर थोड़ा-थोड़ा संचय करके पुण्य को भर लेता है।

पाप करना छोड़े

(महाधन वणिक् की कथा)

९, ७

श्रावस्ती में महाधन नाम का एक वणिक् था। वह जब व्यापार के लिए बैलगाड़ियों पर माल लाद कर बाहर जाने लगा तब भिक्षुओं से कहा—'जिन आर्य लोगों को अमुक प्रदेश में चलना हो, वे मेरे साथ चलें, मैं भोजन आदि का प्रबन्ध करूँगा।" उसकी बात को सुनकर पाँच सौ भिक्षु उसके साथ जाने के लिए तैयार हो गये।

जब महाधन वणिक् अपनी बैलगाड़ियों के साथ श्रावस्ती से कुछ दूर गया तब आगे और पीछे दोनों ओर चोर अवसर देखते हुए जंगल में छिप गये।

इसे जानकर वह वहाँ से न तो आगे जाने का साहस किया और न पीछे। वह भिक्षुओं से कहा—"भन्ते! हमारा राह देखते हुए दोनों ओर चोर बैठे हैं, आगे या पीछे जाना कठिन है, आप लोग कुछ दिन ठहरें पीछे सब पता लगाकर चला जायेगा।" भिक्षु अधिक दिन वहाँ ही बैठ सकने के कारण पुनः श्रावस्ती लौट कर भगवान् के पास गये और सारी बात कह सुनाये। भगवान् ने—"भिक्षुओ! महाधन वणिक् चोरों के होने के कारण मार्ग को छोड़ दिया है। ऐसे ही जीवित रहने की इच्छा वाला व्यक्ति विष को छोड़ देता है। भिक्षु को भी तीनों लोकों को चोरों से घिरे हुए मार्ग के समान जानकर पाप-कर्म को छोड़ देना चाहिए।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२३—वाणिजो'व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो।
विसं जीवितुकामो'व पापानि परिवज्जये॥ ८॥

थोड़े सार्थ (= काफिला) और महाधन वाला व्यापारी जैसे भय-युक्त मार्ग को छोड़ देता है, (या) जैसे जीने की इच्छा वाला पुरुष विष को छोड़ देता है, वैसे ही पुरुष पापों को छोड़ दे।

न करने वाले को पाप नहीं

(कुक्कुटमित्त की कथा)

९, ८

राजगृह के एक सेठ की कन्या बचपन में ही भगवान् के उपदेश को सुन कर स्रोतापन्न हो गई थी। पीछे वह तरुणाई में एक कुक्कुटमित्त नाम के निषाद पर मोहित होकर चुपके से घर से निकल कर उसके पास चली गई। कुक्कुटमित्त प्रतिदिन जाल फैला कर मृगों को पकड़ता था और उन्हें ही मार कर जीविका चलाता था। इस प्रकार जीवन यापन करते हुए दोनों के संवास से सात पुत्र पैदा हुए। उनका भी विवाह हुआ और बहुएँ आईं।

एक दिन भगवान् प्रातःकाल महाकरुणा समापत्ति में इस कुल को देख कर जाल फैलाये हुए स्थान पर गये। उस दिन जाल में एक भी मृग नहीं फँसा था। जब कुक्कुटमित्त आया, तब भगवान् को देख कर समझा कि

इन्होंने ही फँसे हुए मृगों को खोल दिया है। वह भगवान् को मारने के लिए तीर धनुष सम्हाला, किन्तु तीर नहीं छोड़ सका। उसके पुत्र भी आकर वैसा ही किये। इसी बीच में वह सेठ की कन्या बहुओं के साथ आई और चिल्लाकर कही—"अरे! हमारे पिता को न मारो, हमारे पिता को न मारो।" उसकी बात को सुनकर सब बहुत लज्जित हुए तथा भगवान् के पास जाकर क्षमा माँगे। भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में सभी स्रोतापन्न हो गये।

जब भगवान् विहार में आये और भिक्षुओं को यह ज्ञात हुआ कि सेठ की कन्या बचपन से ही स्रोतापन्न थी, तब वे भगवान् से पूछे—"भन्ते! सदा निषाद को तीर-धनुष आदि ठीक करके देने वाली सेठ की कन्या कैसे स्रोतापन्न हो सकती है? क्या स्रोतापन्न भी प्राणातिपात करते हैं?"

भगवान् ने—"भिक्षुओ! स्रोतापन्न प्राणातिपात नहीं करते हैं, वह सेठ की कन्या केवल अपने पति की आज्ञा पालन करती थी। यदि हाथ में घाव न हो, तो ग्रहण किया हुआ विष जैसे शरीर में व्याप्त नहीं होता है, वैसे ही अकुशल चेतना के अभाव से पाप नहीं करने वाले को तीर-धनुष देने से पाप नहीं होता।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२४—पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो॥ ९॥

यदि हाथ में घाव न हो, और हाथ से विष ले ले, तो घाव रहित शरीर में विष नहीं लगता है, इसी प्रकार न करने वाले को पाप नहीं लगता।

दोष लगाने वाला स्वयं भोगता है

(कोक नामक कुत्ते के शिकारी की कथा)

९, ९

श्रावस्ती का एक कोक नामक कुत्ते का शिकारी प्रातःकाल कुत्तों के साथ जंगल में जाते हुए, मार्ग में एक पिण्डपातिक भिक्षु को देखा। वह दिन भर

जंगल में घूमकर कुछ नहीं पाया। फिर सन्ध्या को घर आते हुए भी उसे वह भिक्षु मिला। वह "आज मैं इस अभागे भिक्षु को देखकर ही कुछ नहीं पाया हूँ। इसे अब कुत्तों से कटवा कर मार डालूँगा।" सोचकर कुत्तों को भिक्षु की ओर छोड़ा। भिक्षु कुत्तों को आते हुए देखकर एक मोटे वृक्ष पर चढ़ गया। कुत्ते वृक्ष को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये।

कोक ने "कहाँ बचकर जाओगे?" कह कर भिक्षु के पैरों में तीर मारा। भिक्षु तीर के लगने से व्यथित होकर चीवर को नहीं सम्भाल सका। चीवर खिसक कर नीचे कोक के ऊपर गिर पड़ा। कुत्तों ने समझा कि भिक्षु भूमि पर गिर गया है और चीवर से ढँके हुए कोक को ही काट कर मार डाला।

थोड़ी देर के बाद भिक्षु ने एक सूखी डाल को तोड़कर कुत्तों को भगाया। कुत्ते भी अपने मालिक को ही मरा हुआ जान जंगल की राह लिये। भिक्षु वृक्ष से नीचे उतर कर चीवर पहन, भगवान् के पास गया और प्रणाम कर सब कह सुनाया। भगवान् ने—"भिक्षु! जो निर्दोष को दोष लगाता है, वह उलटे उसी पर पड़ता है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२५—यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं
सुखमो रजो पटिवातं'व खित्तो॥ १०॥

जो दोषरहित शुद्ध निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसी मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है। जैसे कि सूक्ष्म धूलि को हवा के आने के रुख फेंकने से वह फेंकने वाले पर ही पड़ती है।

विभिन्न गति

(मणिकार कुलूपग तिस्स स्थविर की कथा)

९, १०

श्रावस्ती के एक मणिकार के घर तिस्स नामक स्थविर बारह वर्षों से सदा भोजन करने जाते थे। एक दिन मणिकार एक मांस-खण्ड को काट रहा था, स्थविर भी वहाँ बैठे थे। उसी समय कोसल नरेश के यहाँ से एक मणि

धोने के लिये आई। वह उसे रक्त लगे हाथ से लेकर भूमि पर रख हाथ धोने गया तब तक उसके घर का पालतू क्रौंच पक्षी आकर उसे निगल गया। मणिकार जब हाथ धोकर आया और मणि को नहीं देखा तब सोचा कि स्थविर ने ही उसे ले लिया है। वह अपनी स्त्री से भी कहा, किन्तु स्त्री ने उसे ऐसा सोचने के लिए मना किया।

दूसरे दिन जब स्थविर आये, तब उनसे पूछा। उन्होंने—'उपासक! मैं नहीं लिया हूँ।" कहा। तत्पश्चात् वह रस्सी से स्थविर के सिर को बैठ कर इधर-उधर घुमाया। स्थविर मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। नाक, कान और सिर से रक्त बहने लगा। क्रौंच रक्त को बहता हुआ देख वहाँ उड़ कर आया। मणिकार ने क्रोध से "तुम कहाँ?" कह कर पैर से मारा। क्रौंच भूमि पर पड़ कर मर गया। जब स्थविर को होश आया और उन्होंने क्रौंच को मरा देखा, तब कहा—"उपासक! मणि को यह पक्षी निगल गया था, किन्तु इसके जीवित रहते समय मैं अपना प्राण चले जाने पर भी नहीं कहता" यह सुनकर मणिकार स्थविर के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगा।

स्थविर उसी रोग से कुछ दिनों में परिनिर्वृत्त हो गये। क्रौंच मणिकार के घर उत्पन्न हुआ। मणिकार मर कर नरक में गया और स्त्री स्वर्ग प्राप्त की। एक दिन भिक्षुओं ने उनकी गति के विषय में भगवान् से पूछा। भगवान् ने उनकी गति को बतला कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२६—गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो।
सग्गं सुगतिनो यन्ति परिनिब्बन्ति अनासवा ॥११॥

कोई गर्भ में उत्पन्न होते हैं, कोई पाप-कर्म करने वाले नरक में जाते हैं, कोई सुगति वाले स्वर्ग को जाते हैं, और अनाश्रव (=क्षीणाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होते है।

पाप-कर्म से छुटकारा नहीं

(तीन भिक्षुओं की कथा)

९, ११

भगवान् के जेतवन में विहरते समय बहुत से भिक्षु भगवान् के दर्शनार्थ

आते हुए एक गाँव में जले हुए काक को देखे। कुछ भिक्षुओं ने नाव से जाते हुए नाविकों द्वारा समुद्र में फेंकी जाती हुई एक स्त्री को देखा और सात भिक्षु एक गुफा के द्वार पर पत्थर के खिसक आने से सप्ताह भर गुफा में बन्द रहे। उन्होंने एक साथ भगवान् के पास आकर ऐसा होने का कारण पूछा। भगवान् ने जब सबके पूर्वजन्म के किये हुए पाप-कर्म को बतलाया, तब एक भिक्षु ने—"भन्ते! क्या पापकर्म करके वे आकाश में उड़कर, समुद्र में जाकर और पर्वत की गुफा में प्रवेश करके भी नहीं बच सके?" भगवान् ने—"हाँ, भिक्षुओ! आकाश आदि कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ रहकर व्यक्ति पाप-कर्म से छुटकारा पाये।" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२७—न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितो मुच्चेय्य पापकम्मा ॥१२॥

न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर—संसार में कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहकर—पाप-कर्मों (के फल) से प्राणी बच सके।

मृत्यु से छुटकारा नहीं

(सुप्पबुद्ध शाक्य की कथा)

९, १२

भगवान् के कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहरते समय एक दिन सुप्पबुद्ध शाक्य—"यह मेरी पुत्री को अनाथा करके चला गया, इसे मैं नगर में नहीं घुसने दूँगा।" कह कर भगवान् को नगर में नहीं जाने दिया। भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! सुप्पबुद्ध ने बड़ा ही बुरा किया, जो मुझे नगर में भिक्षाटन के लिए नहीं जाने दिया। यह सातवें दिन प्रासाद की सीढ़ी के पास भूमि में धँस कर मर जायेगा।" सातवें दिन सुप्पबुद्ध भगवान् के कथनानुसार ही भूमि में धँस कर मर गया। भगवान् ने—

"भिक्षुओ ! सुप्पबुद्ध कहीं भी जाता मृत्यु से छुटकारा नहीं पाता ।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२८—न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितं नप्पसहेय्य मच्चू ॥ १३ ॥

न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों के विवर में प्रवेश कर—संसार में कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहने वाले को मृत्यु न सतावे।

१०—दण्डवग्गो

दण्ड से सभी डरते हैं

(छः वर्गीय भिक्षुओं की कथा)

१०, १

जेतवन में रहते समय एक दिन छः वर्गीय भिक्षुओं ने सत्रह वर्गीय भिक्षुओं को मारा। भगवान् इसे जान, छः वर्गीय भिक्षुओं को बुलवा कर नाना प्रकार से उन्हें समझा—"भिक्षुओ ! भिक्षु को अपने समान ही सबको समझना चाहिये कि जैसे मैं दण्ड और मृत्यु से डरता हूँ, वैसे ही सब डरते हैं। ऐसा जान कर किसी को मारना या वध करना नहीं चाहिये। कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१२९—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥ १॥

दण्ड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं, अपने समान (इन बातों को) जानकर न (किसी को) मारे, न मारने की प्रेरणा करे।

दण्ड से सभी डरते हैं

(छः वर्गीय भिक्षुओं की कथा)

१०, २

जेतवन में ही विहरते समय एक दिन छः वर्गीय भिक्षुओं ने सत्रह वर्गीय भिक्षुओं को पैर से मारा। भगवान् ने इसे जान, छः वर्गीय भिक्षुओं को बुलवा कर नाना प्रकार से समझा उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१३०—सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥ २॥

सभी दण्ड से डरते हैं, सबका जीवन प्रिय है, (इन बातों को) अपने समान जान कर न (किसी को) मारे और न मारने की प्रेरणा करे।

प्राणियों की हिंसा न करे

(बहुत से लड़कों की कथा)

१०, ३

एक दिन भगवान् जेतवन विहार से श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। उन्होंने मार्ग में बहुत से लड़कों को एक साँप को लाठी से पीटते देखा। यह देखकर भगवान् ने उनसे पूछा—साँप को क्यों मार रहे हो ?"

"डँसने के डर से।"

"तुम लोग इसे मार कर जो अपना सुख चाहते हो, तो मर कर उत्पन्न होने के स्थान में सुख नहीं पाओगे, अपने को सुख चाहने वालों को दूसरे का वध नहीं करना चाहिए।" भगवान् ने ऐसा कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

१३१—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥ ३ ॥

जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से मारता है, वह मर कर सुख नहीं पाता।

१३२—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥ ४ ॥

जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से नहीं मारता है, वह मर कर सुख पाता है।

कटु वचन न बोलो

(कुण्डधान स्थविर की कथा)

१०, ४

कुण्डधान स्थविर के पूर्व जन्म के पाप-कर्म के कारण, प्रव्रजित होने के समय से लेकर सदा उनके पीछे-पीछे एक स्त्री दिखाई देती थी। उसे कुण्डधान स्थविर नहीं देखते थे, किन्तु शेष सब लोग देखकर उनकी निन्दा करते थे। एक दिन कोसल नरेश प्रसेनजित् इसकी परीक्षा करने के लिए जेतवन आया और बहुत

परीक्षा करके स्थविर को निर्दोष पाकर उन्हें प्रतिदिन अपने यहाँ भोजन करने के लिए निमंत्रित करके चला गया।

जब इन बातों को भिक्षुओं ने सुना, तब कुण्डधान स्थविर और राजा—दोनों को भला बुरा कहने लगे। कुण्डधान स्थविर ने भिक्षुओं की बात सुनकर उलटे उन्हीं को भला-बुरा कहा। तब यह बात भिक्षुओं ने भगवान् से कही। भगवान् ने कुण्डधान स्थविर को बुलाकर सारी बातें पूछ—"भिक्षु तू पूर्व जन्म की अपनी बुरी दृष्टि के कारण इस निन्दा को प्राप्त हुआ और इस समय भी भिक्षुओं को बुरा-भला कह रहा है। तुझे उचित है कि भिक्षुओं द्वारा निन्दा किये जाने पर भी चुप रहो। ऐसा करते हुए निर्वाण को पा लोगे।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

१३३—मावोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भ-कथा पटिदण्डा फुस्सेय्यु तं ॥५॥

१३४—सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा।
एस पत्तोसि निब्बान सारम्भो ते न विज्जति ॥ ६॥

कटु वचन न बोलो, बोलने पर (दूसरे भी वैसे ही) तुझे बोलेंगे। प्रतिवाद दुःखदायक होता है, उसके बदले में तुझे दण्ड मिलेगा।

यदि तू अपने को टूटे काँसा की भाँति निःशब्द कर लोगे, तो तूने निर्वाण पा लिया, तेरे लिए प्रतिवाद नहीं।

बुढ़ापा और मृत्यु आयु को ले जाते हैं

(विशाखा आदि उपासिकाओं को कथा)

१०, ५

भगवान् के पूर्वाराम में विहरते समय उपोशथ के दिन विशाखा उपोशथ करने वाली स्त्रियों से पूछ कर जानी कि वे नाना विचारों से उपोशथ कर्म करती हैं, कोई भी निर्वाण की इच्छा वाली नहीं है। तब वह उसके साथ भगवान् के पास गई। भगवान् ने इसे सुन—"विशाखे! जैसे ग्वाला लाठी से गायों को ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु इन प्राणियों को ले जाते हैं, फिर

भी निर्वाण को चाहने वाले नहीं हैं, लोक की ही प्रार्थना करते हैं।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१३५—यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेन्ति पाणिनं ॥ ७ ॥

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चारागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को ले जाते हैं।

पापी अपने ही कर्मों से अनुताप करता है

(अजगर प्रेत की कथा)

१०, ६

राजगृह के वेलुवन महाविहार में रहते समय एक दिन महामौद्गल्यायन स्थविर और लक्षण स्थविर एक साथ गृद्धकूट पर्वत से नीचे उतर रहे थे। मार्ग में महामौद्गल्यायन स्थविर ने एक ऐसे अजगर प्रेत को देखा जो पच्चीस योजन का था। उसके सिर से अग्नि की लपट उठ कर चारों ओर फैलती थी, चारों ओर से उठकर सिर पर जाती थी और दोनों ओर से उठकर बीच में उतरती थी। उसे देख कर महामौद्गल्यायन स्थविर ने मुस्कराया। तब लक्षण स्थविर ने मुस्कराने का कारण पूछा। उन्होंने भगवान् के पास चलकर पूछने के लिए कहा। जब दोनों स्थविर राजगृह में भिक्षाटन कर भोजनोपरान्त भगवान् के पास गये, तब लक्षण स्थविर ने पूछा। महामौद्गल्यायन स्थविर ने जैसे उस अजगर प्रेत को देखा था, वैसे सुना दिया। उसे सुनकर भगवान् ने—"मैंने भी उस प्रेत को बोधि वृक्ष के नीचे देखा था, किन्तु अभी तक किसी से कहा नहीं था। वह अपने पूर्व जन्म में कश्यप बुद्ध के समय में एक सेठ का घर सात बार जलाया था, बुद्धकुटी भी भस्म कर दिया था, उस पाप कर्म के कारण बहुत दिनों तक नरक में पक कर अब इस दुर्गति को प्राप्त हुआ है। भिक्षुओ! मूर्ख-जन पाप करते हुए नहीं समझते हैं, किन्तु पीछे दावाग्नि के समान अपने किये हुए पाप-कर्म से आप जलते हैं।" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१३६—अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति ।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्ढो' व तप्पति ॥ ८ ॥

पाप कर्म करते समय मूर्ख उसे नहीं बूझता है, किन्तु पीछे (वह) दुर्बुद्धि अपने ही कर्मों के कारण आग से जले की भाँति अनुताप करता है ।

दस बातों में से किसी एक को पाता है

(महामौद्गल्यायन स्थविर की कथा)

१०, ७

भगवान् के वेलुवन में विहरते समय तीर्थों ने पाँच सौ चोरों को भेज कर महामौद्गल्यायन स्थविर को कालशिला पर्वत की एक गुफा में मरवा डाला। स्थविर के परिनिर्वृत्ति होने का समाचार जब राजा अजात-शत्रु को मिला, तब वह चर-पुरुषों को नियुक्त करके पाँच सौ चोरों तथा नगर के सब तीर्थों को पकड़वा मँगाया और उन्हें नाभी भर गहरे गड्ढों में गड़वा कर जीवित ही जलवा दिया ।

भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाकर यह सारा समाचार सुनाया । भगवान् ने मौद्गल्यायन स्थविर के पूर्व जन्म में अपने अन्धे माता-पिता को मार कर जंगल में फेंकने के पाप-कर्म को बतला कर—"भिक्षुओ ! मौद्गल्यायन अपने पूर्व कर्म के अनुरूप ही मृत्यु को प्राप्त हुआ है तथा पाँच सौ चोरों के साथ तीर्थ भी मेरे निर्दोष को दोष लगा कर अनुरूप ही मृत्यु को पाये हैं । निर्दोष को दोष लगाने वाले (व्यक्ति) दस बातों से विपत्ति को प्राप्त होते ही हैं ।"—ऐसे उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

१३७—यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति ।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥ ९ ॥

१३८—वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं ।
गरुकं वापि आवाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ॥ १० ॥

१३९—राजतो वा उपस्सग्गं अब्भक्खानं व दारुणं।
परिक्खयं व ञातीनं भोगानं व पभङ्गुरं ॥ ११ ॥
१४०—अथ वस्स अगारानि अग्गी डहति पावको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो निरयं सो' पपज्जति ॥ १२ ॥

जो दण्ड-रहितों को दण्ड से पीड़ित करता है, निर्दोष को दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन दस बातों में से एक को प्राप्त होता है—(१) कड़ी वेदना (२) हानि (३) अङ्ग का भङ्ग होना (४) भारी रोग या (५) चित्त विक्षेप (= पागल) को प्राप्त होता है।

या (६) राजा से दण्ड को प्राप्त होता है। (७) भयानक निन्दा (८) जाति-बन्धुओं का विनाश (९) भोगों का क्षय, अथवा (१०) उसके घर को अग्नि = पावक जलाता है। काया छोड़ने पर वह दुर्बुद्धि नरक में उत्पन्न होता है।

सन्देहयुक्त व्यक्ति की शुद्धि नहीं

(बहु भाण्डिक स्थविर की कथा)

१०, ८

जेतवन में एक बहु भाण्डिक भिक्षु था। एक दिन वह अपने सारे सामानों को बाहर निकाल कर धूप में सुखा रहा था। कुछ भिक्षुओं ने उसके इतने अधिक सामानों को देख, जाकर भगवान् से कहा। भगवान् ने बहुभाण्डिक भिक्षु को बुलाकर पूछा—"भिक्षु! तू क्यों इतने अधिक सामानों को रखे हो? भिक्षु को अल्पेच्छ होना चाहिये।" तब वह क्रोधित होकर उत्तरासंग और संघाटी को नीचे गिरा, केवल अन्तरवासक को पहने हुए परिषद् के बीच खड़ा होकर कहा—"भन्ते! ऐसा रहना बहुत अच्छा है न?" इसे सुन भगवान् ने उस भिक्षु को उपदेश करके देवधम्म जातक को कह, इस गाथा को कहा—

१४१-न नग्गचरिया न जटा न पङ्का
नानासका थण्डिलसायिका वा।

रजोवजल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥ १३ ॥

जिस पुरुष के सन्देह समाप्त नहीं हुए हैं, उसकी शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से और न उकड़ूँ बैठने से होती है।

अलंकृत रहते हुए भी भिक्षु है

(सन्तति महामात्य की कथा)

१०, ९

कोसल नरेश प्रसेनजित् का सन्तति नामक महामात्य सप्ताह भर शराब के नशा में मस्त रहकर सातवें दिन अलंकृत होकर हाथी पर बैठा हुआ स्नान-घाट को जा रहा था। वह श्रावस्ती के नगर-द्वार पर शास्ता को देखकर सिर हिला कर प्रणाम किया। भगवान् उसे देखकर मुस्कराये। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के मुस्कराने का कारण पूछा। भगवान् ने कहा—"आनन्द! यह आज ही अर्हत्व को प्राप्त होकर परिनिर्वृत होगा।"

सन्तति महामात्य दिन को स्नान-घाट पर बिता कर सन्ध्या को उद्यान में गया। वहाँ नाचती-गाती हुई उसकी नर्तकी मर गई, जिसे देखकर उसे बड़ा शोक हुआ। वह शोक सन्तप्त हो भगवान् के पास जेतवन गया। भगवान् ने उसको उपदेश दिया। उपदेश के अन्त में वह अर्हत्व प्राप्तकर भगवान् से आज्ञा ले वहीं आकाश में पालथी लगाये जल कर परिनिर्वृत हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! सन्तति महामात्य उपदेश के अन्त में अर्हत्व को प्राप्त हो अलंकृत ही परिनिर्वृत हो गया। क्या उसे श्रमण कहना चाहिये या ब्राह्मण?" भगवान् ने—"भिक्षुओ! मेरे पुत्र को श्रमण ही कहना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

१४२—अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।

सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥ १४ ॥

अलंकृत रहते हुए भी यदि वह शान्त, दान्त, नियत ब्रह्मचारी तथा सारे प्राणियों के प्रति दण्ड-त्यागी है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है।

दुःख को पार करो

(पिलोतिक स्थविर की कथा)

१०, १०

श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में रहते समय, एक दिन आनन्द स्थविर ने एक वस्त्र-खण्ड पहने, कपाल को हाथ में लिये विचरण करते हुए लड़के को देखकर प्रव्रजित किया। उन्होंने उसे प्रव्रजित करते समय उसके वस्त्र-खण्ड (=पिलोतिक) और कपाल को एक वृक्ष पर लटका दिया। वह लड़का प्रव्रजित होकर कुछ ही दिनों में भिक्षु-चर्य्या से उदास हो गया और पुनः उस वस्त्र-खण्ड को ही पहन कर भिक्षाटन करना चाहा, किन्तु जब वहाँ उसे लेने गया, तब विरति हो आयी और उसे न लेकर लौट आया। इसी प्रकार वह प्रतिदिन वहाँ जाता और विरति हो आने पर लौट आता था। उसके ऐसे आने-जाने को देखकर भिक्षु जब पूछते थे कि "आवुस ! कहाँ जा रहे हो ?" तो उत्तर देता था—"आचार्य के पास जा रहाँ हूँ।"

एक दिन जब वह उस वस्त्र-खण्ड को लेने के लिए गया, तब उसको आलम्बन कर अर्हत्व पा लिया। भिक्षुओं ने कुछ दिन के बाद उसे उधर न जाते हुए देखकर पूछा—"आवुस ! क्या आचार्य के पास नहीं जाते हो ?" तब उसने कहा—"आवुस ! आचार्य के साथ संसर्ग होने से गया, किन्तु अब मेरा संसर्ग छूट गया।" भिक्षुओं ने इसे सुनकर भगवान् से कहा। भगवान् ने—"भिक्षुओ ! मेरे पुत्र को अब संसर्ग नहीं है, वह अर्हत्व पा लिया है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

१४३—हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥ १५ ॥

लोक में कोई पुरुष (ऐसा) होता है, जो अपने ही लज्जा करके अकुशल (वितर्क) को नहीं करता, जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े का नहीं सह सकता, वैसे ही वह निन्दा को नहीं सह सकता ।

१४४—अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।
सद्धाय सीलेन च वीरियेन च
समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ॥
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता
पहस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं ॥ १६ ॥

कोड़े पड़े उत्तम घोड़े की भाँति, उद्योगी, संवेगवान् हो, श्रद्धा, आचार, वीर्य (=प्रयत्न), समाधि और धर्म के विनिश्चय से युक्त बन, विद्या और आचरण से समन्वित हो, स्मृतिवान् हो इस महान् दुःख को पार कर सकोगे ।

सुव्रती अपना दमन करते हैं
(सुख श्रामणेर की कथा)
१०, ११

सुख श्रामणेर की कथा पण्डित श्रामणेर के समान ही है । भगवान् ने सुख श्रामणेर के अर्हत्व प्राप्ति को बतलाकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१४५—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥१७॥

नहर वाले पानी को ले जाते हैं, बाण बनाने वाले बाण को ठीक करते हैं, बढ़ई लकड़ी को ठीक करते हैं और सुव्रती अपना दमन करते हैं ।

११—जरावग्गो

हँसी और आनन्द कैसा ?

(विशाखा की सहायिकाओं की कथा)

११, १

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय एक दिन विशाखा उपासिका की कुछ सहायिकायें सुरा पीकर धर्मोपदेश सुनने के लिए भगवान् के पास गईं और धर्म-सभा में बैठकर उपदेश सुनने लगीं। उपदेश को सुनते हुए उनमें से कुछ सुरा के मद में मस्त हो उठकर नाचना, गाना और ताली बजाकर हँसना प्रारम्भ कीं। भगवान् ने इस दशा को देख अपनी भौं से रश्मि छोड़कर अन्धकार कर दिया। जब वे अन्धकार में पड़ी हुई भयभीत हो गईं, तब सिनेरु पर्वत-शिखर पर जाकर अपने उष्ण लोम से रश्मि छोड़ा और उन स्त्रियों को आमन्त्रित करके—"तुम लोगों को मेरे पास आते समय प्रमत्त होकर नहीं आना चाहिये, प्रत्युत राग आदि अग्नि को शान्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

१४६—को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ १ ॥

जब नित्य जल रहा है, तो हँसी कैसी ? आनन्द कैसा ? अन्धकार से घिरे प्रदीप की खोज क्यों नहीं करतीं ?

अनित्य शरीर को देखो

(सिरिमा की कथा)

११, २

राजगृह में सिरिमा नाम की एक परम सुन्दरी गणिका थी। वह भगवान् के उपदेश को सुनकर स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त कर ली थी तथा प्रतिदिन अपने घर भिक्षुओं को बड़े सम्मान के साथ दान देती थी। वह एक दिन

भिक्षु लोगों को दान देकर तत्काल हुई बीमारी से मर गई। उसका मृत शरीर श्मशान में राजा द्वारा सुरक्षित रखवाया गया। तीसरे दिन भगवान् भिक्षु संघ के साथ वहाँ गये और उस मृत-शरीर को भिक्षुओं को दिखला—"भिक्षुओ! इस प्रकार का भी रूप नष्ट हो गया! देखो भिक्षुओ! पीड़ित शरीर को !!" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहे—

१४७—पस्स चित्त कतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं बहुसंकप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति॥ २॥

इस चित्रित शरीर को देखो, जो व्रणों से युक्त, फूला, पीड़ित तथा अनेक संकल्पों से युक्त है, जिसकी स्थिति अनित्य है।

शरीर रोगों का घर है

(उत्तरी थेरी की कथा)
११, ३

एक दिन भगवान् श्रावस्ती में भिक्षाटन के लिए गये हुए थे। उस दिन एक सौ बीस वर्ष की आयु वाली उत्तरी नामक थेरी भी उसी गली में भिक्षाटन के लिये गई हुई थी, जिसमें कि शास्ता गये थे। जब उत्तरी थेरी शास्ता को आते देखी, तब वह किनारे होने लगी, किन्तु दुर्बलता के कारण अपने चीवर के कोने को पैर से दब जाने के कारण भूमि पर गिर पड़ी। यह देखकर भगवान् उसके पास गये और—"भगिनी! तेरा शरीर बिल्कुल जीर्ण हो गया है, कुछ ही दिनों में नाश को प्राप्त हो जायेगा।" कहकर इस गाथा को कहा—

१४८—परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्डं पभङ्गुरं।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं॥ ३॥

यह रूप जीर्ण, रोगों का घर और भङ्गुर है। यह गन्दा शरीर विनाश को प्राप्त हो जाता है। जीवन मृत्यु-पर्यन्त होता है।

रति कैसी ?

(अधिमानक भिक्षुओं की कथा)

११, ४

भगवान् के जेतवन में विहरते समय पाँच सौ भिक्षु शास्ता के पास कर्मस्थान को ग्रहण करके जंगल में जा, प्रयत्न करते हुए थोड़े ही दिनों में ध्यान को प्राप्त कर लिए। ध्यान को प्राप्त करने पर उन्हें ऐसा जान पड़ा कि वे अर्हत्व पा लिये हैं। उसे अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को बतलाने के लिये भगवान् के पास जेतवन को प्रस्थान किये। भगवान् ने इस बात को जानकर आयुष्मान् आनन्द से कहा कि जब वे भिक्षु आवें, तब उन्हें पहले श्मशान में भेजना। आयुष्मान् आनन्द ने वैसा ही किया। वे भिक्षु श्मशान में गये। उन्हें हाल के मरे हुए सुन्दर शरीर वाले मृतकों को देखकर राग उत्पन्न होने लगा। तब उनको ज्ञात हुआ कि वे अर्हत्व नहीं प्राप्त किये हैं। उस समय भगवान् ने गन्ध कुटी में बैठे हुए ही—"भिक्षुओ ! क्या ऐसे अस्थि कंकाल को देखकर रति करना उचित है ?" कह कर इस गाथा को कहा—

१४९—यानि' मानि अपत्थानि अलाबूनेव सारदे।
कपोतकानि अट्ठिनी तानि दिस्वान का रति ॥ ४ ॥

शरद्-काल की फेंकी गई लौकी की भाँति या कबूतर की सी सफेद हो गई उन हड्डियों को देखकर रति कैसी ?

शरीर हड्डियों का नगर है

(जनपद कल्याणी रूपनन्दा थेरी की कथा)

११, ५

जनपद कल्याणी रूपनन्दा माता, भाई, पति–सबके प्रव्रजित हो जाने पर स्वयं भी भिक्षुणियों के पास जाकर प्रव्रजित हो गई। वह प्रव्रजित होकर भी भगवान् के पास उपदेश सुनने नहीं जाती थी। उसे अपने रूप का गर्व था और भगवान् रूप को अनित्य, दुःख, अनात्म बतलाते थे, अतः भगवान् के

पास नहीं जाना चाहती थी। उसको ऐसा होता था कि भगवान् सम्भवतः उसके रूप की भी निन्दा न करने लगें।

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय एक दिन वह भिक्षुणियों के बहुत कहने पर उनके साथ भगवान् के पास गई और प्रणाम करके एक ओर बैठ गई। महाकारुणिक सर्वज्ञ भगवान ने रूपनन्दा थेरी के चित्त की सारी बातों को जानकर ऋद्धिबल से एक ऐसी तरुणी को बनाया, जो रूपनन्दा से अत्यन्त रूपवती थी, और जो भगवान् के पीछे खड़ी थी पंखा झल रही थी। उसे भगवान् देखते थे और रूपनन्दा थेरी। अन्य कोई नहीं देखता था। रूपनन्दा थेरी को देखते-देखते ही वह स्त्री युवती, वृद्धा और जरा से जीर्ण शरीर वाली होकर मर गई। इसे देख थेरी को विराग उत्पन्न हो आया। वह अपने शरीर और रूप को भी वैसा अनित्य समझने लगी। उसकी ऐसी चित्त प्रवृत्ति को जानकर भगवान् ने उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१५०—अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहित लेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ॥ ५ ॥

हड्डियों का नगर बना है, जो मांस और रक्त से लेपा गया है; जिससे जरा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं।

सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता

(मल्लिका देवी की कथा)

११, ६

कोसल नरेश की भार्या मल्लिका देवी एक दिन स्नानागार में जा झुककर पैर धो रही थी। उसके साथ एक पालतू प्यारा कुत्ता भी था। वह मल्लिका को झुका हुआ देखकर उसके साथ मैथुन करना प्रारम्भ किया। मल्लिका भी उसके स्पर्श का अनुभव करते हुए झुकी रही। राजा ऊपर महल की खिड़की से उसके इस कर्म को देखा, और आने पर धिक्कारा; किन्तु मल्लिका ने कहा—"महाराज! वह कोठरी ही ऐसी है कि जो वहाँ जाता है वह दो होकर दिखाई देता है।" राजा के नहीं विश्वास करने पर उसने कहा—"महाराज! आप स्नानागार में

जाइये मैं देखूँगी।" राजा उसकी बात मान लिया और स्नानागार की उस कोठरी में गया। मल्लिका ने—"छिः छिः महाराज!" कह कर राजा को लज्जित किया। राजा के पूछने पर कहा—"महाराज! यह क्या, आप बकरी के साथ मैथुन कर रहे थे!" राजा मल्लिका की बात सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ा और उसके समझाने पर विश्वास कर लिया कि उस कोठरी का दोष है।

पीछे मल्लिका देवी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह अपने उस बुरे कर्म को सोच कर बहुत पछताती थी। उसके मन में बार-बार होता था कि मेरे इस कर्म को अस्सी महास्थविर और भगवान् देखकर क्या कहते होंगे? वह मरते समय इसी पाप कर्म के कारण नरक में उत्पन्न हुई और एक सप्ताह तक वहाँ रहकर तुषित-भवन में चली गई।

मल्लिका देवी की मृत्यु के पश्चात् राजा भगवान् के पास उसकी गति पूछने जाना था, किन्तु भूल जाता था। भगवान् ने यह सोचकर "यदि मल्लिका को नरक में उत्पन्न हुआ बताऊँगा, तो राजा को महान् दुःख होगा और सम्भव है भिक्षु संघ को इससे कष्ट पहुँचे।" एक सप्ताह तक ऐसा किया कि राजा मल्लिका की गति न पूछ सके।

आठवें दिन भगवान् स्वयं नगर में भिक्षाटन के लिए गये। राजा ने भगवान् के पदार्पण को सुन बाहर जा पात्र ले भवन में लाया। भगवान् ने रथशाला में बैठने का संकेत किया। भोजनोपरान्त राजा ने भगवान् से कहा—"भन्ते! मैं एक सप्ताह से मल्लिका की गति पूछने जाता था, किन्तु भूल जाता था, वह कहाँ उत्पन्न हुई है?"

"महाराज! तुषित-भवन में।"

राजा इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और कहा—"भन्ते! उसके तुषित-भवन में उत्पन्न होने पर अन्य कौन उत्पन्न होगा, उसके सदृश स्त्री नहीं है। वह सदा भिक्षु संघ को दान देने में ही लगी रहती थी। वह आज भी जीवित के समान है।"

भगवान् ने रथशाला के रथों को दिखला—"महाराज! इस प्रकार के—काष्ठ से निर्मित रथ भी पुराने हो जाते हैं, तो फिर इस शरीर की क्या बात

है, केवल सत्पुरुष-धर्म ही पुराना नहीं होता है, किन्तु प्राणी ता जीर्ण होते ही हैं।" कहकर इस गाथा को कहा—

१५१—जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥ ६ ॥

राजा के सुचित्रित रथ पुराने हो जाते हैं तथा यह शरीर भी पुराना हो जाता है, किन्तु सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता। सन्त लोग सन्तों से ऐसा ही कहते हैं।

अल्पश्रुत के मांस बढ़ते, प्रज्ञा नहीं

(ललुदायी स्थविर की कथा)

११, ७

ललुदायी स्थविर मङ्गल करनेवाले लोगों के घर जाने पर 'तिरोकुड्डेसु तिट्ठन्ति' आदि अवमङ्गल की गाथाओं को बोलते थे और अवमङ्गल करनेवाले लोगों के घर जाने पर 'दानञ्च ब्रह्मचरिया च' या यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा' आदि मङ्गल की गाथाओं को वे स्थान और काल का ख्याल नहीं करते थे। दूसरा कहने के स्थान पर दूसरा ही कहते थे, और क्या कह रहे हैं—नहीं जानते थे। भिक्षुओं ने उनके इस प्रकार के कथन को सुन कर भगवान् से कहा। शास्ता ने—"भिक्षुओ! न इसी समय यह ऐसा कहता है, पहले भी कहने के स्थान पर दूसरा ही कहा।" इस प्रकार जातक की अतीत कथा को सुनाते हुए—"भिक्षुओ! अल्पश्रुत पुरुष बैल के समान ही होता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१५२—अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो'व जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥ ७ ॥

यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की तरह बढ़ता है। उसके मांस तो बढ़ते हैं, किन्तु उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती।

अर्हत्व प्राप्त हो गया

(आनन्द स्थविर के लिये उदान की कथा)

११, ८

[इस धर्मोपदेश को शास्ता ने बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे हुए उदान के रूप में कहकर पीछे आनन्द स्थविर के पूछने पर कहा ।]

भगवान् ने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए सूर्यास्त होने के पूर्व ही मार की सेना का विध्वंस कर, प्रथम याम में पूर्वेनिवास को ढँकने वाले तम को दूर करके, मध्य याम में दिव्य चक्षु को विशोधन कर, पिछले याम में सत्वों पर करुणा करके प्रतीत्य समुत्पाद को अनुलोम और विलोम में विचरते हुए अरुणोदय के समान सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त कर अनेक सहस्र बुद्धों द्वारा न त्यागे हुए उदान को कहते हुए इन गाथाओं को कहा—

१५३—अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं ।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥ ८ ॥

१५४—गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं ।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥ ९ ॥

बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा । (इस काया रूपी) गृह को बनाने वाले (= तृष्णा) को खोजते पुनः पुनः दुःख (मय) जन्म में पड़ता रहा । हे गृहकारक ! (= तृष्णे !) मैंने तुझे देख लिया, (अब) फिर तू घर नहीं बना सकेगा । तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गयीं, गृह का शिखर गिर गया । चित्त संस्काररहित हो गया । अर्हत्व (= तृष्णा-क्षय) प्राप्त हो गया ।

ब्रह्मचर्य या धन के बिना बुढ़ापे में चिन्ता

(महाधनी सेठ के पुत्र की कथा)

११, ९

वाराणसी में एक महाधनी सेठ का पुत्र था । वह नाच-गाना के अतिरिक्त

और कुछ नहीं जानता था। उसकी स्त्री भी वैसी ही थी। कुछ दिनों के पश्चात् उनके माता-पिता का देहान्त हो गया और दोनों कुलों का धन एक जगह हो गया।

सेठ पुत्र राजा के पास गाने-बजाने जाया करता था। एक दिन मार्ग में शराबियों ने देखकर सोचा "यदि यह सेठ-पुत्र शराब पीना सीख लेता, तो हम लोग इसके सहारे मजे में जी सकते।" दूसरे दिन से जब वह राजा के पास जाता या आता, तब उसे देखकर शराबी खूब तारीफ करते शराब पीना शुरू करते। उनकी इस दशा को देख, सेठ-पुत्र का भी मन उनकी ओर आकर्षित हुआ और वह भी थोड़ा-थोड़ा शराब मँगाकर पीना शुरू किया। धीरे-धीरे उसे शराब के बिना रहना भी मुश्किल होने लगा। अब वह सैकड़ों रुपये की शराब मँगाता, नाच-गाना करता और इनाम देता। ऐसे वह पानी की तरह धन को बहाकर थोड़े ही दिनों में अपना घर-द्वार भी बेचकर अकिंचन हो गया। भोजन आदि को भी मिलना कठिन देख, स्त्री के साथ भिक्षा माँग कर खाना प्रारम्भ किया।

जिस समय भगवान् ऋषिपतन मृगदाय में विहार कर रहे थे, उस समय एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ विहार में जाकर श्रामणेरों द्वारा फेंके जाते हुए जूठन को लेने आया। भगवान् उसे देखकर मुस्कराये। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के मुस्कराने का कारण पूछा। भगवान् ने उसकी पूर्व दिशा को बतलाते हुए—"आनन्द! यह न तो ब्रह्मचर्य का ही पालन किया और न जवानी में धन को ही व्यापार आदि में लगाया, अब वृद्धावस्था में धन तथा श्रामण्य दोनों से वंचित होकर सूखे हुए जलाशय में क्रौंच पक्षी की भाँति हो गया है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

१५५–अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चा'व झायन्ति खीणमच्छे'व पल्लले॥ १०॥

ब्रह्मचर्य का बिना पालन किये, जवानी में धन को बिना कमाये, (मनुष्य) मछलियों से क्षीण जलाशय में बूढ़े क्रौंच पक्षी की भाँति (वृद्धावस्था में) चिन्ता को प्राप्त होते हैं।

१५६—अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
सेन्ति चापातिखित्ता'व पुराणानि अनुत्थुनं ॥ ११ ॥

ब्रह्मचर्य का बिना पालन किये, जवानी में बिना धन को कमाये, (मनुष्य वृद्धावस्था में) धनुष से छोड़े गये वाण की भाँति अपनी पुरानी बातों को ही कह-कह कर चिन्तित होते सोते हैं।

१२—अत्तवग्गो

अपने को सुरक्षित रखे

(बोधिराजकुमार की कथा)

१२, १

सुंसुमारगिरी के बोधिराजकुमार ने कोकनद नामक एक असदृश प्रासाद को बनवाया। जब प्रासाद तैयार हो गया, तब उसने गृह-प्रवेश मङ्गल किया। उस समय शास्ता भेसकला वन में विहार कर रहे थे। उसने मङ्गल के दिन भिक्षु-संघ के साथ भोजन के लिये उन्हें निमन्त्रित किया।

बोधिराजकुमार को पुत्र-पुत्री न थे। वह यह सोचकर ऊपर प्रासाद की सीढ़ियों पर नये वस्त्रों को बिछवा दिया कि यदि मुझे पुत्र या पुत्री होगी, तो भगवान् इसके ऊपर से चलेंगे और यदि नहीं होगी, तो रुक जायेंगे। भोजन के समय जब भिक्षु संघ के साथ भगवान् ऊपरी प्रासाद पर चलने लगे, तब उन वस्त्रों को देखकर रुक गये। बोधिराजकुमार ने भगवान् को उन पर होकर चलने की प्रार्थना की, किन्तु भगवान् उन पर न चलकर आयुष्मान् आनन्द की ओर देखे। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के न चलने के आकार को देखकर कहा—"राजकुमार! इन वस्त्रों को हटाओ, तथागत पिछली जनता पर अनुकम्पा करके इन वस्त्रों पर नहीं चलते हैं।" राजकुमार ने उन वस्त्रों को हटवा दिया।

जब भगवान् भिक्षु संघ के साथ भोजन कर लिये तब बोधिराजकुमार ने भगवान् को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! मैं तीन बार आपकी शरण गया हूँ, माँ के पेट में रहते समय पहली बार मैं आपकी शरण गया था, कुछ सयाना होने पर दूसरी बार और जवान होने पर तीसरी बार, भन्ते! आपने क्यों नहीं मेरे बिछाये हुए वस्त्रों के ऊपर से पदार्पण किया?"

"कुमार! तूने जिस विचार से उसे बिछाया था, वह पूर्ण होनेवाला नहीं है।"

"क्या भन्ते! हमें पुत्र या पुत्री न होगी?"

"हाँ कुमार!"

"किस कारण से?"

"पूर्व जन्म में स्त्री के साथ प्रमाद करने से। यदि तुम दोनों में से कोई भी अप्रमादी होता और किसी भी अवस्था में होता तो, उसके कारण उस अवस्था में पुत्र या पुत्री उत्पन्न होती, किन्तु तुम दोनों ने प्रमाद ही किया है। कुमार! अपने को प्रिय समझने वाले को तीनों अवस्थाओं में अप्रमाद के साथ अपने को सुरक्षित रखना चाहिये, ऐसा नहीं कर सकने पर एक अवस्था में भी सुरक्षित रखना ही चाहिये।" यह कह कर इस गाथा को कहा—

१५७—अत्तानं चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य तं सुरक्खितं।
तिण्णमञ्ञतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो॥ १॥

अपने को यदि प्रिय समझे, तो अपने का सुरक्षित रखे। पण्डित तीनों में से किसी एक पहर[1] में अवश्य जागरण करे।

पहले अपने को सम्हाले

(उपनन्द शाक्य-पुत्र को कथा)

१२, २

उपनन्द शाक्य-पुत्र धर्मोपदेश देने में दक्ष थे। उनके उपदेश को सुनकर बहुत से भिक्षु उन्हें चीवर आदि को दान कर धुताङ्ग ग्रहण करते थे। वह एक

१—यहाँ तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था को 'पहर' कह कर शास्ता दिखा रहे हैं—अट्ठकथा।

समय वर्षावास के आने पर एक विहार में गये और यह जानकर कि वहाँ वर्षावास के अन्त में एक चीवर दान मिलता है, अपना जूता रखकर दूसरे विहार में चले गये। वहाँ भी दो चीवर मिलने की बात को जान लाठी रखकर तीसरे विहार में चले गये। वहाँ भी तीन चीवर मिलने की बात को जान पानी का घड़ा रखकर चौथे विहार में चले गये और चौथे विहार में चार चीवरों को मिलने की बात को जान कर वहाँ वर्षावास किये। वर्षावास के अन्त में सब विहारों में यह संदेश भेजा "मैंने अपना परिष्कार रखा था, मुझे भी वर्षावासिक मिलना चाहिये।" और चीवरों को मँगाकर रथ में भर कर प्रस्थान किये।

मार्ग में एक विहार के दो तरुण भिक्षु दो चीवर और एक कम्बल पाकर परस्पर बाँट न सकते हुए झगड़ रहे थे। वे वहाँ जाकर उन्हें एक-एक चीवर देकर कम्बल फैसला करने के नाते अपने लेकर चल दिये। उन भिक्षुओं को यह देखकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे भगवान् के पास जेतवन में आये और सब सुना दिये। भगवान् ने—"भिक्षुओ! यह अभी ही नहीं पहले भी तुम लोगों को पश्चात्ताप में डाला था।" इस प्रकार अतीत की कथा को कह कर उन तरुण भिक्षुओं को समझाकर उपनन्द की निन्दा करते हुए—"भिक्षुओ! दूसरे को उपदेश देने वाले को पहले अपने को ही उचित काम मे लगाना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

१५८—अत्तानमेव पठमं पतिरूपे निवेसये।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो॥ २॥

पहले अपने को ही उचित (काम) में लगावे, बाद में दूसरे को उपदेश दे। इस तरह पण्डित क्लेश को न प्राप्त होगा।

अपना दमन ही कठिन है

(योगाभ्यासी तिस्स स्थविर की कथा)

१२, ३

योगाभ्यासी तिस्स स्थविर शास्ता के पास कर्मस्थान ग्रहण कर पाँच सौ भिक्षुओं को ले आरण्य में वर्षावास रहकर—"आवुसो! तुम लोगों ने बुद्ध के

पास कर्मस्थान ग्रहण किया है, अप्रमाद के साथ श्रमण धर्म करो।" ऐसे शेष भिक्षुओं को उपदेश देकर अपने सो रहते थे। भिक्षु रात्रि के पहले पहर को बिता कर जब सोने आते थे, तब वे उठ कर—"क्या सोने आ गये? जाओ श्रमण धर्म करो।" कहते थे ऐसे ही बिचले और पिछले पहर में भी। उनके साथ आये भिक्षु तिस्स स्थविर से परेशान होकर भली प्रकार न सो सकने के कारण चित्त एकाग्र न कर सके। किसी को भी विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ।

वे लौटकर भगवान् के पास गये और प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। परम कारुणिक सर्वज्ञ तथागत के—"क्या भिक्षुओ! अप्रमाद के साथ तुम लोगों ने श्रमण-धर्म किया?" पूछने पर उस बात को बतलाये। भगवान् ने—"भिक्षुओ! वह इसी समय नहीं, पहले भी तुम लोगों का विघ्न किया।" ऐसे कुक्कुट-जातक को कह कर—"भिक्षुओ! दूसरे को उपदेश देने वाले को पहले अपना दमन करना चाहिये, ऐसा व्यक्ति उपदेश करते हुए सुदान्त होकर दमन करता है।" उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१५९——अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासती।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो॥ ३॥

अपने को वैसा बनावे, जैसा दूसरे को अनुशासन करता है; (पहले) अपने को भली प्रकार दमन करके दूसरे का दमन करे, वस्तुतः अपने को करना (ही) कठिन है।

व्यक्ति अपना स्वामी आप है

(कुमार कश्यप स्थविर की माँ की कथा)

१२, ४

कुमार कश्यप स्थविर की माँ राजगृह नगर में सेठ की पुत्री थी। वह बचपन से ही प्रव्रजित होना चाहती हुई, माँ बाप से आज्ञा न पाने के कारण न हो सकी। माँ-बाप ने उसका विवाह कर दिया। वह पतिगृह जान कर पति की सेवा करके उससे प्रव्रजित होने की आज्ञा माँगी। वह सहर्ष उसे भिक्षुणी-आश्रम ले गया, किन्तु न जानते हुए देवदत्त की पक्षवाली भिक्षुणियों के पास प्रवजित कराया।

घर में रहते ही दोनों के संवास से उसे गर्भ रह गया था, किन्तु वह नहीं जानती थी। कुछ दिनों के बाद भिक्षुणियों ने उसके गर्भ को देख देवदत्त से कहा। देवदत्त ने—"यदि यह रही, तो हमारे पक्ष की निन्दा होगी।" सोच, उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर आश्रम से निकाल देने को कहा। किन्तु उस तरुण भिक्षुणी ने "मैं भगवान् के शासन में प्रव्रजित हुई हूँ, न कि देवदत्त के। मुझे आप लोग तथागत के पास ले चलें।" कहा। जब वह तथागत के पास गई, तब उन्होंने उपालि स्थविर को इसकी जाँच करने के लिए कहा। उपालि स्थविर ने राजा प्रसेनजित्, विशाखा और अनाथपिण्डिक आदि को बुलाकर सबके सामने थेरी को विशाखा के सुपुर्द किया। विशाखा ने एक पर्दा लगवाकर उसे वहाँ ले जाकर सब देखकर निर्दोष बतलाया। पीछे उसी के गर्भ से कुमार कश्यप का जन्म हुआ। जिन्हें राजा प्रसेनजित् ने पाला।

कुमार कश्यप सयाने होकर प्रव्रजित हो गये और वम्मिक सुत्त के उपदेश से अर्हत्व पा लिए। उनकी माँ को बारह वर्ष उन्हें देखे बिना हो गया था। एक दिन भिक्षाटन के समय वह कश्यप को देखकर पुत्रस्नेह से स्तन से दूध छोड़ती उनके पास आई और उन्हें पकड़ ली। स्थविर ने सोचा—"यदि मैं मधुर शब्दों में बात करूँगा, तो यह विनाश को प्राप्त हो जायेगी, कड़े शब्दों में ही बात करनी चाहिये।" और कहा—"क्या करते घूम रही हो? स्नेह-मात्र भी नहीं तोड़ सकती!" उनकी बात को सुन माँ का पुत्र स्नेह जाता रहा और वह उसी दिन अर्हत्व पा ली।

एक समय धर्म-सभा में इनकी चर्चा चली। भगवान् ने आकर चर्चा चलने की बात को पूछ निग्रोध जातक को कह—"भिक्षुओ! चूँकि दूसरे को अपना स्वामी बनाने पर स्वर्ग या मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिए व्यक्ति अपना स्वामी आप है, दूसरा क्या करेगा? कुमार कश्यप की माँ स्वयं उद्योग करके अर्हत्व पा ली।" ऐसा उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१६०— अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना'व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥ ४॥

व्यक्ति अपना स्वामी आप है, भला दूसरा कोई उसका स्वामी क्या होगा ? अपने ही को अच्छी तरह दमन कर लेने से वह दुर्लभ स्वामी (= निर्वाण) को पाता है।

अपना पाप अपने को ही पीड़ित करता है

(महाकाल उपासक की कथा)

१२, ५

श्रावस्ती में महाकाल नामक एक स्रोतापन्न उपासक था। वह महीने में आठ दिन उपोसथ रह सारी रात विहार में ही रहकर धर्म श्रवण करता था। एक रात एक घर में चोरों ने सेंध काटी और सामान लेकर भागना शुरू किया। गाँव वाले चोरों को देख उनका पीछा किये। सब चोर सामान फेंक कर भाग गये, उनमें से एक ने अपने लिये हुये सामान को पोखरी के किनारे फेंका था। उसी समय महाकाल उपासक रात भर विहार में रहकर सवेरे आते हुए उस पोखरी में उतर कर मुँह धो रहा था। गाँव के लोगों ने पोखरी के किनारे सामान और नीचे उपासक को देखकर उसे ही चोर समझ मार कर वहीं फेंक दिया। पीछे विहार के श्रामणेरों ने अपने उस उपासक को मरा हुआ देख भगवान् से कहा—भगवान् ने—"भिक्षुओ ! यह उपासक पूर्व जन्म में एक की रूपवती स्त्री पर मोहित होकर मृषा चोरी का दोष लगाकर मार डाला था, जिसके फल को इसने बहुत काल तक नरक में रहकर भोगा और विपाकावशेष से आज मारा गया। भिक्षुओ ! महाजाल अपने पूर्व जन्म के किये पाप का फल पाया है। ऐसे इन प्राणियों का किया हुआ पाप कर्म ही इन्हें चारों अपायों में पीड़ित करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१६१—अत्तना'व कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं'व'स्समयं मणिं ॥ ५ ॥

अपने से जात, अपने से उत्पन्न, अपने से किया पाप (करने वाले) दुर्बुद्धि को पाषाणमय वज्रमणि की (चोट की) भाँति पीड़ित करता है।

दुराचारी शत्रु के इच्छानुरूप बनता है

(देवदत्त की कथा)

१२, ६

भगवान् के वेणुवन में विहार करते समय एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में देवदत्त के दुराचार की चर्चा की। भगवान् ने आकर उसे पूछ—"भिक्षुओ! अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति को उसके दुराचार से उत्पन्न हुई तृष्णा, वैसे ही नरक आदि में डालती है जैसे कि मालुवा को लता साखू के पेड़ को घेर कर तोड़ डालती है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१६२—यस्सच्चन्तदुस्सीलयं मालुवा सोलमिवोततं।
करोति सो तथत्तानं यथा'नं इच्छति दिसो॥ ६॥

मालुवा लता से वेष्ठित साखू के पेड़ की भाँति जिसका दुराचार फैला हुआ है; वह अपने को वैसा ही कर लेता है, जैसा कि उसके शत्रु चाहते हैं।

हितकर को करना दुष्कर है

(संघ में फूट डालने की कथा)

१२, ७

भगवान् के वेणुवन में विहार करते समय एक दिन देवदत्त ने आनन्द स्थविर को भिक्षाटन करते हुए देखकर उनसे संघ भेद करने के अपने अभिप्राय को कहा। स्थविर ने जाकर भगवान् को सुनाया—"भन्ते! आज मेरे भिक्षाटन करते समय देवदत्त ने कहा—"आनन्द। आज से लेकर मैं भगवान् और भिक्षु-संघ से अलग ही उपोसथ तथा सांघिक-कर्म करूँगा। भन्ते! देवदत्त आज संघ में फूट डालेगा और उपोसथ तथा सांघिक-कर्म करेगा।" ऐसा कहने पर भगवान् ने—"आनन्द! अपना अहितकर कर्म सुकर होता है किन्तु हितकर ही दुष्कर होता है!" कहकर इस गाथा को कहा—

१६३—सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च।
यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं॥ ७॥

बुरी बातों का करना बड़ा आसान है जिनसे अपना ही अहित होता है, किन्तु) उसे करना बड़ा दुष्कर है जो अच्छा और हितकर है।

शासन की निन्दा घातक है

(कालस्थविर की कथा)

१२, ८

श्रावस्ती की एक उपासिका काल स्थविर को पुत्र की भाँति मानती थी और सदा उनका आदर-सत्कार करने को तत्पर रहती थी। कालस्थविर यह सोचकर उसे भगवान् के पास उपदेश सुनने नहीं जाने देते थे कि वह भगवान् के उपदेश को सुनकर उन्हें पूर्ववत् नहीं मानेगी। पड़ोसियों द्वारा भगवान् के उपदेश की प्रशंसा को सुनकर उपासिका से नहीं रह गया। वह उपोसथ के दिन भगवान् के पास गई और उपदेश सुनने लगी। जब कालस्थविर को ज्ञात हुआ, तब वे जेतवन गए और उपासिका को उपदेश सुनते हुए देखकर भगवान् से कहे—"भन्ते! यह मूर्खा है, सूक्ष्म धर्मोपदेश नहीं जानती है, इसे गम्भीर धर्मोपदेश न देकर दान या शील सम्बन्धी उपदेश दीजिये।"

शास्ता ने कालस्थविर के विचारों को जान—"दुष्प्रज्ञ! तू अपनी बुरी धारणा के कारण बुद्धों के शासन की निन्दा करता है, अपने ही घात के लिए प्रयत्न करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१६४—यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तघञ्ञाय फल्लति॥ ८॥

जो धर्मात्मा श्रेष्ठ अर्हतों के शासन की—अपनी पापमयी मिथ्या धारणा के कारण निन्दा करता है, वह अपनी ही बर्बादी करता है, जैसे बाँस का फूल बाँस को ही नष्ट कर देता है।

शुद्धि-अशुद्धि अपने ही होती है

(चूलकाल उपासक की कथा)

१२, ९

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय महाकाल की भाँति चूल काल

उपासक भी गाँव के लोगों द्वारा पीटा गया, किन्तु पानी लानेवाली दासियों द्वारा पहचानने पर बच गया। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने उनकी बात को सुन—"भिक्षुओ! चूलकाल पनिहारिनियों और अपने अकर्त्ता होने से बचा। ये प्राणी अपने पापकर्म करके नरक आदि में अपने ही से क्लेश पाते हैं और पुण्य करके स्वर्ग तथा निर्वाण को जाते हुए अपने ही से विशुद्ध होते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

१६५—अत्तना'व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं अत्तना'व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चतं नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥ ९॥

अपना किया हुआ पाप अपने को मलिन करता है। अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है। शुद्धि और अशुद्धि अपने ही से होती है। दूसरा आदमी दूसरे का शुद्ध नहीं कर सकता।

पराये के लिए अपनी हानि न करे

(अत्तदत्थ स्थविर की कथा)

१२, १०

भगवान् ने जब यह कहा कि चार मास के पश्चात् मेरा परिनिर्वाण होगा, तब पृथक् जन भिक्षु बहुत चिन्तित हुए। अत्तदत्थ स्थविर भिक्षुओं का साथ छोड़कर अकेले ही प्रयत्न करने लगे कि भगवान् के रहते ही अर्हत्व पा लूँ। भिक्षुओं ने उनके एकान्त में अकेले रहने की बात भगवान् से कहा। भगवान् ने उन्हें बुलाकर अकेले रहने का कारण पूछ, साधुकार दिया और—"भिक्षुओ! जिसे हम पर स्नेह है, उसे अत्तदत्थ के समान होना चाहिये। गन्ध आदि से पूजा करते हुए कोई हमारी पूजा नहीं करता है, किन्तु धर्म के अनुसार आचरण करके ही हमारी पूजा करता है; इसलिये दूसरों को भी अत्तदत्थ के समान ही होना चाहिए।" कहकर इस गाथा को कहा—

१६६—अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थ पसुतो सिया॥ १०॥

पराये के बहुत हित के लिए भी अपने हित की हानि न करे। अपने अर्थ की बात को समझ कर अपने ही अर्थ के साधन में लग जाय।

१३—लोकवग्गो

नीच धर्म का सेवन न करे

(किसी दहर भिक्षु की कथा)

१३, १

एक स्थविर किसी एक दहर भिक्षु के साथ प्रातःकाल विशाखा महोपासिका के घर जाकर यवागु पी, दहर भिक्षु को वहीं बैठा बाहर गये। उस समय विशाखा के पुत्र की लड़की भिक्षुओं की सेवा-टहल करती थी। वह दहर भिक्षु के लिए पानी छानती हुई पानी में पड़े हुए अपने मुख की छाया को देखकर हँसी। उसे हँसती हुई देख भिक्षु भी हँसा। इस पर लड़की ने—"कटे सिर वाला हँस रहा है।" कहा। तब भिक्षु ने उसे—"तू कटे सिर वाली है और तेरे माँ बाप भी कटे सिर वाले हैं।" कह कर आक्रोषन किया। वह रोती हुई विशाखा के पास गई। विशाखा से सब बात पूछ कर भिक्षु के पास आई और कही—"भन्ते! मत नाराज होवें, न यह कटे सिर, नख, कटे चीवर, अन्तर्वासक के बीच कटे कपाल को लेकर भिक्षाटन करने वाले आप के लिए दोषयुक्त है।"

"हाँ उपासिके! तुम मेरे कटे बाल आदि होने को जानती हो, क्या इसको मुझे 'कटे सिर वाला' कह कर आक्रोषन करना चाहिये?"

विशाखा न तो दहर भिक्षु को समझा सकी और न लड़की को ही। इसी बीच स्थविर आये और सब पूछ कर दहर भिक्षु को समझाये, किन्तु वह न माना। उसी क्षण शास्ता ने आकर 'यह क्या?' पूछ सारी बात को जान भिक्षु को स्रोतापत्ति के उपनिश्रय वाला देख विशाखा को—कहे "क्या विशाखे! 'कटे सिर वाला' कहकर मेरे श्रावकों को लड़की द्वारा अक्रोषन करना चाहिए?"

भिक्षु भगवान् को अपने पक्ष में देखकर प्रसन्न हो "भन्ते ! आप ही इस बात को भली प्रकार जानते हैं।" कहा। तब भगवान् ने भिक्षु को अपने अनुकूल होने को जान—"काम-वासन के प्रति हँसना नीच-धर्म है, नीच धर्म का सेवन नहीं करना चाहिये और न तो प्रमाद के साथ रहना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

१६७—हीनं धम्मं सेवेय्य, पमादेन न संवसे।
मिच्छादिट्ठिं न सेवेय्य न सिया लोकवड्ढनो ॥ १ ॥

नीच धर्म का सेवन न करे, प्रमाद से न रहे, मिथ्या धारणा में न पड़े, आवागमन का चक्र न बढ़ावे।

धर्मचारी सुखपूर्वक रहता है

(शुद्धोधन की कथा)

१३, २

जब भगवान् प्रथम बार कपिलवस्तु गये थे, तब पहले दिन भगवान् के उपदेश को सुनकर किसी ने उन्हें भोजन के लिए निमान्त्रित नहीं किया। महाराज शुद्धोधन ने भी "मेरा पुत्र दूसरे जगह कहाँ जायेगा, वह तो मेरे यहाँ आयेगा ही" सोचकर निमंत्रित नहीं किया, किन्तु दूसरे दिन बीस हजार भिक्षुओं के लिये यवागु आदि तैयार कराके आसनों को बिछवाया। भगवान् पूर्व के बुद्धों की भाँति भिक्षु संघ के साथ भिक्षाटन के लिए निकले। राहुल-माता ने प्रासाद पर बैठे हुए भगवान् को भिक्षाटन करते देख महाराज से कहा—महाराज शुद्धोधन जल्दी-जल्दी भगवान् के पास गये और प्रणाम करके—"पुत्र ! क्यों मुझे नाश कर रहे हो ? तुमने भिक्षाटन करके मुझे अत्यन्त लज्जित किया। क्या यह उचित है कि इसी नगर में तुमने स्वर्ण-पालकी आदि से विचरण करके भिक्षाटन करना ? क्या मुझे लज्जित कर रहे हो ?" कहा।

"महाराज ! मैं आपको नहीं लज्जित कर रहा हूँ, प्रत्युत अपने वंश की बात कर रहा हूँ।"

"क्या पुत्र ! भिक्षाटन करके जीना ही मेरे वंश में होता है ?"

"महाराज ! यह आपका वंश नहीं है, यह मेरा वंश है। अनेक सहस्र बुद्ध भिक्षाटन करके ही जीवित रहे।" कह कर धर्मोपदेश देते हुए भगवान् ने इन गाथाओं को कहा—

१६८—उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥ २ ॥

उठे, प्रमाद न कर, सुचरित धर्म का आचरण करे। धर्मचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है।

१६९—धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च। ३ ॥

सुचरित धर्म का आचरण करे, दुराचरण न करे। धर्मचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है।

यमराज नहीं देखता

(पाँच सौ विपश्यक भिक्षुओं की कथा)

१३, ३

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय पाँच सौ भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान ग्रहण कर जंगल में जा उद्योग करते हुए कुछ भी विशेषता को न पा पुनः भगवान् के पास कर्मस्थान को ठीक से ग्रहण करने के लिए आने लगे। आते समय मरीचिका कर्मस्थान की भावना करते हुए ही आये। जेतवन में पहुँचने पर उसी समय वर्षा हुई। वे बरामदे में खड़े होकर पानी के उठकर फूटते हुए बुलबुलों को देखकर—"यह भी शरीर उत्पन्न होकर नाश होने के अनुसार बुलबुला के सदृश ही है। ऐसे आलम्बन ग्रहण किये। शास्ता ने गन्धकुटी में बैठे हुए ही उन भिक्षुओं को देखकर उनके साथ बात करते अवभास व्याप्त कर इस गाथा को कहा—

१७०—यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥ ४ ॥

जो इस लोक को बुलबुले की तरह और मरीचिका की तरह देखे उस ऐसे देखनेवाले को यमराज नहीं देखता।

ज्ञानी को आसक्ति नहीं

(अभयराजकुमार की कथा)

१३, ४

अभय राजकुमार के सीमान्त प्रदेश में होते हुए उपद्रव को शान्त करके आने पर महाराज बिम्बिसार ने प्रसन्न होकर उसे एक नर्तकी और एक सप्ताह के लिए राज्य दिया। वह सप्ताह भर भवन के बाहर नहीं निकला। आठवें दिन नदी में स्नान कर सन्तति महामात्य की तरह उद्यान में गया। वहाँ उसकी नर्तकी सन्तति महामात्य की नर्तकी की तरह मर गई। तब वह अत्यन्त दुःखित हो वेणुवन में भगवान् के पास जाकर—"भन्ते! मेरे शोक को शान्त कीजिये। कहा। शास्ता ने उसे समझा—"कुमार! इस स्त्री के मरने पर तेरे बहाये हुए आँसू का इस अनादि संसार में प्रमाण नहीं है।" कहकर उस धर्मोपदेश से शोक को कम हुआ जान—"कुमार मत शोक करो, यह मूर्खों के फँसने का स्थान है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१७१—एथ पस्सथिमं लोकं चित्त राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि सङ्गो विजानतं॥ ५॥

आओ, चित्रित राज-पथ के समान इस लोक को देखो, जिसमें मूर्ख फँस जाते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुषों को आसक्ति नहीं होती।

जो पीछे प्रमाद नहीं करता

(सम्मुञ्जनि स्थविर की कथा)

१३, ५

शास्ता के जेतवन में विहार करते समय सम्मुञ्जनि नामक एक स्थविर प्रातः या सायं न जानकर सदा झाड़ू लगाया करते थे। एक दिन उन्हें रेवत स्थविर ने उपदेश दिया—"आवुस! भिक्षु को सदा झाड़ू देते ही नहीं विचरना चाहिए। प्रातःकाल ही झाड़ू देकर भिक्षाटन कर भोजनोपरान्त

रात्रि स्थान या दिन के स्थान में बैठ कर बत्तिस आकारों का पाठ करके शरीर के क्षय-व्यय को देखते हुए सायंकाल को उठकर झाड़ू देना चाहिये। सदा झाड़ू न देकर अपने लिए भी अवकाश करना चाहिये।" वे रेवत स्थविर के उपदेश को सुनकर वैसा आचरण करते हुए थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिये। अब धीरे-धीरे विहार के बहुत से स्थान गन्दे होने लगे। एक दिन भिक्षुओं ने पूछा—आवुस, सम्मुञ्जनि स्थविर! अमुक-अमुक स्थान गन्दा हो गये हैं, क्यों नहीं झाड़ते हो?"

"भन्ते! मैंने प्रमाद के समय में ऐसा किया, अब अप्रमादी हो गया हूँ।"

भिक्षुओं ने उन की इस बात को सुनकर भगवान् से कहा—"भन्ते! यह स्थविर अर्हत्व पाने की बात करते हैं।" तब भगवान् ने—"हाँ, भिक्षुओ! मेरा पुत्र पहले प्रमाद के समय झाड़ू देते विचरण किया, किन्तु अब मार्ग फल के सुख से समय व्यतीत कर झाड़ू नहीं लगाता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१७२—यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥ ६ ॥

जो पहले प्रमाद करके पीछे प्रमाद नहीं करता, वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति प्रकाशित करता है।

लोक को प्रकाशित करता है

(अङ्गुलिमाल स्थविर की कथा)

१३, ८

भगवान् के जेतवन में रहते समय अँगुलिमाल स्थविर के परिनिर्वाण हो जाने पर एक दिन भिक्षुओं में चर्चा चली—"आवुसो! अँगुलिमाल मर कर कहाँ उत्पन्न हुए?" उसी समय भगवान् ने आकर भिक्षुओं की परस्पर चलती हुई चर्चा के विषय में पूछकर—"भिक्षुओ! मेरा पुत्र परिनिर्वृत्त हो गया।" कहा।

"भन्ते! इतने मनुष्यों को मारकर परिनिर्वृत्त हुए?"

"हाँ भिक्षुओ ! वह पहले एक कल्याण-मित्र को न पाकर इतना पाप किया, किन्तु पीछे कल्याण-मित्र का सहारा पाकर अप्रमत्त हो गया। इसलिए वह पाप-कर्म पुण्य से ढँक गया।" भगवान् ने यह कहकर इस गाथा को कहा—

१७३—यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयती।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो'व चन्दिमा ॥ ७ ॥

जिसका किया पाप-कर्म उसके पुण्य से ढंक जाता है, वह इस लोक को मेघ से युक्त चन्द्रमा की भाँति प्रकाशित करता है।

यह लोक अन्धे के समान है

(पेशकार-कन्या की कथा)

१३, ७

शास्ता आलवी के अग्गालव चैत्य नामक विहार में विहर रहे थे। उस समय आलवी के एक पेशकार (=जुलाहा) की सोलह वर्ष की कन्या तथागत के उपदेश को सुनकर तीन वर्ष से मरण-स्मृति की भावना करती थी।

एक दिन ग्राम-वासियों ने भिक्षु संघ के साथ भगवान् को भोजन दान दिया। भोजनोपरान्त जब भगवान् अनुमोदन करने जा रहे थे, तब वह पेशकार की कन्या सूत से वेष्ठित तसरों को लेकर पेशकार-शाला जा रही थी। उसने भगवान् को उपदेश करने के लिए बैठा देख तसर की टोकरी को एक ओर रखकर भगवान् के पास आकर प्रसन्न-चित्त से प्रणाम किया। भगवान् ने पूछा—"कुमारिके ! कहाँ से आ रही हो ?"

"भन्ते ! नहीं जानती हूँ।"

"कहाँ जाओगी ?"

"भन्ते ! नहीं जानती हूँ।"

"क्या नहीं जानती हो ?"

"भन्ते ! जानती हूँ।"

"जानती हो ?"

"भन्ते ! नहीं जानती हूँ।"

भगवान् के साथ इस प्रकार मनमाना बात करते समय देखकर ग्रामवासी उस पर नाराज हुए। किन्तु भगवान् ने उन्हें समझा कर पुनः पूछा—"कुमारिके! कहाँ से आ रही हो?" पूछने पर क्यों नहीं जानती हूँ, कह रही है?"

"भन्ते! पेशकार के घर से मेरे आने को आप जानते ही हैं, किन्तु मैं कहाँ से मर कर यहाँ उत्पन्न हुई हूँ—नहीं जानती हूँ, इस लिए मैंने नहीं जानती हूँ—कहा है।" भगवान् ने उसे साधुकार दिया। वह अन्य प्रश्नों का भी उत्तर क्रमशः इस प्रकार दी—"मैं यह नहीं जानती कि मरकर कहाँ आऊँगी।"

"मैं यह जानती हूँ कि मुझे मरना है।"

"मैं यह नहीं जानती हूँ कि किस समय मरूँगी।"

भगवान् ने चारों प्रश्नोत्तरों के पश्चात् उसे साधुकार देकर परिषद् को आमन्त्रित किया—"इतने तुम लोग इसकी कही हुई बात को नहीं जानते, केवल नाराज ही होते हो, जिन्हें प्रज्ञा-चक्षु नहीं है, वे अन्धे ही हैं, किन्तु जिन्हें प्रज्ञा-चक्षु है, वे ही चक्षुमान् हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

१७४—अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तो'व अप्पो सग्गाय गच्छति॥ ८॥

यह लोक अन्धे के सदृश है, यहाँ देखने वाले थोड़े ही हैं, जाल से मुक्त पक्षी की भाँति विरले ही स्वर्ग का जाते हैं।

पण्डित निर्वाण को जाते हैं

(तीस भिक्षुओं की कथा)

१३, ८

शास्ता के जेतवन में विहार करते समय एक दिन तीस दिशा वासी भिक्षु भगवान् के पास गये। आनन्द स्थविर उन भिक्षुओं को भगवान् से बातचीत करते हुए देख भीतर न जाकर बाहर खड़े रहे। वे भिक्षु भगवान् के उपदेश को सुनकर अर्हत्व पा आकाश-मार्ग से उड़कर चले गये। आनन्द

स्थविर उन भिक्षुओं के निकलने की राह देखते-देखते जब ऊब गये, तब भीतर गये और उन्हें न देखकर भगवान् से छा—"भन्ते ! यहाँ तीस भिक्षु आये थे, वे कहाँ हैं ?"

"आनन्द ! वे चले गये।"

"भन्ते ! किस मार्ग से ?"

"आनन्द ! आकाश से।"

"क्या भन्ते ! वे क्षीणास्रव थे ?"

"हाँ आनन्द ! मेरे पास धर्म सुनकर अर्हत्व पा लिये।"

उस समय आकाश में हंस उड़ रहे थे। शास्ता ने—"आनन्द ! जिसने चारों ऋद्धिपादों की भावना की है, वह हंसों के समान आकाश से जाता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१७५—हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिनिं ॥ ९ ॥

हंस सूर्य-पथ (= आकाश) में जाते हैं, ऋद्धि से योगी भी आकाश में गमन करते हैं। पण्डित पुरुष सेना-सहित मार को पराजित कर लोक से (निर्वाण को) चले जाते हैं।

झूठे को कोई पाप अकरणीय नहीं

(चिञ्चमाणविका की कथा)

१३, ४

तथागत और भिक्षु-संघ के उत्पन्न लाभ-सत्कार और यश को तैर्थिक नहीं देख सकते थे। उन्होंने एक दिन आपस में परामर्श किया कि चिञ्चमाणविका द्वारा बुद्ध की अकीर्ति फैलायें। उन्होंने माणविका को समझा-बुझाकर इस कार्य के लिये नियुक्त किया।

चिञ्चमाणविका प्रतिदिन सन्ध्या को जेतवन की ओर जाती थी और पास के तैर्थिकों के आश्रम में रहकर भोर के समय ही उठकर जेतवन से आने का आकार दिखलाती हुई आती थी। लोगों के छने पर "मैं रात में

श्रमण गौतम के पास गन्ध कुटी में रही हूँ" कहती थी। इस प्रकार जब नव-दस महीने बीत गये तब वह एक दिन सन्ध्या को अपने पेट पर लकड़ी बाँध, लाल वस्त्र पहन, उदास मुँह गर्भिणी के आकार से जेतवन गई। उस समय भगवान् परिषद् के बीच बैठे धर्मोपदेश कर रहे थे। वह धर्म-सभा में जाकर तथागत के सामने खड़ी हो—"महाश्रमण! आप तो महा जन-समूह के लिये धर्मोपदेश कर रहे हैं, आपकी वाणी बड़ी ही मधुर है, किन्तु मैं आपके कारण गर्भिणी हो गई, न तो मेरे प्रसूति-घर का आप प्रबन्ध करते हैं और न घी-तेल आदि का ही। यदि आप नहीं कर सकते हैं तो अपने सेवकों में से कोशलराज, अनाथपिण्डिक या विशाखा - किसी को कहिये कि वे मेरा प्रबन्ध करें। आप केवल अभिरमण करना ही जानते हैं, गर्भ-का परिहार नहीं जानते हैं" गूथ को उठाकर चन्द्र-मण्डल पर फेंकने के समान परिषद् के बीच तथागत का आक्रोशन की। तथागत ने धर्मोपदेश को रोक कर—"भगिनी! तेरे कहे हुए के सत्य-असत्य होने को मैं और तू ही जानते हैं" कहा।

"हाँ श्रमण? आप के और मेरे जानने योग्य बात को कौन नहीं जानते हैं?"

उस समय इन्द्र का आसन गर्म जान पड़ा। वह चिञ्चमाणविका के इस कृत्य को देख तुरत चार देवताओं के साथ आया। देवता चूहे का वेष धारण कर एक ही साथ उसके पेट के ऊपर की बँधी हुई रस्सी को काट दिये। वायु ने वस्त्र को उड़ा दिया और वह बँधी हुई लकड़ी चिञ्चमाणविका के पैर पर गिरी, जिससे उसके अगले पैर कट गये। लोगों ने "छिः छिः तथागत का यह निन्दा कर रही है" कहकर उसे मार-पीट कर बाहर निकाला। वह तथागत के नेत्रों से ओझल होते ही पृथ्वी में धँस गई और अवीचि महानरक का वास पाई।

दूसरे दिन धर्म-सभा में उसकी चर्चा चली। भगवान् ने आकर पूछ, उसे जान "भिक्षुओं! न केवल इसी समय यह मेरी झूठी निन्दा करके विनाश को प्राप्त हुई, पहले भी इसने झूठी निन्दा की ही थी।" कहकर

महापदुम जातक को कहा और उपदेश देते हुए—"भिक्षुओ! जिन्होंने एक-धर्म—सत्यवादिता को त्यागकर मृषावादिता को अपना लिया है, उन परलोक की चिन्ता का त्यागे पुरुषों के लिए कोई भी पाप कर्म अकरणीय नहीं है" कह कर इस गाथा को कहा—

१७६—एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं॥ १०॥

एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है उस परलोक की चिन्ता से रहित पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता जो वह न कर सके।

कंजूस देवलोक नहीं जाते

(असदृश दान की कथा)

१३, १०

एक समय भगवान् चारिका करके पाँच सौ भिक्षुओं के साथ जेतवन आये। राजा विहार में आकर भगवान् को भोजन के लिए निमंत्रित किया। वह भोजन तैयार कराया, तब नगर-वासियों को कहला भेजा कि 'वे आयें और उसके दान देने की विधि को देखें।' नगरवासी उसके दान को देखकर भगवान् को निमंत्रित कर राजा से भी बढ़कर दान दिये और राजा को बुलाकर दिखलाये। राजा ने फिर नगरवासियों से बढ़कर दान देने का प्रयत्न किया, किन्तु नगरवासियों ने पुनः ऐसा दान दिया कि राजा का दान उनके सामने तुच्छ-सा हो गया। इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई। जब उसे कोई भी ऐसा उपाय नहीं दिखाई दिया कि नगरवासियों के दान से बढ़िया दान देकर जीत जायँ, तब पलंग पर जाकर सो रहा। मल्लिका ने राजा को सोये हुए देख आकर कारण पूछा और सब जान लेने के पश्चात् कहा—"महाराज! आप न घबरायें भगवान् को निमंत्रित करके प्रत्येक भिक्षु के पीछे एक-एक हाथी खड़ा करें जो, श्वेत छत्र के साथ हों। एक-एक क्षत्रिय कन्यायें प्रति दो भिक्षुओं को पंखा झलें तथा अन्य बीच में रखी हुई नौका में गन्ध पीसकर डालें एवं कमल पुष्पों को

सुवासित करें, इस प्रकार आप का दान असदृश होगा, नगरवासी ऐसा नहीं कर सकेंगे। राजा ने वैसा ही किया।

उस दिन भोजनोपरान्त भगवान् ने विनयपूर्वक दानानुमोदन नहीं किया, क्योंकि राज के काल नामक अमात्य के मन में ऐसे विचार उत्पन्न हुए—"अहो, राजकुल की परिहानि हो रही है। एक दिन में ही चौदह करोड़ धन का व्यय हुआ। ये भिक्षु इस दान को खाकर सोयेंगे और राजकुल नष्ट हो रहा है।" दूसरे शुक्ल नामक अमात्य के मन में ऐसे विचार उत्पन्न हुए—"अहो, राजा का दान, बिना राजा के कोई भी ऐसा दान नहीं दे सकता है, किन्तु सभी सत्वों के लिए पुण्य-प्राप्ति नहीं दी गई है, फिर भी मैं अनुमोदन करता हूँ।"

भगवान् ने देखा कि यदि अनुमोदन विस्तारपूर्वक करूँगा, तो एक को स्रोतापत्ति-फल की प्राप्ति होगी और दूसरे का सिर सात टुकड़ों में फट जायेगा। अतः एक गाथा से ही अनुमोदन कर विहार चले गये। राजा को बड़ा दुःख हुआ कि ऐसे असदृश दान देने पर भी भगवान ने विस्तारपूर्वक अनुमोदन नहीं किया। वह पीछे विहार में आया और इसका कारण पूछा। भगवान् ने सब कह सुनाया। राजा ने उसे सुनकर उसी समय काल को बुलवा कर राष्ट्र से निर्वासित कर दिया और शुक्ल को सप्ताह भर के लिए राज्य सौंपकर दान देने के लिये कहा।

"भन्ते! देखिये, मेरे ऐसे दिये हुए दान पर मूर्ख काल प्रहार किया!" राजा ने कहा।

"हाँ, महाराज! मूर्ख दूसरे के दान के प्रति अप्रसन्न होकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं, किन्तु पण्डित दूसरे के दान का भी अनुमोदन करके स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।" कहकर भगवान् ने इस गाथा को कहा—

१७७—न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति
बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं।
धीरो च दानं अनुमोदमानो
तेनेव सो होति सुखी परत्थ॥ ११॥

कंजूस देवलोक नहीं जाते, मूर्ख दान की प्रशंसा नहीं करते; पण्डित दान अनुमोदन कर, उसी (कर्म) से परलोक में सुखी होता है।

स्रोतापत्ति-फल श्रेष्ठ है

(अनाथपिण्डिक के पुत्र काल की कथा)

१३, ११

अनाथपिण्डिक को काल नामक एक पुत्र था। वह भगवान् के पास धर्म-श्रवण के लिए नहीं जाता था। अनाथपिण्डिक ने उसे सौ कार्षापण देने का प्रलोभन देकर धर्म-श्रवण के लिए जेतवन भेजा। काल जेतवन जाकर रातभर सोकर दूसरे दिन सवेरे घर आया और जब तक सौ कार्षापण नहीं लिया तब तक भोजन नहीं किया। पुनः दूसरे दिन अनाथपिण्डिक ने—"पुत्र ! हजार कार्षापण दूँगा, आज धर्म-श्रमण के लिए जाकर कुछ याद कर आओ।" काल विहार में जाकर भगवान् के सामने बैठ कर धर्म-श्रवण करते हुए स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त कर लिया। तीसरे दिन वह भगवान् के साथ ही घर आया। आज उसकी मुखाकृति दूसरी ही थी। भोजनोपरान्त अनाथपिण्डिक ने हजार कार्षापणों की पोटरी दिखाई, किन्तु वह नहीं लेना चाहा। तब उसने भगवान् से कहा—"भन्ते ! पहले दिन यह बिना कार्षापण लिये भोजन तक नहीं किया और आज कार्षापण देने पर भी नहीं लेता है।"

शास्ता ने—"हाँ, श्रेष्ठी ! आज तुम्हारे पुत्र के लिए चक्रवर्ती की सम्पत्ति से भी और देवलोक तथा ब्रह्मलोक की सम्पत्तियों से भी स्रोतापत्ति-फल ही श्रेष्ठ है।" कहकर इस गाथा को कहा—

१७८—पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं ॥ १२ ॥

सारी पृथ्वी का अकेला राजा होने से या स्वर्ग के गमन से अथवा सारे लोक का स्वामी हो जाने से भी स्रोतापत्ति-फल श्रेष्ठ है।

१४—बुद्धवग्गो

किस पद से बुद्ध जायेंगे ?

(मार-कन्याओं की कथा)

१४, १

[भगवान् ने मागन्दिय ब्राह्मण को इस उपदेश को दिया था, किन्तु सर्व प्रथम बोधि-वृक्ष के नीचे उन्होंने मार की कन्याओं को इसे सुनाया था ।]

बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व जब भगवान् बोधि-वृक्ष के नीचे यह प्रतिज्ञा करके बैठे थे "चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न शेष रह जायँ, चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जाये, किन्तु बिना सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त किये इस आसन को नहीं छोड़ूँगा ।" तब मार भगवान् को पछाड़ने के लिये आया और जब वह स्वयं हार गया, तब अपनी तीन कन्याओं को भेजा। मार-कन्यायें नाना प्रकार के प्रयत्न कर भगवान् को अपने वश में करना चाहीं। पहले तो भगवान् ने उन पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु पीछे—"हटो, क्या देखकर इतना प्रयत्न कर रही हो, क्या राग-रहितों के सामने ऐसा करना उचित है ? तथागत का तो राग आदि प्रहीण है, किस कारण से उन्हें तुम लोग अपने वश में करोगी ।" कहकर इन गाथाओं को कहा—

१७९—यस्स जितं नावजीयति
जितमस्स नो याति कोचि लोके ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ १ ॥

जिसका जीता बेजीता नहीं किया जा सकता, जिसके जीते राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौटते; उस अनन्तगोचर (= अनन्त को देखने वाले) अ-पद बुद्ध को किस पद से ले जाओगी ?

१८०—यस्स जालिनी विसत्तिका
तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे ।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ॥ २ ॥

जिसकी जाल फैलाने वाली विष-रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने योग्य नहीं रही, उस अनन्तगोचर अ-पद बुद्ध को किस पद से ले जाओगी ?

बुद्धों को देवता भी चाहते हैं

(यमक प्रातिहार्य की कथा)

१४, २

भगवान् आषाढ़ की पूर्णिमा को श्रावस्ती में गण्डाम्र वृक्ष के नीचे यमक प्रातिहार्य करके तावतिंस-भवन में पाण्डु कम्बल शिलासन पर तीन मास वर्षावास किये और अभिधर्म-पिटक का उपदेश दिये।

महापवारणा के दिन महाब्रह्मा, इन्द्र आदि द्वारा छत्र धारण किये हुए भगवान् शंकास्य नगर में तावतिंस-भवन से मणिमय सोपान से उतरे। उस समय देवता और मनुष्यों का जो सन्निपात हुआ था वह संख्यातीत था। देवता मनुष्यों को देखते थे और मनुष्य देवताओं को। भगवान् की शोभा छः वर्ण की रश्मियों के साथ अकथनीय थी। जब भगवान् शंकास्य नगर के द्वार पर उतरे तब सारिपुत्र शास्ता को वन्दना कर, चूँकि सारिपुत्र द्वारा इस प्रकार की बुद्ध-श्री नहीं देखी गई थी, अतः "न तो इससे पूर्व मैंने देखा ही था और न सुना था कि शास्ता तावतिंस-भवन से मणिमय सोपान से उतरे।" आदि कहकर अपना सन्तोष प्रकट करते हुए "भन्ते ! सभी देवता और मनुष्य आपको चाहते हैं।" कहे। तब शास्ता ने—"सारिपुत्र ! ऐसे गुणों से युक्त बुद्ध देवता और मनुष्यों को प्रिय होते ही हैं।" कह कर धर्म का उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१८१—ये झानपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ॥ ३ ॥

जो धीर ध्यान में लगे, परम शान्त निर्वाण में रत हैं, उन स्मृतिमान् बुद्धों को देवता भी चाहते हैं।

मनुष्य-जन्म पाना कठिन है

(एरकपत्त नागराज की कथा)

१४, ३

एक समय भगवान् वाराणसी में सात शिरीष वृक्षों के नीचे विहार कर रहे थे। उस समय एरकपत्त नामक नागराज स्रोतापन्न उत्तर माणवक के साथ भगवान् के पास आया और वन्दना कर रोते हुए खड़ा हो गया। तब शास्ता ने उससे पूछा—"यह क्या महाराज ?"

'भन्ते ! मैंने कश्यप भगवान् का श्रावक होकर बीस हजार वर्षों तक श्रमण-धर्म किया। वह भी श्रमण धर्म मेरा निस्तार नहीं कर सका। केवल एरक के पत्ते को तोड़ने मात्र से अहेतुक प्रतिसन्धि को ग्रहण कर पेट से ही हानि को प्राप्त होने वाले स्थान पर उत्पन्न हुआ हूँ। एक बुद्धान्तर मनुष्यत्व नहीं प्राप्त कर सका, न सद्धर्म-श्रवण किया, और न तो आप सदृश बुद्ध का दर्शन ही पाया।"

शास्ता ने उसकी बात सुन—"महाराज ! मनुष्य का जन्म पाना कठिन ही है, वैसे ही सद्धर्म का श्रमण और बुद्धों का उत्पन्न होना। ये बड़ी कठिनाई से प्राप्त होते हैं।" कह कर धर्मोपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

१८२—किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चान जीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥ ४ ॥

मनुष्य का जन्म पाना कठिन है, मनुष्य का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है।

बुद्धों की शिक्षा

(आनन्द स्थविर के उपोसथ-प्रश्न की कथा)

१४, ४

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर ने एक दिन ऐसा विचार किया—"शास्ता ने सातों बुद्धों के माता, पिता और आयु के

परिच्छेद आदि को बतलाया, किन्तु उपोसथ को नहीं बतलाया। क्या उनका भी यही उपोसथ था या दूसरा ?"

उन्होंने सन्ध्या को भगवान् के पास जाकर इस बात को कहा। शास्ता ने उन बुद्धों के काल-भेद को बतलाकर "उपदेश करने की गाथायें यही हैं" कह, सभी बुद्धों के एक ही उपोसथ को प्रकट करते हुए इन गाथाओं को कहा—

१८३—सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ॥ ५ ॥

सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यह बुद्धों की शिक्षा है।

१८४—खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
नहि पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयन्तो ॥

सहन शीलता और क्षमा-शीलता परम तप है, बुद्ध लोग निर्वाण को परम पद बतलाते हैं। दूसरों का घात करने वाला और सताने वाला प्रव्रजित श्रमण नहीं होता।

१८५—अनुपवादो अनुपघातो पातिमोक्खे च संवरो।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥ ७ ॥

निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष में संयम रखना, भोजन में मात्रा जानना, एकान्तवास, चित्त को योग में लगाना—यह बुद्धों की शिक्षा है।

काम-भोग दुखःद है

(उदास भिक्षु की कथा)

१४, ५

एक दहर भिक्षु का पिता मरते समय उसे देखना चाहते हुए भी नहीं देख पाया क्योंकि वह भिक्षु दूसरे स्थान पर चला गया था। पिता उसका

नाम लेते हुए रोकर अपने छोटे पुत्र के हाथ में दहर भिक्षु के चीवर आदि के लिए सौ कार्षापण देकर मर गया। पीछे कुछ दिनों के बाद वह दहर भिक्षु श्रावस्ती आया। उसके छोटे भाई ने रोकर सारा समाचार कहते हुए उन कार्षापणों को दिया, किन्तु भिक्षु ने उन्हें लेने से इनकार कर दिया।

कुछ सप्ताहों के बाद भिक्षु ने सोचा—"हमें घर-घर जाकर भिक्षा माँग कर जीने से अच्छा है कि उन सौ कार्षापणों से ही जीवन-यापन करूँ" वह चीवर छोड़ कर गृहस्थ होने का संकल्प कर लिया। उसे भिक्षु-जीवन से उदास हुआ जान तरुण श्रामणेरों ने भगवान् से कहा। भगवान् ने उस भिक्षु को बुलाकर मन्धातु जातक कह—"भिक्षु! इतने कार्षापणों से क्या होगा! इससे तेरी तृष्णा नहीं तृप्त होगी। उपदेश देते हुए इन दो गाथाओं को कहा—

१८६—न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति।
अप्पसादा दुखा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो ॥ ८ ॥
१८७—अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥ ९ ॥

यदि कर्षापणों (= रुपयों) की वर्षा हो, तो भी मनुष्य की कामों (= भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती। सभी काम (= भोग) अल्प-स्वाद और दुःखद हैं, ऐसा जानकर पण्डित देवलोक के भोगों में भी रति नहीं करता; और सम्यक् सम्बुद्ध का श्रावक तृष्णा को नाश करने में लगता है।

उत्तम शरण

(अग्गिदत्त ब्राह्मण की कथा)

१४, ६

कोशल नरेश प्रसेनजित् के पिता का अग्गिदत्त नामक ब्राह्मण पुरोहित था। जब कोशल नरेश के पिता का देहान्त हो गया, तब वह कोशल नरेश के सत्कार-सम्मान करने पर भी घर-बार छोड़ कर परिव्राजक बन गया। उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी, अतः थोड़े ही दिनों में दस हजार परिव्राजकों से

घिर गया। वह अंग, मगध, काशी, कोशल आदि राष्ट्रों में घूम कर उपदेश देता था—"पर्वत की शरण जाओ, वन की शरण जाओ, बगीचों की शरण जाओ, वृक्ष की शरण जाओ, ऐसे सारे दुःखों से छुटकारा पा सकोगे।"

एक बार वह अपने शिष्यों सहित श्रावस्ती के पास बालुका राशि पर विहार कर रहा था। भगवान् ने मौद्गल्यायन को—"मौद्गल्यायन! आओ, अग्गिदत्त को उपदेश करो, मैं भी आऊँगा।" कहकर भेजा।

जिस स्थान पर अग्गिदत्त रहता था, वहीं पास की बालुका-राशि में एक नागराज रहता था। मौद्गल्यायन अग्गिदत्त के पास जाकर एक रात की पर्णशाला में रहने के लिए आज्ञा माँगे, किन्तु वह नहीं दिया। तब अग्गिदत्त के मना करने पर भी उस बालुका-राशि पर गये, जहाँ कि नागराज रहता था। नागराज उन्हें आते हुए देख क्रोधित हो धुँधुआया, मौद्गल्यायन भी धुँधुआये, पीछे वह प्रज्वलित हो उठा, मौद्गल्यायन भी प्रज्वलित हुए। अन्त में नागराज हार कर उनके ऊपर फण करके रात भर उन्हें शीत से बचाया।

परिव्राजकों ने इस दृश्य को देखकर समझा कि मौद्गल्यायन मर गये होंगे, किन्तु प्रातःकाल उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि नागराज के फण के नीचे वह बैठे हैं। वे उनके पास जाकर प्रशंसा करते घेर कर खड़े हो गये। उसी समय भगवान् भी आये। स्थविर ने उठकर प्रणाम किया। तब परिव्राजकों ने कहा—"क्या वह तुमसे भी बड़े हैं?"

"यह भगवान् मेरे शास्ता हैं, मैं इनका श्रावक हूँ।"

भगवान् बालुका-राशि के ऊपर बैठ गये। परिव्राजक—"यह अभी श्रावक का आनुभाव है, इसका आनुभाव कैसा होगा!" कह कर हाथ जोड़ शास्ता की स्तुति किये। शास्ता ने अग्गिदत्त को आमन्त्रित करके कहा—"अग्गिदत्त! तू श्रावकों को उपदेश देते समय क्या कहते हो?" अग्गिदत्त ने पर्वत आदि की शरण जाने को कह सुनाया।" तब शास्ता ने—"अग्गिदत्त! इन शरणों को जाने वाला व्यक्ति सब दुःखों से नहीं छुटकारा पाता है, किन्तु बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाने वाला सब दुःखों से छुटकारा पाता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

१८८—बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥१०॥
१८९—नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥११॥

मनुष्य भय के मारे पर्वत, वन, आराम (= उद्यान), वृक्ष, चैत्य (= चौरा) आदि को देवता मान उनकी शरण में जाते हैं, किन्तु ये शरण मंगलदायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणों में जाकर सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

१९०—यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ॥ १२ ॥
१९१—दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥१३॥
१९२—एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ १४ ॥

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया, जिसने चार आर्य सत्यों का—दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यक् प्रज्ञा से देख लिया है, यही रक्षादायक शरण है, यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

उत्तम पुरुष सर्वत्र नहीं उत्पन्न होता

(आनन्द स्थविर के पूछे प्रश्न की कथा)

१४, ७

आनन्द स्थविर एक दिन भगवान् के पास जाकर पूछा—"भन्ते! आप ने उत्तम हस्ति और उत्तम अश्व के उत्पत्ति-स्थान को बतलाया है, किन्तु उत्तम पुरुष के उत्पत्ति-स्थान को नहीं बतलाया है, वे कहाँ उत्पन्न होते हैं?"

शास्ता ने—"आनन्द ! उत्तम पुरुष सर्वत्र नहीं उत्पन्न होता है। वह तीन सौ योजन सीधे और नव सौ योजन घेरे वाले मध्यम-देश में ही उत्पन्न होता है और वह उत्पन्न होते हुए भी महाधनवान् क्षत्रिय या ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

१९३—दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति ।
यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेधती ॥ १५ ॥

उत्तम-पुरुष दुर्लभ है, वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता, वह धीर (पुरुष जहाँ उत्पन्न होता है, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है।

संघ में एकता सुखदायक है

(बहुत से भिक्षुओं की कथा)

१४, ८

जेतवन विहार में एक दिन बहुत से भिक्षु बैठे बात कर रहे थे कि इस संसार में कौन-सा सुख है ? किसी ने कहा—राज्य-सुख के समान दूसरा सुख नहीं है, किसी ने काम-सुख की ही प्रशंसा की। भगवान् ने उस समय आकर भिक्षुओं की इस चर्चा को सुन—"भिक्षुओ ! क्या कह रहे हो ? यह सारा सुख दुःखमय है, इस संसार में बुद्धोत्पाद, धर्म-श्रवण, संघ में एकता और एकतायुक्त हो तप करना ही सुखदायक है।" कहकर इस गाथा को कहा—

१९४—सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना ।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥ १६ ॥

सुखदायक है बुद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्धर्म का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकतायुक्त हो तप करना।

बुद्धों की पूजा के पुण्य का परिणाम नहीं

(कश्यप बुद्ध के सुवर्ण-चैत्य की कथा)

१४, ९

एक समय भगवान् श्रावस्ती से वाराणसी को जाते हुए मार्ग में तोदेय्य

ग्राम के पास महाभिक्षु संघ से घिरे हुए एक देवस्थान पर पहुँचे। सुगत ने वहाँ बैठकर पास ही खेती के काम करते हुए एक ब्राह्मण को आनन्द-द्वारा बुलवाया। ब्राह्मण भगवान् के पास आ देवस्थान को प्रणाम कर खड़ा हो गया। शास्ता ने—"ब्राह्मण! क्या जानकर प्रणाम किये हो?"

"हम लोगों की परम्परा से आया हुआ चैत्य-स्थान है।"

"ब्राह्मण! तूने इस स्थान को प्रणाम करते हुए अच्छा किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् की इस बात को सुनकर उस स्थान के महत्त्व को पूछा। भगवान् ने घटिकार सूत्र का उपदेश करके कश्यप बुद्ध के योजन भर के सुवर्ण-चैत्य को ऋद्धिबल से दिखा—"पूजनीयों की पूजा करनी युक्त है।" कह महापरिनिर्वाण सूत्र में आये हुए चार स्तूपार्ह को प्रकाशित कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

१९५—पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके।
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥ १७ ॥

१९६—ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये।
न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तम्पि केनचि ॥ १८ ॥

पूजनीय बुद्धों, अथवा (उनके) श्रावकों—जो संसार को अतिक्रमण कर गये हैं, जो शोक, भय को पारकर गये हैं—की पूजा के (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भय (पुरुषों) की पूजा के पुण्य का परिणाम "इतना है"—यह किसी से भी नहीं कहा जा सकता है।

१५—सुखवग्गो

हम अवैरी होकर सुखी हैं

(जाति-कलह के उपशमन की कथा)

१५, १

शाक्य और कोलिय राज्यों के बीच रोहिणी नामक नदी के पानी को रोक कर दोनों जनपदवासी खेत की सिंचाई करते थे। एक बार ज्येष्ठ-मास में फसल के सूखने को देखकर दोनों जनपदवासी शाक्य और कोलियों के नौकर अपने-अपने खेतों की सिंचाई करने के लिए रोहिणी नदी पर आये। दोनों ही पहले अपने खेतों को सींचना चाहते थे, अतः दोनों में झगड़ा हो चला। यह समाचार उनके मालिक शाक्य और कोलियों को मिला। वे सेना के साथ तैयार हो युद्ध करने के लिए निकल पड़े।

शास्ता प्रातःकाल महाकरुणा समापत्ति में लोक को देखते हुए शाक्य और कोलियों के इस कार्य को देखे और उसी समय आकाश मार्ग से जा रोहिणी नदी के बीच आकाश में पालथी लगाकर बैठ गये। शाक्य और कोलियों ने भगवान् को देख हथियार फेंक वन्दना की। भगवान् ने—"महाराज! यह कौन सा झगड़ा है?" पूछा।

"भन्ते! हम लोग नहीं जानते हैं?"

"कौन जानता है?"

"सेनापति जानता है।"

सेनापति ने उपराजा को बतलाया। इसी प्रकार पूछते हुए नौकरों से जानकर "भन्ते! पानी के कारण।" कहे।

"महाराज! पानी का क्या मूल्य है?"

"अल्प-मात्र भन्ते!"

"महाराज! क्षत्रियों का क्या मूल्य है?"

"भन्ते! क्षत्रिय अमूल्य हैं।"

"तो तुम लोगों को यह युक्ति नहीं है जो कि पानी के कारण अमूल्य क्षत्रियों का नाश करने जा रहे हो।"

यह सुनकर वे चुप हो गये। तब शास्ता ने उन्हें सम्बोधित करके—"महाराज! क्यों ऐसा कर रहे हो? आज मेरे न होने पर लोहू की नदी बहती। तुम लोगों ने अयुक्त किया। तुम लोग पाँच वैरों के साथ वैर-युक्त होकर विहर रहे हो, किन्तु मैं वैर रहित विहरता हूँ, तुम लोग क्लेश से पीड़ित हुए विहरते हो, किन्तु मैं उससे रहित हूँ।" कहकर इन गाथाओं को कहा—

१९७—सुसुखं वत! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो॥ १॥
१९८—सुसुखं वत! जीवाम आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा॥ २॥
१९९—सुसुखं वत! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका॥ ३॥

वैरियों में अवैरी हो, अहो! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं, वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं।

पीड़ित मनुष्यों में पीड़ा रहित हो, अहो! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; पीड़ित मनुष्यों के बीच पीड़ा रहित होकर हम विहार करते हैं।

आसक्त मनुष्यों में अनासक्त हो, अहो! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं, आसक्त मनुष्यों के बीच अनासक्त होकर हम विहार करते हैं।

हम अकिंचन सुखी हैं

(मार की कथा)

१५, २

एक दिन भगवान् पञ्चशाला नामक ब्राह्मणों के गाँव में भिक्षाटन के लिए गये। मार ने पहले ही ग्राम-वासियों में आवेश कर ऐसा किया कि भगवान्

को किसी ने कलछी मात्र भी भिक्षा न दी। जब भगवान् खाली पात्र गाँव से बाहर आने लगे, तब मार आया और कहा—"क्या श्रमण ! कुछ भिक्षा पाये हो ?"

"पापी ! क्या तूने ऐसा किया कि भिक्षा न मिले ?"

"तो भन्ते ! फिर प्रवेश करें।" मार ने यह सोचकर कहा कि यदि फिर गाँव में जायेंगे, तो सभी के शरीर में आवेश कर इनके आगे ताली बजाकर हँसूगा। उसी समय नगर की पाँच सौ कन्यायें स्नान करके नदी से लौटती हुई, भगवान् को देख वन्दना कर एक ओर खड़ी हो गईं। फिर मार ने भगवान् से कहा—"भन्ते ! भिक्षा न मिलने से आप को भूख सतायेगी।" शास्ता ने—"पापी ! आज हम कुछ नहीं पाकर भी आभास्वर लोक के ब्रह्माओं की भाँति प्रीति-सुख से ही बितायेंगे।" कह कर इस गाथा को कहा—

२००—सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चिनं।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥ ४ ॥

जिन हम लोगों के पास कुछ नहीं, अहो ! वह हम कितना सुख से जीवन बिता रहे हैं। हम आभास्वर के देवताओं की भाँति प्रीति भक्ष्य (=प्रीति ही भोजन है जिनका) होंगे।

जय-पराजय को छोड़ सुख से सोता है

(कोशलराज के पराजय की कथा)

१५, ३

कोशल नरेश प्रसेनजित् काशी के लिए अजातशत्रु से युद्ध करने में तीन बार हार गया। वह तीसरी बार सोचा—"मैं दुग्धमुख लड़के को भी हरा न सका, ऐसे मेरे जीने से क्या !" वह खाना पीना छोड़ कर बिछावन पर लेट रहा। भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कहा। भगवान् ने—"भिक्षुओ ! व्यक्ति जीतते हुए वैर को उत्पन्न करता है, किन्तु हारा हुआ दुःख के साथ सोता ही है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२०१—जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥ ५ ॥

विजय वैर को उत्पन्न करती है, पराजित (पुरुष) दुःख की नींद सोता है; (किन्तु राग आदि दोष जिसके) शान्त हैं, वह पुरुष जय और पराजय को छोड़ सुख की नींद सोता है।

निर्वाण से बढ़कर अन्य सुख नहीं

(किसी कुल कन्या की कथा)

१५, ४

श्रावस्ती की एक कुलकन्या का विवाह हुआ। उसके माँ-बाप विवाह के दिन भिक्षु संघ के साथ शास्ता को निमन्त्रित किये। भगवान् भिक्षु-संघ के साथ जाकर बिछे हुए आसन पर बैठे। कुल-कन्या भिक्षुओं के लिए पानी छानती हुई इधर-उधर विचार रही थी। उसका पति उसे देखकर नाना प्रकार के काम सम्बन्धी विचार करता हुआ रागाग्नि से जल रहा था। वह भगवान् तथा भिक्षु संघ की ओर ध्यान न देकर बधू को ही पकड़ना चाहता था। शास्ता ने उसकी इस प्रवृत्ति को जानकर ऐसा किया कि वह वधू को न देख सके।

जब यह बधू को नहीं देखा तब भगवान् की ओर देखता हुआ खड़ा हो गया। भगवान् ने उसे वैसे खड़ा होकर देखते हुए—"कुमार! रागाग्नि के समान दूसरा कोई अग्नि नहीं है, न द्वेष के समान मल, या पञ्चस्कन्ध को ढोने के दुःख के सदृश दुःख, अथवा निर्वाण सुख के समान सुख ही।" कह कर इस गाथा को कहा—

२०२—नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो कलि।
नत्थि खन्धसमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं॥ ६॥

राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान मल नहीं, (पञ्च—) स्कन्ध[1] के समान दुःख नहीं, निर्वाण (= शान्ति) से बढ़कर सुख नहीं।

१—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—यह पञ्चस्कन्ध है।

भूख सबसे बड़ा रोग है

(किसी उपासक की कथा)

१५, ५

एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आलवी नगर गये। आलवी नगर-वासियों ने शास्ता को भोजन के लिए आमन्त्रित किया।

उस दिन आलवी नगर का एक निर्धन उपासक भगवान् के आगमन को सुनकर धर्म-श्रवण के लिए मन किया, किन्तु प्रातः ही उसका एक बैल कहीं चला गया। वह बैल को खोजकर धर्म-श्रमण के लिए भगवान् के पास जाने का विचार कर सबेरे बिना खाये-पीये ही घर से बैल खोजने निकल पड़ा। बैल को खोजते हुए दोपहर हो गया। दोपहर में बैल को पा, लाकर अन्य बैलों में कर भगवान् के पास जा वन्दना कर एक ओर खड़ा हो गया। शास्ता ने सेवा-टहल करने वाले पुरुष से भोजन मँगा कर उसे दिलाया। वह उपासक वहीं बैठकर भर पेट भोजन किया। उसके भोजन कर लेने के बाद भगवान् ने उपदेश दिया। वह भगवान् के उपदेश को सुनकर स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त हुआ। भगवान् ने अनुमोदन कर आसन से उठ कर प्रस्थान किया। नगरवासी भी भगवान् को प्रणाम कर रुक गये।

भिक्षु शास्ता के साथ जाते हुए कहने लगे—"आवुसो! शास्ता के कार्य को देखो, आज वे एक पुरुष को देखते ही भोजन दिलवाये।" भगवान् ने उनकी बात सुन—"हाँ, भिक्षुओ! वह अत्यन्त भूखा था, प्रातः से ही बैल को खोजते हुए जंगल में विचरण किया। 'भूख से पीड़ित होने से धर्म को नहीं समझ सकता' अतः मैंने भोजन दिलाया। भिक्षुओ! भूख के रोग के समान दूसरा कोई रोग नहीं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२०३—जिघच्छा परमा रोगा, सङ्खारा परमा दुखा।
एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं ॥ ७ ॥

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, ऐसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

निरोगिता परम लाभ है

(प्रसेनजित कोशल की कथा)

१५, ६

प्रसेनजित कोशल एक द्रोण चावल का भात और उसके अनुसार व्यञ्जन खाता था। एक दिन जब वह भोजन के बाद भगवान् के पास उपदेश सुनने गया, तब एक ओर बैठ कर झँपने लगा। भगवान् ने—"महाराज! क्या बिना आराम किये ही आये हो?" पूछा।

"हाँ, भन्ते! भोजन के बाद से महादुःख हो रहा है।"

तब शास्ता ने एक गाथा को बताया, जिसे प्रसेनजित का भागिनेय सुदर्शन याद कर लिया। जिस समय प्रसेनजित भोजन करता था, उस समय सुदर्शन उस गाथा को सुनाता था। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में प्रसेनजित कम खाने लगा और उसमें स्फूर्ति तथा बल भी आ गया। वह एक दिन भगवान् के पास आ प्रणाम कर कहा—"भन्ते! अब मुझे शारीरिक सुख हो गया। वजिरा कुमारी के साथ सुदर्शन का विवाह कर दिया, इससे भी मुझे सुख ही हुआ। कुमराज-कालीन खोयी हुई मणि भी मिल गई—यह भी सुख की ही बात है। आप के श्रावकों के साथ विश्वास करने के लिए आप की ज्ञाति-कन्या को लाया हूँ—यह भी सुखदायक ही है।" भगवान् ने इसे सुन—"महाराज! निरोग होना परम लाभ है। सन्तोष के समान धन, विश्वास के समान ज्ञाति और निर्वाण के समान सुख अन्य नहीं है।" कहकर इस गाथा को कहा—

२०४—आरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाती निब्बानं परमं सुखं ॥ ८ ॥

निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

उपशम के रसपान से निडर होता है

(तिस्स स्थविर की कथा)

१५, ७

जब भगवान् वैशाली में विहार करते हुए—"भिक्षुओ ! आज से चार मास के बाद परिनिर्वृत होऊँगा।" कहे, तब शास्ता के पास रहने वाले सात सौ भिक्षुओं को भय उत्पन्न हो आया। अर्हत् भिक्षुओं को धर्म-संवेग हुआ। पृथक्जन् भिक्षु आँसू नहीं रोक सके। भिक्षु झुण्ड-झुण्ड हो "क्या करेंगे !" सोचते हुए विचरण करते थे।

एक तिस्स स्थविर नामक भिक्षु—"शास्ता चार मास के बाद परिनिर्वृत होंगे और मैं अभी अ-वीतराग हूँ, शास्ता के रहते हुए ही मुझे अर्हत्व पा लेना चाहिये" सोचकर चारों ईर्य्यापथों में अकेले ही विहरने लगे। भिक्षुओं से बातचीत नहीं करते थे। 'आवुस ! क्यों ऐसा कर रहे हो ?' पूछने पर भी नहीं बोलते थे। भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कहा। भगवान् ने तिस्स स्थविर को बुलवा कर वैसा करने का कारण पूछा। तिस्स स्थविर ने सब बताया। तब शास्ता ने—तिस्स स्थविर को साधुकार दे—"भिक्षुओ ! जो मुझ पर स्नेह रखता है, उसे तिस्स के समान ही होना चाहिये। गन्ध-माला आदि से पूजा करने वाले भी मेरी पूजा नहीं करते, धर्म के अनुसार आचरण करने वाले ही मुझे पूजते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२०५—पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥ ९ ॥

एकान्त-चिन्तन के रस तथा उपशम (=शान्ति) के रस को पीकर (पुरुष), निडर होता है और धर्म का प्रेमरस पान कर निष्पाप होता है।

आर्यों का दर्शन सुन्दर है

(शक्र देवराज की कथा)

१५, ८

आयु-संस्कार को त्यागने के पश्चात् वेलुवन ग्राम में विहार करते हुए भगवान् को रक्त-स्राव का रोग हुआ। उस समय भगवान् को रोगी जान देवराज शक्र तावतिंस भवन को छोड़कर जब तक भगवान् अच्छे नहीं हुए तब तक सेवा-टहल करता रहा। वह शास्ता के पेशाब-पाखाना के बर्तन को गन्ध से भरे बर्तन के समान सिर पर ले जाता था।

जब भगवान् अच्छे हो गये और शक्र चला गया, तब भिक्षुओं ने आपस में उसके कार्य की चर्चा की। भगवान् ने उसे सुन—"भिक्षुओ! जो शक्र मुझ पर स्नेह करता है, उसके लिये आश्चर्य नहीं। वह मेरे ही सहारे वृद्ध-शक्रत्व को त्याग कर तरुण शक्र हुआ। जिस समय वह मृत्यु से भयभीत इन्द्रशाल गुहा में आया था और मुझसे प्रश्न पूछा था, उसी समय वह तरुण-शक्र होने के साथ स्रोतापत्ति-फल को भी प्राप्त किया था। इस प्रकार मैं उसका बहुत उपकारक हूँ। भिक्षुओ! आर्यों का दर्शन भी सुखदायक है, उनके साथ एक स्थान पर रहना भी सुखकर है, किन्तु मूर्खों के साथ सब दुःख ही है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२०६—साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥१०॥

आर्यों का दर्शन सुन्दर है, उनके साथ निवास सदा सुखदायक होता है, मूढ़ों के दर्शन होने से मनुष्य सदा सुखी रहता है।

२०७—बालसंगतिचारी हि दीघमद्धानं सोचति।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेन सब्बदा।
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं'व समागमो ॥ ११ ॥

मूढ़ों की संगति में रहने वाला दीर्घकाल तक शोक करता है, मूढ़ों का सहवास शत्रु की तरह सदा दुःखदायक होता है। बन्धुओं के समागम की भाँति धीरों का सहवास सुखद होता है।

२०८—तस्माहि:—

धीरञ्च पञ्ञञ्च बहुस्सुतं च
धोरय्हसीलं वतान्तमरियं ।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं
भजेथ नक्खत्तपथं'व चन्दिमा ॥ १२ ॥

इसलिये—

वैसे धीर, ज्ञानी, बहुश्रुत, शीलवान्, व्रतसम्पन्न, आर्य तथा बुद्धिमान् पुरुष का अनुगमन उसी भाँति करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथ का।



१६—पियवग्गो

प्रिय न बनाओ

(तीन भिक्षुओं की कथा)

१६, १

श्रावस्ती के एक कुल में माँ-बाप को इकलौता पुत्र था। वह एक दिन घर में निमंत्रित भिक्षुओं के उपदेश को सुन प्रव्रजित होने के लिए माँ-बाप से आज्ञा माँगा, किन्तु वे आज्ञा नहीं दिये, तब वह एक दिन पाखाना होने के बहाने घर से भाग कर विहार में जा भिक्षुओं के पास प्रव्रजित हो गया। उसका पिता पुत्र को घर में न देख खोजता हुआ विहार में गया तथा उसे प्रव्रजित हुआ देख, रो-गाकर स्वयं भी प्रव्रजित हो गया। जब उसकी पत्नी को इनके प्रव्रजित होने की बात ज्ञात हुई, तब वह भी भिक्षुणियों के पास जाकर प्रव्रजित हो गई।

वे तीनों प्रव्रजित होकर श्रमण-धर्म नहीं करते थे। रात में भी, दिन में भी एक पास बैठकर गप्प मारा करते थे। भिक्षु और भिक्षुणियाँ उनसे परेशान हो गई थीं। एक दिन भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कहा। भगवान् ने—"क्या सचमुच तुम लोग ऐसा करते हो ?" पूछकर—"सचमुच भन्ते! कहने पर—"क्यों ऐसा कहते हो, यह प्रव्रजितों का योग नहीं है।" कहा।

"भन्ते ! हम लोग अलग नहीं हो सकते हैं।"

"प्रव्रजित होने के समय से ऐसा कहना युक्त नहीं है, प्रियों का अ-दर्शन और अप्रियों का दर्शन दुःखकर है, इसलिए प्राणियों या वस्तुओं में से किसी को प्रिय या अप्रिय नहीं करना चाहिये। कह कर भगवान् ने इन गाथाओं को कहा—

२०९—अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजनं।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेतत्तानुयोगिनं ॥ १ ॥

बुरे कर्म में लगा हुआ, अच्छे कर्म में न लगने वाला तथा परामर्थ को छोड़ संसार के आकर्षण में लगने वाला पुरुष उस पुरुष की स्पृहा करे, जो आत्म-उन्नति में लग्न है।

२१०—मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं।
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥ २ ॥

प्रियों का संग न करे और न कभी अप्रियों का। प्रियों का न देखना दुःखद है और अप्रियों का देखना।

२११—तस्मा पियं न कयिराथ पियापायो हि पापको।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥ ३ ॥

इसलिये प्रिय न बनावे। प्रिय से वियोग बुरा होता है। उन्हें कोई बन्धन नहीं है जिन्हें न तो प्रिय है न अप्रिय।

प्रिय से शोक और भय होते हैं

(किसी कुटुम्बी की कथा)

१६, २

श्रावस्ती के एक कुटुम्बिक का पुत्र मर गया। वह पुत्र की मृत्यु से बड़ा दुःखी हुआ। नित्य प्रति श्मशान में जाकर रोता था। पुत्र-शोक से हृदय को नहीं सम्भाल सकता था। एक दिन भगवान् दोपहर के भोजन के पश्चात् एक भिक्षु के साथ उसके घर गये। कुटुम्बिक ने आदरपूर्वक भगवान् को घर में बिछे आसन पर बैठा कर प्रणाम किया। शास्ता ने "उपासक! क्यों शोक कर रहे हो?" पूछा। "भन्ते! पुत्र-शोक से शोकित हो रहा हूँ।"

तब भगवान् ने उरगजातक को कह कर—"उपासक! मेरा प्रिय पुत्र मर गया—ऐसी चिन्ता न करो। मरण-स्वभाव वाला ही मरा है, नष्ट होने के स्वभाव वाला ही नष्ट हुआ है। उपासक! प्रिय के कारण ही शोक या भय उत्पन्न होता है।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२१२—पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ४॥

प्रिय से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है, प्रिय से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

प्रेम से शोक और भय होते हैं

(विशाखा की कथा)

१६, ३

विशाखा महा-उपासिका की नातिनी दन्तकुमारी मर गई। वह उसके शोक से व्याकुल भगवान् के पास गई। भगवान् ने पूछा—

"क्यों विशाखे ! तुम दुःखी, दुर्मना, रोती हुई आई है ?"

"भन्ते ! व्रत-सम्पन्ना मेरी नातिनी दन्तकुमारी अब उठ गई !"

"विशाखे ! श्रावस्ती में कितने व्यक्ति हैं ?"

"भन्ते ! आप ही ने सात करोड़ बतलाया है।"

"क्या विशाखे ! यदि इतने लोग तुझे दन्तकुमारी के समान हों, तो उन्हें चाहेगी ?"

"हाँ, भन्ते !"

"कितने लोग प्रतिदिन श्रावस्ती में मरते हैं ?"

"बहुत से भन्ते !"

"ऐसा होने पर क्या तुम रातों दिन रोती-चिल्लाती हुई घूमेगी न ?"

"भन्ते ? बस करें, अब मैं समझ गई।"

"इसलिए विशाखे ! मत शोक करो, शोक या भय प्रेम से ही उत्पन्न होते हैं। भगवान् ने कह कर इस गाथा को कहा—

२१३—पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ५॥

प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है, प्रेम से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

रति से शोक और भय होते हैं

(लिच्छवियों की कथा)

१६, ४

एक दिन वैशाली के लिच्छवी खूब सज-धज कर जा रहे थे। भगवान् ने उन्हें भिक्षुओं को दिखलाकर कहा—"भिक्षुओ ! देखो लिच्छवियों को, जिन्होंने तावतिंस भवन के देवताओं को नहीं देखा है, वे इन्हें देखें।"

लिच्छवी उद्यान में जाकर एक गणिका के लिए परस्पर मार-पीट किये, जिसमें कितने ही लिच्छवी लोहू-लुहान हो गये और उन्हें चारपाई पर टाँग कर नगर में लाये। इसे देख भिक्षुओं ने भगवान् से कहा। भगवान् ने भिक्षुओ ! शोक या भय रति के ही कारण उत्पन्न होता है।" कहकर इस गाथा को कहा—

२१४—रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ६ ॥

रति (= राग) से शोक उत्पन्न होता है, रति से भय उत्पन्न होता है, रति से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

काम से शोक और भय होते हैं

(अनित्थिगन्ध कुमार का कथा)

१६, ७

ब्रह्मलोक से च्युत होकर एक सत्व श्रावस्ती के महाधनवान् कुल में उत्पन्न हुआ। वह ब्रह्मलोक से आने के कारण स्त्री-गन्ध नहीं सह सकता था। उस वस्त्र में लेकर किसी प्रकार माँ का दूध पिलाते थे। चूँकि वह स्त्री-गन्ध नहीं सह सकता था, अतः 'अनित्थि-कुमार' उसका नाम रखा गया।

जब वह सयाना हुआ तब माँ-बाप उसका विवाह करना चाहे, किन्तु वह उनके बार-बार कहने पर भी इन्कार कर दिया। पीछे एक दिन माँ ने अकेले आकर—"पुत्र ! यदि विवाह नहीं करोगे, तो कुल कैसे चलेगा ?" कहा। अहित्थिगन्ध कुमार ने माँ की बात सुनकर सोनारों को बुला, एक सुवर्ण द्वारा स्त्री की प्रतिमा बनवाया और उसे माँ-बाप को देकर कहा कि यदि ऐसी कन्या

मिलेगी, तो विवाह करूँगा। माँ ने ब्राह्मणों को बुला उस सुवर्ण-मूर्ति को दे दिशाओं में कन्या-पर्येषण के लिए भेजा।

वे घूमते हुए सागल नगर पहुँचे। वहाँ के एक सेठ की वैसी सुन्दर कन्या थी। उन्हें उसकी धायी द्वारा पता लगा। वे कन्या के माँ-बाप के पास जाकर विवाह के लिए दिन पक्का करके लौट आये। इस समाचार को जब अनित्थिगन्ध-कुमार पाया तब बहुत प्रसन्न हुआ और मनही-मन सोचने लगा कि कैसी भाग्यवती कन्या होगी, जो सुवर्ण-प्रतिमा-सी है! उसके माँ-बाप ने बड़ी धूमधाम के साथ सागल से कन्या लाने का प्रबन्ध किया। किन्तु श्रावस्ती से सागल दूर पड़ता है, वहाँ से रथ से आती हुई वह परम सुन्दरी कन्या मार्ग में ही मर गई। इधर अनित्थिगन्ध कुमार जब उसकी मृत्यु का समाचार पाया तब बहुत दुःखित हुआ। "हाय! ऐसी सुन्दरी को न पा सका" कहकर रोने लगा। वह खाना-पीना छोड़कर शोक से सन्तप्त होने लगा।

एक दिन उसके माँ-बाप ने भगवान् को भोजन के लिए निमंत्रित किया। भगवान् ने भोजनोपरान्त अनित्थिगन्ध को बुलाकर—"कुमार! क्यों दुःखी हो?" पूछा।

"भन्ते! ऐसी परम सुन्दरी कन्या को नहीं पा सका।"

"तो जानते हो कुमार! क्यों तुझे यह शोक उत्पन्न हुआ?"

"नहीं भन्ते!"

"कुमार! काम के कारण तुझे महा शोक उत्पन्न हुआ है। शोक या भय काम के कारण ही उत्पन्न होता है।" कहकर भगवान् ने इस गाथा को कहा—

२१५—कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं॥ ७॥

काम से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है, काम से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से?

तृष्णा से शोक और भय होते हैं

(किसी ब्राह्मण की कथा)

१६, ६

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण नदी के किनारे धान बोया था। वह भगवान् से भी कहा था कि "जब धान होगा, तब सबसे पहले आप को खिलाऊँगा।
जिस समय धान तैयार हुआ, नदी में बाढ़ आई और सारी फसल बह गई। वह ब्राह्मण इससे बहुत दुःखी हुआ, खाना-पीना छोड़ कर सो रहा। प्रातः भगवान् महाकरुणा समापत्ति में उसे देख, भोजनोपरान्त उस ब्राह्मण के घर गये और उसे बुला कर पूछे—"ब्राह्मण ! क्यों तुम्हारी यह दशा है ?

"हे गौतम ! वह मेरी सारी फसल बह गई।"

"ब्राह्मण ! क्या जानते हो, किस कारण से तुझे यह शोक उत्पन्न हुआ है ?"

"नहीं हे गौतम !"

"ब्राह्मण ! यह शोक तुझे तृष्णा से उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते हुए शोक या भय तृष्णा से ही उत्पन्न होते हैं।" भगवान् ने यह कह कर इस गाथा को कहा—

२१६—तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥ ८ ॥

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है, तृष्णा से मुक्त को शोक नहीं, फिर भय कहाँ से ?

धार्मिक को लोग प्रेम करते हैं

(पाँच सौ बालकों की कथा)

१६, ७

भगवान् के राजगृह के पास वेलुवन में विहार करते समय एक दिन पाँच सौ बालक टोकरियों में पूवे लिवा कर उद्यान में खेलने जा रहे थे। वह उत्सव का दिन था। वे भगवान् और भिक्षु संघ को भिक्षाटन के लिए जाते देख कर वन्दना कर चल दिये, किसी ने भी भगवान् या भिक्षु संघ को पूवों से निमंत्रित

नहीं किया। भगवान् थोड़ी दूर जाकर एक पेड़ के नीचे भिक्षु-संघ के साथ यह कह कर बैठ गये—"आज पूवे खाकर चलेंगे।"

वे बालक सबसे पीछे आते हुए महाकाश्यप स्थविर को देखकर पञ्चाङ्ग प्रणाम कर सब पूवे दान कर दिये। महाकाश्यप ने उन्हें भगवान् के पास चलकर देने को कहा। वे भगवान् के पास जाकर भगवान् सहित सब भिक्षु संघ को अपने हाथों परस कर खिलाये और पानी दिये।

भिक्षुओं ने कहा—"भन्ते! बालकों ने मुँह देखकर दान दिया है। वे पहले किसी को थोड़ा भी न देकर महाकाश्यप के साथ ढोकरी सहित ही आये हैं।"

"भगवान् ने—"भिक्षुओ! मेरे पुत्र महाकाश्यप के समान भिक्षु देवता और मनुष्यों को प्रिय होता है। वे उसकी चारों प्रत्ययों से पूजा करते ही हैं।" कहकर इस गाथा को कहा—

२१७—सील दस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं॥ ९॥

जो शील और दर्शन (=सम्यक् दृष्टि) से सम्पन्न, धर्म में स्थित, सत्यवादी और अपने कामों को करने वाला है उस (पुरुष) को लोग प्रेम करते हैं।

ऊर्ध्व-स्रोत कहा जाता है

(अनागामी स्थविर की कथा)

१६, ८

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक अनागामी स्थविर मर कर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए। मरते समय जब उनके शिष्यों ने पूछा—क्या भन्ते! कुछ विशेषता प्राप्त हुई है!" "अनागामी तो गृहस्थ भी होते हैं।" सोचकर लज्जित हो उन्होंने नहीं कुछ कहा। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य रोते हुए भगवान् के पास जाकर उनकी गति पूछे। भगवान् ने अनागामी स्थविर के चित्त की प्रवृत्ति को बतला—"भिक्षुओ! मत चिन्ता करो वह मरकर शुद्धावास में उत्पन्न हुआ है। भिक्षुओ! देखते हो तुम्हारा उपाध्याय कामों से रहित चित्तवाला हो गया।" कह कर इस गाथा को कहा—

२१८—छन्दजातो अनक्खातो मनसा च फुटो सिया।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धसोतो'ति वुच्चति ॥१०॥

जो निर्वाण (= अकथ्य) का अभिलाषी है, उसमें जिसका मन लगा है, कामों में जिसका चित्त बद्ध नहीं, वह ऊर्ध्वस्रोत कहा जाता है।

पुण्य स्वागत करते हैं

(नन्दिय की कथा)

१६, ९

वाराणसी में नन्दिय नामक अत्यन्त श्रद्धालु एक श्रेष्ठी-पुत्र था। वह भिक्षु संघ को दान देकर ऋषिपतन मृगदाय में एक विहार बनवा कर भिक्षु-संघ के साथ शास्ता को दान दिया। दान देने के क्षण ही तावतिंस-भवन में एक बारह योजन में विस्तृत सौ योजन ऊँचा, सप्त रत्नमय, स्त्री गण से समलंकृत दिव्य प्रासाद उत्पन्न हुआ।

एक दिन महामौद्गल्यायन स्थविर देवलोक में विचरण करते हुए उस प्रासाद को देखकर देवताओं से पूछे। उसी समय अप्सराएँ भी प्रासाद से उतर कर कहीं—"भन्ते! हम लोग नन्दिय की सेविका होगी किन्तु उसके बिना अच्छा नहीं लगता है, उसे शीघ्र आने के लिए कहिये।"

महामौद्गल्यायन स्थविर भगवान् के पास आकर पूछे—"क्या भन्ते! मनुष्य लोक में रहते हुए ही पुण्यात्माओं की सम्पत्ति देवलोक में उत्पन्न होती है?" भगवान् ने—"मौद्गल्यायन! तुम स्वयं देखकर हमें क्यों पूछ रहे हो? मौद्गल्यायन! जैसे बहुत दिनों के बाद प्रवास से आये हुए पुत्र या पति को देखकर सभी "पुत्र आया, पति आया" आदि कहकर स्वागत करते हैं, वैसे ही पुण्यआत्मा स्त्री या पुरुष के इस लोक को त्याग कर परलोक में जाने पर अगवानी करके देवता अभिनन्दन करते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२१९—चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥ ११ ॥

२२०—तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मा लोका परं गतं ।
पुञ्ञानि पतिगण्हन्ति पियं ञातीव आगतं ॥ १२ ॥

बहुत दिनों तक विदेश में रहने के बाद दूर से सकुशल घर लौटे पुरुष को जाति-भाई, मित्र और हितैषी स्वागत करते हैं।

वैसे ही इस लोक से परलोक गये पुण्यात्मा पुरुष को उसके पुण्य अपने सम्बन्धी के समान स्वागत करते हैं।

१७—कोधवग्गो

क्रोध को छोड़े

(रोहिणी की कथा)

१७, १

एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विचरण करते हुए कपिलवस्तु गये। उनके आगमन को सुनकर सभी लोग आकर प्रणाम किये; किन्तु आयुष्मान् अनुरुद्ध की बहिन रोहिणी नहीं आई। उन्होंने उसे बुलवाया, किन्तु छवि-रोग होने के कारण नहीं आना चाही। पीछे स्थविर के सन्देश भेजने पर मुँह ढँक कर आई। स्थविर ने उनके न आने का कारण पूछ उसे आसनशाला बनवा कर भिक्षु संघ को दान देने को कहा। रोहिणी स्थविर की बात को स्वीकार कर अपने दस हजार के मूल्यवान् आभूषणों को बेचकर आसन-शाला बनवाई। आसन-शाला बनवाते समय ही उसका छवि-रोग अच्छा होने लगा।

आसन-शाला के बन जाने पर वह बुद्ध-प्रमुख भिक्षु संघ को भोजन दान दी, किन्तु भगवान् के सामने नहीं आई। तब भगवान् ने उसे बुलवा कर पूछा—"क्यों नहीं आई ?"

"भन्ते ! मेरे शरीर में छवि-रोग उत्पन्न हो गया है, उसी से लज्जित होकर नहीं आई।"

"जानती हो यह किस कारण हुआ है !"

"नहीं भन्ते।"

"तेरे क्रोध के कारण यह उत्पन्न हुआ है। पहले उसने राजमहिषी होकर एक नर्तकी को क्रोध से पीड़ित किया था, यह उसीका फल है।" भगवान् ने पूर्व जन्म की बात को बतला—"रोहिणी ! यह कर्म तेरा ही किया हुआ है, अल्पमात्र भी क्रोध या ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये।" कहकर इस गाथा को कहा—

२२१—कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नाम-रूपस्मिं असज्जमानं अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ॥

क्रोध को छोड़े, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (= बन्धनों से पार हो जाये, ऐसे नाम-रूप में आसक्त न होने वाले तथा परिग्रह रहित को दुःख सन्ताप नहीं देते ।

सच्चा सारथी

(किसी भिक्षु की कथा)

१७, २

आलवी का एक भिक्षु कुटी बनाने के लिए एक पेड़ काटना शुरू किया । उस पेड़ पर पुत्र सहित एक देव-कन्या रहती थी । वह भिक्षु के पास आकर कही—"भन्ते ! इस पेड़ को न काटें, मेरा विमान न नष्ट करें ।" किन्तु भिक्षु नहीं माना । देव कन्या ने अपने पुत्र को पेड़ की शाखा पर रख दिया, ताकि उसे भी देखकर भिक्षु पेड़ नहीं काटेगा । भिक्षु उठाई हुई कुल्हाड़ी को नहीं रोक सका और उससे देव-कन्या के पुत्र की बाँह कट गई । देव-कन्या को उसे देख महान् दुःख हुआ । वह उस भिक्षु को जान से मार डालने को हाथ उठाई, किन्तु फिर अपनी निन्दा होने के डर से उसे न मार रोती हुई भगवान् के पास गई और वन्दना कर एक ओर खड़ी हो गई । भगवान् ने उसके रोने का कारण पूछा । वह सारी बात कह सुनाई । तब भगवान् ने—"साधु ! साधु ! देवते तूने बहुत अच्छा किया, जो कि चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भाँति रोक लिया ।" कहकर इस गाथा को कहा—

२२२—यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं'व धारये ।
तमहं सारथिं ब्रूमि, रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥ २ ॥

जो चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भाँति रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं ।

अक्रोध से क्रोध को जीते
(उत्तरा की कथा)
१७, ३

राजगृह के पूर्ण श्रेष्ठी को उत्तरा नाम की एक कन्या थी। उसका विवाह राजगृह में ही दूसरे श्रेष्ठी के पुत्र से हुआ। उत्तरा परम बुद्धभक्तिनी, श्रद्धालु और दान-शीला थी, किन्तु श्रेष्ठी-पुत्र अश्रद्धालु तथा दान-पराङ्मुख था। जब से उत्तरा पति-गृह गई, न तो भिक्षु-संघ को दान दे सकी और न धर्म श्रवण ही कर सकी। वह पूर्ण श्रेष्ठी के पास सन्देश भेजी—"मैं जब से यहाँ आई, बन्धनागार में रहने की भाँति पड़ी हूँ, न दान ही दे सकती हूँ, और न तथागत का दर्शन ही कर सकती हूँ, इससे तो अच्छा था कि आप हमें दासी बना कर ही घर से बाहर कर दिये होते।" पूर्ण श्रेष्ठी को यह सन्देश सुन कर खेद हुआ। वह उत्तरा के पास दस हजार कार्षापण भेजा और कहलाया कि इस नगर की सिरिमा नामक गणिका प्रति दिन हजार कार्षापण लेती है। इन कार्षापणों को उसे दे, अपने स्वामी की सेवा करने के लिये ठीक करके पन्द्रह दिन पुण्य कर्म करो। उत्तरा ने वैसा ही किया।

पन्द्रहवें दिन महापवारण थी। अतः उत्तरा एक दिन पहले से ही भिक्षु-संघ के दान का प्रबन्ध करा रही थी। अत्यन्त परिश्रम करने से उसके शरीर से पसीना चू रहा था, वह क्लान्त-सी हो गई थी। ऊपरी प्रासाद के बँगले से श्रेष्ठी-पुत्र उसकी इस दशा को देख मन में उसे "अत्यन्त मूढ़ा है" कह कर हँसा। उसे हँसते हुए देख सिरिमा अपने को केवल एक दिन और का मेहमान न समझकर सोची—"जान पड़ता है श्रेष्ठी-पुत्र का उत्तरा के साथ भी मित्रता है, इसे पीड़ित करूँगी।" वह नीचे आई और खौलते हुए घी को कछली में ले उत्तरा के शरीर पर डालने गई। उत्तरा उस समय उसके प्रति मैत्री चित्त करके खड़ी हो गई। सिरिमा-द्वारा डाला हुआ घी शीतल जल-सा जान पड़ा। सिरिमा पुनः जब घी लेकर उसके ऊपर डालने चली, तब तक दासियों ने देखा और सिरिमा को पकड़ कर खूब मारा, किन्तु उत्तरा ने उन्हें रोक कर उसके शरीर में तेल से मालिश करा के स्नान करायी। अब सिरिमा को

अपनी गलती ज्ञात हुई। वह रोती हुई क्षमा के लिए उसके पैरों पर गिर पड़ी। उत्तरा ने भगवान् से क्षमा माँगने को कहा।

दूसरे दिन जब भगवान् आये तब भोजनोपरान्त सिरिमा उनके युगल पाद पंकजों पर गिर पड़ी और रोती हुई सब सुना दी। भगवान् ने उत्तरा से भी पूछ—"साधु! साधु!! उत्तरे, ऐसे ही क्रोध को जीतना चाहिये। क्रोध को अक्रोध (=मैत्री) से, आक्रोशन को अनाक्रोशन से, कंजूस को दान से, और मृषवादी को सत्यवचन से जीतना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

२२३—अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं॥ ३॥

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता (=भलाई) से जीते, कंजूस को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

तीन से स्वर्ग

(महामौद्गल्यायन स्थविर के प्रश्न की कथा)

१७, ४

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन महामौद्गल्यायन स्थविर देवलोक में चारिका के लिए गये और देवताओं के आकर प्रणाम करने पर उनके वहाँ उत्पन्न होने वाले किये पुण्य-कर्म को पूछा। किसी ने केवल सत्य बोलना मात्र बतलाया, किसी ने क्रोध न करने को बतलाया और किसी ने ऊख आदि के दिये दान मात्र को बतलाया। महामौद्गल्यायन स्थविर ने देवलोक से आ भगवान् को प्रणाम कर पूछा—"क्या भन्ते! सत्य मात्र बोलने, क्रोध मात्र न करने और ऊख आदि मात्र दान देने से कोई स्वर्ग पा सकता है?"

"मौद्गल्यायन! क्यों ऐसा पूछ रहे हो? देवताओं द्वारा तूने नहीं जाना? मौद्गल्यायन! सत्य मात्र बोलकर, क्रोध करने को छोड़कर, और अल्पमात्र दान देकर भी लोग देवलोक जाते ही हैं।" भगवान् ने कह कर इस गाथा को कहा—

२२४—सच्चं भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥ ४ ॥

सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगने पर दे, इन तीन बातों से (पुरुष) देवताओं के पास जाता है।

अहिंसक अच्युत-पद को पाते हैं

(साकेत के ब्राह्मण की कथा)

१७, ५

भगवान् साकेत में रहते समय एक दिन भिक्षु संघ के साथ भिक्षाटन के लिए निकले। साकेत वासी एक वृद्ध ब्राह्मण भगवान् को देख पास आ पैरों पर गिर कर रोता हुआ कहा—पुत्र! वृद्धावस्था में पिता का पालन करना चाहिये, किन्तु तुम तो अपना दर्शन भी नहीं देते हो।" वह भगवान् को बुलाकर अपने घर ले गया। घर जाने पर ब्राह्मणी ने भी वैसा ही कहा। उन दोनों ने प्रेम के साथ भिक्षु-संघ के साथ भगवान् को भोजन कराया और प्रार्थना किया कि शास्ता प्रतिदिन उन्हीं के घर भोजन करें।

भिक्षुओं में चर्चा चली—"यह ब्राह्मण जानता है कि शास्ता के पिता महाराज शुद्धोदन हैं, किन्तु पुत्र कहता है, शास्ता भी बिना कुछ कहे ही स्वीकार करते हैं, वैसे ही ब्राह्मणी भी पुत्र कहकर पुकारती है और शास्ता स्वीकार करते हैं।" भगवान् ने उनकी बात सुन—"भिक्षुओ! ये दोनों पाँच सौ जन्मों तक मेरे माता-पिता थे, पाँच सौ जन्मों तक महा माता, महा पिता थे और पाँच सौ जन्मों तक छोटी माँ तथा छोटे पिता थे। ये अपने पुत्र को ही पुत्र कहते हैं।" कहा।

साकेत में रहते समय भगवान् प्रायः उन्हीं के यहाँ भोजन करते थे। वे दोनों भी भगवान् के उपदेश को सुनकर अनागामी हो गये थे। थोड़े दिनों के पश्चात् वे परिनिर्वृत हो गये। नगरवासी उन्हें एक ही चिता पर ले जाकर जलाये। श्मशान में भगवान् भी भिक्षु-संघ के साथ गये।

एक दिन भिक्षुओं ने भगवान् से उनकी गति पूछी। भगवान् ने-"भिक्षुओ! ऐसे अशैक्ष्य मुनियों की गति नहीं होती, इस प्रकार के लोग अच्युत अमृत महा निर्वाण को ही प्राप्त करते हैं। कह कर इस गाथा को कहा—

२२५—अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥ ५ ॥

जो मनुष्य हिंसा से रहित, नित्य अपने शरीर में संयत हैं, वे उस अच्युत पद को प्राप्त करते हैं जिसे प्राप्त कर वे शोक नहीं करते।

जागरणशील के श्रावक नष्ट हो जाते हैं

(पूर्णा की कथा)

१७, ६

राजगृह के श्रेष्ठी की पूर्णा नामक एक दासी थी। एक रात वह धान कूटती हुई पसीना से भींगकर बाहर आ खड़ी थी। उस समय काफी रात बीत चुकी थी। भिक्षु भगवान् के पास से उपदेश सुनकर गृद्धकूट पर्वत से उतर कर इधर-उधर जा रहे थे। आयुष्मान दब्ब मल्लपुत्र अपनी अंगुली के प्रकाश से उन्हें ले जा रहे थे। पूर्णा उस प्रकाश में विचरण करते हुए भिक्षुओं को देख सोची—"मैं तो धान कूटती हुई अपने दुःख से इतनी रात तक जगी हूँ, किन्तु ये भिक्षु लोग अभी तक क्या कर हैं? जान पड़ता है कोई भिक्षु बीमार है या किसी को साँप ने डँस लिया है।"

वह प्रातः उठकर आग पर सेंककर कुछ रोटी तैयार की और पानी के लिए घाट की ओर चली। भगवान् भी प्रातः भिक्षाटन के लिए उसी मार्ग से आ रहे थे। पूर्णा भगवान् को देख वह रोटी दान कर दी। भगवान् वहीं पर बैठकर रोटी खाये। आनन्द स्थविर ने पानी लाकर दिया। भोजनोपरान्त "पूर्णे! क्यों तू मेरे श्रावकों की निन्दा करती है?" पूछे—

"भन्ते! मैं निन्दा तो नहीं करती।"

"रात तूने क्या सोचा?"

तब पूर्णा ने सारी बात कह सुनायी। शास्ता ने—"पूर्णे तू अपने दुःख से नहीं सोती, किन्तु मेरे श्रावक सदा जागरणशील हो नहीं सोते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२२६—सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं।
निब्बानं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ६ ॥

सदा जागरणशील हो दिन-रात योगाभ्यास में लगे रहने वाले तथा निर्वाण के उद्देश्य वाले (पुरुषों) के आश्रव नष्ट हो जाते हैं।

लोक में अनिन्दित कोई नहीं

(अतुल उपासक की कथा)

१७, ७

श्रावस्ती का रहने वाला अतुल नामक एक उपासक एक दिन पाँच सौ उपासकों के साथ जेतवन धर्म-श्रमण करने के लिए गया। वह क्रमशः रेवत स्थविर, सारिपुत्र स्थविर और आयुष्मान् आनन्द के पास जा, भगवान् के पास गया और कहा—"भन्ते! मैं इतने उपासकों के साथ धर्म-श्रवण करने आया था, किन्तु रेवत स्थविर कुछ बोले ही नहीं चुपचाप बैठे रहे, सारिपुत्र स्थविर ने अभिधर्म का उपदेश दिया, जो समझ में ही नहीं आया तथा आनन्द स्थविर ने बहुत थोड़ा कहा, इसलिए मैं क्रुद्ध होकर उन लोगों के पास से चला आया हूँ।" भगवान् ने उपासक की बात सुन—"अतुल! यह प्राचीन समय से होता आ रहा है कि मौन रहने वाले की भी निन्दा होती है, बहुभाषी की भी निन्दा होती है, कम बोलने वाले की भी निन्दा होती है। संसार में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसकी निन्दा ही निन्दा या प्रशंसा ही प्रशंसा हो। कोई-कोई राजा की निन्दा करते हैं और कोई-कोई प्रशंसा। वैसे ही पृथ्वी, सूर्य्य और चन्द्र की भी। मेरी भी कोई-कोई निन्दा और कोई-कोई प्रशंसा करते हैं। मूर्खों की निन्दा या प्रशंसा अगण्य है, किन्तु मेधावी पण्डित द्वारा निन्दित ही निन्दित होता है और प्रशंसित प्रशंसित होता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२२७—पोराणमेतं अतुल ! नेतं अज्जनामिव ।
निन्दति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ।
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ॥७॥

२२८—न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्तं वा पसंसितो ॥ ८ ॥

हे अतुल ! यह पुरानी बात है, आज की नहीं—लोग चुप बैठे हुए की निन्दा करते हैं और बहुत बोलने वाले की भी, मितभाषी की भी निन्दा करते हैं, लोक में अ-निन्दित कोई नहीं है बिल्कुल ही निन्दित या बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न था, न होगा और न आजकल है ।

२२९—यञ्चे विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।
अच्छिद्दवुत्तिं मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं ॥ ९ ॥

२३०—नेक्खं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति ।
देवापि नं पसंसन्ति ब्रह्मनापि पसंसितो ॥ १० ॥

विज्ञ लोग जानकर जिस निर्दोष आचरण वाले मेधावी, प्रज्ञा और शील से युक्त पुरुष की दिन-प्रतिदिन प्रशंसा करते हैं, उसकी जाम्बूनद-सुवर्ण की अशर्फी के समान कौन निन्दा कर सकता है ? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं और ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है ।

काय, वाणी, मन से संयत रहे

(छःवर्गीय भिक्षुओं की कथा)

१७, ८

भगवान् के वेणुवन में विहरते समय एक दिन छःवर्गीय भिक्षु खड़ाऊँ पर चढ़कर 'खट-खट' शब्द करते टहल रहे थे । शास्ता ने 'खट-खट' शब्द को सुनकर आनन्द स्थविर से पूछ, शिक्षा-पद प्रज्ञप्त किया और भिक्षुओं को उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

२३१–कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया ।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ॥ ११ ॥

कायिक दुराचरण से बचे, वाणी से संयत रहे। वाणी के दुराचार को छोड़, वाणी के सदाचार का आचरण करे।

२३२–वची पकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया ।
वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ॥ १२ ॥

वाणी के दुराचार से बचे, वाणी से संयत रहे। वाणी के दुराचार को छोड़; वाणी के सदाचार का आचरण करे।

२३३–मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया ।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे ॥ १३ ॥

मानसिक दुराचार से बचे, मन से संयत रहे। मानसिक दुराचार को छोड़, मानसिक सदाचार का आचरण करे।

२३४–कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवता ।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवता ॥ १४ ॥

जो धीर पुरुष कार्य से संयत, वाणी से संयत और मन से संयत रहते हैं, वे ही पूर्ण रूप से संयत हैं।



१८—मलवग्गो

अपने लिये द्वीप बना

(गोघातक-पुत्र की कथा)

१८, १

श्रावस्ती के एक गोघातक (=कसाई) का पुत्र मरणासन्न अपने पिता के महादुःख को देखकर घरबार छोड़ तक्षशिला चला गया और वहीं सोनार का काम सीखकर रहने लगा। उसका विवाह भी उसके आचार्य की ही कन्या से हुआ। धीरे-धीरे उसे अनेक पुत्र हुए और वह वृद्ध भी हो चला।

कुछ दिनों के बाद उसके पुत्र श्रावस्ती चले आये और अपने पिता को भी बुलाये। पुत्रों ने अपने पिता के पुण्य के लिये भिक्षु-संघ के साथ भगवान् को निमन्त्रित करके दान दिया। भोजनोपरान्त पुत्रों ने कहा—'भन्ते! इस भोजन को हम लोगों ने पिता के जीवन के लिए दिया है। पिता के लिए अनुमोदन कीजिये।" तब शास्ता ने उसे आमन्त्रित करके—"उपासक! तू बूढ़े हो, तेरा पीले पत्ते के समान शरीर पक गया है, तुझे परलोक जाने के लिए पुण्य-पाथेय नहीं है, अपनी प्रतिष्ठा कर, पण्डित हो, मत मूर्ख बन।" कह कर अनुमोदन करते हुए इन गाथाओं को कहा—

२३५–पण्डुपलासो'व दानिसि, यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता।
उय्योगमुखे त्त तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥१॥

२३६–सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डिता भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिब्बं अरियभूमि मेहिसि ॥२॥

तू इस समय पीले पत्ते के समान है, यमदूत तेरे पास आ खड़े हैं, तू प्रणाय के लिए तैयार है और तेरे पास पाथेय कुछ नहीं है। सो तू अपने लिए द्वीप (=रक्षा-स्थान) बना, उद्योग कर, पंडित बन, मल धो डाल, दोष रहित बन आर्यों के दिव्य पद को पायेगा।

[भगवान् के इस उपदेश को सुनकर गोघातक-पुत्र स्रोतापत्ति-फल को पा लिया। पुनः दूसरे दिन भी उसके पुत्रों ने भिक्षु-संघ के साथ शास्ता को भोजन दान किया और अपने पिता के लिए अनुमोदन करने को कहा। शास्ता ने उसका अनुमोदन करते हुए इन दो गाथाओं को कहा—]

२३७—उपनीतवयो च दानिसि सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ॥३॥

२३८—सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥४॥

तेरी आयु समाप्त हो गई, यम के पास पहुँच चुका, तेरा निवास-स्थान भी नहीं है, (यात्रा के) मध्य के लिये तेरे पास पाथेय भी नहीं। सो तू अपने लिए द्वीप बना, उद्योग कर, पण्डित बन, मल धो डाल, दोष रहित बन, आर्यों के दिव्य पद को पायेगा।

अपने मल को क्रमशः दूर करे

(किसी ब्राह्मण की कथा)

१८, २

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण एक दिन भिक्षाटन जाने वाले भिक्षुओं को चीवर-पारुपन करने के स्थान पर देखते हुए खड़ा था। जहाँ भिक्षु चीवर-पारुपन करते थे, वहाँ बड़ी-बड़ी घास थी, जिस पर ओस की बूँदें पड़ी हुई थीं और उन बूँदों से एक भिक्षु का चीवर भींग गया। वह ब्राह्मण दूसरे दिन कुदाल लाकर घास साफ कर दिया, ताकि भिक्षु सुख-पूर्वक चीवर-पारुपन कर सकें। इसी तरह उसने वहाँ बालू बिछवाया; मण्डप बनवाया और शाला का निर्माण कराया। जब शाला तैयार हो गई, तब भिक्षु संघ के साथ भगवान् को निमंत्रित करके दान दिया।

शास्ता के भोजन कर लेने पर उसने अपने पूर्व के किये हुए सब कार्यों को कह सुनाया। शास्ता ने उसकी बात सुन—"ब्राह्मण! पण्डित क्षण-क्षण

थोड़ा-थोड़ा पुण्य करते हुए क्रमशः अपने अपुण्य को दूर कर देता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२३९—अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो॥ ५॥

सोनार जैसे चाँदी के मैल को क्रमशः क्षण-क्षण थोड़ा-थोड़ा जलाकर साफ करता है, वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करे।

अपने ही कर्म से दुर्गति

(तिस्स स्थविर की कथा)

१८, ३

श्रावस्ती वासी तिस्स स्थविर वर्षावास के पश्चात् एक आठ हाथ मोटे सूत वाला वस्त्र पाये। वे उसे लाकर अपनी बहिन के हाथ पर रख दिये। वह उसे मोटे सूत वाला देख, तेज चाकू से पतला-पतला चीर ओखल में कूट, उसे धुन कर पुनः पतले सूत वाला नव हाथ का वस्त्र तैयार की। तिस्स स्थविर उसे ले एक सुन्दर चीवर बनवा कर "कल पहनूँगा" सोच अरगनी पर टाँग दिये। रात में खाये हुए भोजन को न पचा सकने के कारण उनका देहान्त हो गया। वह चीवर के प्रति बलवती तृष्णा होने के कारण मर कर उसी चीवर में चीलर होकर उत्पन्न हुए।

दूसरे दिन प्रातः भिक्षु उनके मृत-शरीर को जलाकर उस चीवर को परस्पर बाँटने के लिए उठाये। वह चीलर "हमारी वस्तु लूट रहे हैं" कह-कह कर इधर-उधर दौड़ने और चिल्लाने लगा। भगवान् ने गन्धकुटी में बैठे हुए दिव्य स्रोत से उसके शब्द को सुनकर आनन्द से कहा—"आनन्द! उन भिक्षुओं से कह दो कि तिस्स के चीवर को अभी वहीं रख दें!" आनन्द स्थविर ने उन्हें जाकर कहा और वे उस चीवर को वहीं रख दिये। सातवें दिन वह चीलर मर कर तुषित देवलोक में जाकर उत्पन्न हुआ। तब भगवान् ने भिक्षुओं को तिस्स के चीवर को परस्पर बाँट लेने को कहा। भिक्षुओं ने भगवान् से एक सप्ताह पहले रोकने और फिर बाँटने की आज्ञा देने का कारण पूछा। शास्ता ने

तिस्स के चीलर होकर उत्पन्न होने तथा पुनः तुषित-भवन में जाने को कहते हुए—"भिक्षुओ ! जैसे लोहे से मुरचा उठकर लोहे को ही खाता है, विनष्ट करता है, ऐसे ही व्यक्ति की तृष्णा उसके भीतर उत्पन्न होकर उसे नरक आदि में उत्पन्न करती है, विनाश को प्राप्त करती है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२४०—अयसा'व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति ।
एवं अतिधोनचारिनं सानि कम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥६॥

जैसे लोहे का मुरचा उससे उत्पन्न होकर उसी को खाता है, वैसे ही सदाचार का उलंघन करने वाले मनुष्य के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को प्राप्त करते हैं।

मैल क्या है ?

(लालुदायी स्थविर की कथा)

१८, ४

श्रावस्ती नगरवासी उपासक सारिपुत्र-मौद्गल्यायन के पास धर्मश्रवण करके प्रशंसा कर रहे थे। लालुदायी ने उसे सुनकर कहा—"क्या मेरे धर्मोपदेश की तुम लोग प्रशंसा नहीं करोगे?" नगरवासी यह समझकर कि लालुदायी स्थविर भी एक बहुत बड़े धर्मोपदेशक हैं, एक दिन धर्मोपदेश करने के लिए प्रार्थना किये, किन्तु लालुदायी तीन बार टाल कर चौथी बार कुछ नहीं कह सके। धर्मासन पर जाते ही उन्हें नहीं सूझता था कि वे क्या कहें। तब नगरवासियों ने उनकी निन्दा करते हुए पीछा किया-"यह सारिपुत्र-मौद्गल्यायन की प्रशंसा नहीं सुन सकता था, अब अपने कुछ कह ही नहीं रहा है।" लालुदायी भागते हुए एक पाखाना घर में गिर पड़े और गूथ में लिपट गये।

शास्ता ने इस बात को भिक्षुओं द्वारा जान—"भिक्षुओ ! अभी नहीं, पहले भी यह गूथ के कूप में गिरा ही था।" कह कर सूकर जातक सुना— "भिक्षुओ ! लालुदायी अल्पमात्र धर्म सीखा है, किन्तु उसका स्वाध्याय (= पाठ) नहीं करता है। किसी धर्म को सीख कर उसका स्वाध्याय न करना मैल ही है।" उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२४१—असज्झायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं॥ ७॥

पाठ न करना मन्त्रों का मैल है, झाड़-बहार न करना घर का मैल है, आलस्य सौन्दर्य का मैल है, असावधानी पहरेदार का मैल है।

अविद्या परम मैल है

(किसी कुलपुत्र की कथा)

१८, ५

राजगृह के एक कुलपुत्र का विवाह हुआ। उसकी स्त्री व्यभिचारिणी थी। वह कुलपुत्र इसे जान भगवान् के पास भी जाने में लज्जा करता हुआ कई दिन नहीं गया। वह एक दिन भगवान् के पास जाकर सब कुछ कह सुनाया। भगवान् ने—"उपासक! ये स्त्रियाँ नदी, मार्ग, प्याऊ, सभा और शराबखाना के समान सबके लिए समान हैं, उन पर क्रोध नहीं करना चाहिये।" कह, अनभिरत जातक को प्रकाशित कर—"स्त्री का व्यभिचारिणी होना, दानी का कंजूसी और दोनों लोकों से बर्बाद करने वाला पाप कर्म मैल है, इनसे भी बढ़कर मैल है अविद्या।" ऐसे उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

२४२—मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च॥ ८॥

स्त्री का मैल दुराचार है, दानी का मैल कंजूसी है। पाप इस लोक और परलोक दोनों के मैल हैं।

२४३—ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवे॥ ९॥

उससे भी बढ़कर अविद्या परम मल है। भिक्षुओ! इस मल को छोड़ कर निर्मल बनो।

पापी सुखपूर्वक जीता है

(सारिपुत्र स्थविर के शिष्य की कथा)

१८, ६

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन सारिपुत्र स्थविर का शिष्य शुल्कसारि-वैद्य-कर्म करके—"नित्य ऐसा ही करके आहार लाऊँगा।" कहा। स्थविर ने उसकी बात सुन चुपचाप ही चल दिया। भिक्षु विहार में आकर शास्ता से उसे कहे। शास्ता ने—"भिक्षुओ! निर्लज्ज कौवे के समान होकर इक्कीस प्रकार के मिथ्याजीविका से सुखपूर्वक जीता है, किन्तु लज्जावान् कठिनाई से जीवन-यापन करता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२४४—सुजीवं अहिरिकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं॥ १०॥

निर्लज्ज, कौवे जैसा (स्वार्थ में) शूर, दूसरे का अहित करने वाले पतित, बकवादी, पापी मनुष्य का जीवन सुखपूर्वक बीतता है।

२४५—हिरिमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीनेप्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता॥ ११॥

लज्जावान्, नित्य ही पवित्रता का ख्याल रखने वाले, सचेत, मितभाषी, शुद्ध जीविका वाले और ज्ञानी का जीवन कठिनाई से बीतता है।

पापी अपनी जड़ खोदता है

(पाँच सौ उपासकों की कथा)

१८, ७

श्रावस्ती के पाँच सौ उपासकों में से एक पहले शील का पालन करता था, एक दूसरे; इसी प्रकार सब पञ्चशील के एक-एक अंश का ही पालन करते थे। एक दिन उनमें विवाद हुआ। सबने कहा—"मैं बहुत कठिन काम कर रहा हूँ।" इन्होंने भगवान् के पास जा प्रणाम कर अपने

विवाद को कहा। भगवान् ने—"सबका पालन करना कठिन ही है" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२४६—यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति॥ १२॥

२४७—सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो॥ १३॥

जो जीव हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्री गमन करता है, शराब-दारू पीता है, वह इस संसार में अपनी ही जड़ खोदता है।

२४८—एवं भो पुरिस! जानाहि पापधम्मा असञ्ञता।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं॥१४॥

हे पुरुष! संयम रहित पाप कर्म ऐसे ही होते हैं, इसे जानो। तुम्हें लोभ और अधर्म चिरकाल तक दुःख में न डाले रहें।

कौन एकाग्रता प्राप्त करता है?

(तिस्स दहर की कथा)

१८, ८

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक द्वारपाल का बालक बढ़इयों के साथ घर से निकल कर श्रावस्ती आया और प्रव्रजित हो गया। उसका नाम तिस्स रखा गया। वह दान में जाकर सब दायकों की निन्दा करता था और अपने घर की प्रशंसा करता था। एक बार कुछ अल्पवयस्क भिक्षु उसके गाँव में गये, तो ज्ञात हुआ कि वह झूठ ही अपने घर की प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करता है। भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कही। भगवान् ने—"भिक्षुओ! यह न केवल इसी समय ऐसा करते घूमता है, पहले भी ऐसा करता था।" कह कटाह जातक को प्रकाशित कर—"भिक्षुओ! जो पुरुष दूसरे द्वारा अल्प, बहुत, रूखा-सूखा या उत्तम दान देने पर अथवा दूसरों को दे अपने को नहीं

देने पर मौन साध लेता है, उसे ध्यान, विपश्यना या मार्ग-फल नहीं प्राप्त होते हैं।" उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

२४९—ददाति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो।
तत्थ यो मङ्कु भवति परेसं पानभोजने।
न सो दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति॥ १५॥

लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार दान देते हैं। दूसरों के खाने-पीने को देख जो सह नहीं सकता, वह दिन या रात कभी भी एकाग्रता को नहीं प्राप्त करता।

२५०—यस्स च तं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
सवे दिवा वा रत्तिं वा समाधिं अधिगच्छति॥ १६॥

जिसकी ऐसी मनोवृत्ति उच्छिन्न हो गई है, समूल नष्ट हो गई है, वही रात-दिन (सर्वदा) एकाग्रता को प्राप्त करता है।

राग के समान आग नहीं

(पाँच उपासकों की कथा)

१८, ९

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन पाँच उपासक धर्म-श्रवण करने के लिए आये। वे भगवान् के उपदेश देते समय ठीक से नहीं सुने। उनमें से कोई बैठे-बैठे सोने लगा, कोई ऊपर देखने लगा। तब आनन्द स्थविर ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! आपके इतने सुन्दर उपदेश करने पर भी ये क्यों नहीं सुन रहे हैं?"

भगवान् ने उनके पूर्व जन्मों की बातों को बतलाकर—"आनन्द! राग, द्वेष, मोह और तृष्णा के कारण धर्म-श्रवण नहीं कर सकते हैं। राग की आग के समान आग नहीं है। वह राख को बिना छोड़े हुए प्राणियों को जलाता है। यद्यपि सात सूर्यों के उत्पन्न होने पर उत्पन्न हुई कल्प-विनाशक आग भी बिल्कुल ही लोक को जला डालती है, किन्तु वह कभी-कभी ही जलाती है,

राग की आग के जलाने का समय नहीं, इसलिए राग के समान आग, द्वेष के समान ग्रह, मोह के समान जाल और तृष्णा के समान नदी नहीं है।" कहते हुए इस गाथा को कहा—

२५१—नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥ १७ ॥

राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह (=भूत) नहीं, मोह के समान जाल नहीं, तृष्णा के समान नदी नहीं।

दूसरे का दोष देखना आसान है

(मेण्डक श्रेष्ठी की कथा)

१८, १०

एक समय शास्ता अङ्गुत्तराप[1] में चारिका करते हुए जाकर जातियावान में विहार करते थे। मेण्डक श्रेष्ठी भगवान् के आगमन को सुनकर दर्शनार्थ जाने लगा। मार्ग में तैर्थिको ने उसे देख—"क्यों तू क्रियावादी होते हुए भी अक्रियावादी के पास जा रहे हो?" कहकर रोकना चाहा, किन्तु वह नहीं रुका। वह भगवान् के पास जाकर वन्दना कर एक ओर बैठ गया। शास्ता ने आनुपूर्वी कथा कह कर उपदेश दिया। वह उपदेश के अन्त में स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त कर तैर्थिकों द्वारा रोकने की बात कह सुनाया। तब भगवान् उसे— "गृहपति! ये प्राणी अपने महान् दोष को भी नहीं देखते हैं, किन्तु अविद्यमान भी दूसरे के दोष को विद्यमान करके स्थान-स्थान उड़ाते फिरते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२५२—सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं।
अत्तनो पन छादेति कलिं'व कितवा सठो ॥ १८ ॥

१—भागलपुर—मुँगेर जिलों का गंगा के उत्तर का भाग।

दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष) देखना कठिन है। वह (पुरुष) दूसरों के ही दोषों को भूसे की भाँति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने (दोषों) को वैसे ही ढाँकता है, जैसे बहेलिया शाखाओं से अपने शरीर को।

आश्रव बढ़ते हैं

(उज्झानसञ्ञी स्थविर की कथा)

१८, ११

भगवान् के जेतवन विहार में विहरते समय उज्झानसञ्ञी नामक स्थविर सदा "ऐसा पहनता है, ऐसा ओढ़ता है" कह कर भिक्षुओं का दोष ही देखा करते थे। भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कही। भगवान् ने—"भिक्षुओ! यदि वह पहनने-ओढ़ने के स्थान पर उपदेश के तौर पर कहे तब तो ठीक ही है और यदि केवल चिढ़ कर कहता हो, तो उससे उसी के आश्रव बढ़ेंगे। जो ऐसा कहते विचरता है, उसे ध्यान आदि की प्राप्ति नहीं होती, केवल उसके आश्रव ही बढ़ते हैं। कह कर इस गाथा को कहा—

२५३—परवज्जानुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो।
आसवा तस्स वड्ढन्ति आरा सो आसवक्खया॥ १९॥

दूसरों के दोष देखने वाले तथा सदा दूसरों से चिढ़ने वाले के आश्रव (= चित्त मल) बढ़ते हैं। वह आश्रवों के विनाश से दूर हटा हुआ है।

बाहर में श्रमण नहीं

(सुभद्र परिव्राजक की कथा)

१८, १२

जिस समय धर्मराज सर्वज्ञ तथागत कुशीनारा के शालवन उपवत्तन में परिनिर्वाण-मञ्च पर लेटे थे, उस समय तीन प्रश्न पूछने के लिए सुभद्र परिव्राजक उनके पास गया। आनन्द स्थविर ने पहले उसे रोका, किन्तु

शास्ता के कहने पर जाने दिया। वह भगवान् के पास जा मञ्च से नीचे बैठकर—"हे श्रमण ! क्या आकाश में पद है ? इससे बाहर श्रमण है ? संस्कार शाश्वत है ?"—इन प्रश्नों को पूछा। तब शास्ता ने उनके अभाव को बतलाते हुए इन गाथाओं से उपदेश दिया—

२५४—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥ २० ॥

आकाश में पद (–चिन्ह) नहीं, बाहर में श्रमण नहीं[1], लोग प्रपञ्च में लगे रहते हैं, किन्तु तथागत प्रपञ्च रहित हैं।

२५५—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे।
सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥ २१ ॥

आकाश में पद (–चिन्ह) नहीं, बाहर में श्रमण नहीं, संस्कार शाश्वत नहीं और बुद्धों में चञ्चलता नहीं।



१—इसका भावार्थ यह है—"बुद्ध-शासन से बाहर दूसरे धर्मों में कोई भी मार्ग-फल प्राप्त श्रमण नहीं है।"

धम्मट्ठवग्गो

सच्चा न्यायाधीश

(विनिश्चय-महात्माओं की कथा)

१९, १

एक दिन भिक्षु श्रावस्ती में उत्तर द्वार के गाँव में भिक्षाटन करके भोजन कर नगर के बीच से आ रहे थे, अचानक बादल उठा और वर्षा होने लगी। भिक्षु सामने वाली विनिश्चय-शाखा में पानी से बचने के लिए गये। वे वहाँ विनिश्चय महामात्यों को घूस लेकर सत्य को झूठ तथा झूठ को सत्य बनाते हुए देख आकर भगवान् से कहे। भगवान् ने—"भिक्षुओ! छन्द आदि के वशीभूत हो बिना विचार किये न्याय करने वाले न्यायाधीश नहीं होते, किन्तु दोष का ठीक-ठीक विचार करके दोष के अनुसार न्याय करने वाले ही न्यायाधीश होते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२५६—न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं सहसा नये।
यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥ १ ॥

२५७—असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे।
धम्मस्स गुत्तो मेधवी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥ २ ॥

बिना विचारे यदि कोई न्याय करता है, तो वह न्यायाधीश नहीं। जो पण्डित सच्चे और झूठे दोनों का निर्णय कर विचारपूर्वक धर्म से पक्षपात रहित होकर न्याय करता है, वही धर्म की रक्षा करने वाला सच्चा न्यायाधीश कहा जाता है।

पण्डित कौन ?

(छःवर्गीय भिक्षुओं की कथा)

१९, २

भगवान् के जेतवन में विहरते समय छःवर्गीय भिक्षु गाँव में भी, बिहार

में भी भोजन के समय गड़बड़ी करते थे। एक दिन गाँव में भोजन करके आये हुए तरुण भिक्षुओं से स्थविरों ने पूछा—"आवुसो ! आज भोजन कैसा रहा ?"

"भन्ते ! मत पूछिये, छःवर्गीय हम लोग ही शान्त और पण्डित हैं, इन्हें मार कर इनके सिर जूठन डालते हुए निकालेंगे। कह कर हम लोगों की पीठ पकड़ कर जूठन बखेर भोजन में गड़बड़ी किये।"

स्थविर भगवान् के पास जाकर इस बात को कहे। शास्ता ने—"भिक्षुओ ! दूसरों को पीड़ित करके बहुत बोलने वाले को मैं पण्डित नहीं कहता, किन्तु मैं क्षेमवान्, अ-वैरी और निर्भय को ही पण्डित कहता हूँ।" कह कर इस गाथा को कहा—

२५८—न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥ ३ ॥

बहुत बोलने से (कोई) पण्डित नहीं होता, प्रत्युत जो क्षेमवान् अ-वैरी और निर्भय होता है, वही पण्डित कहा जाता है।

बहुभाषी धर्मधर नहीं

(एकूदान स्थविर की कथा)

१९, ३

एकूदान नामक एक क्षीणाश्रव (= अर्हत्) भिक्षु थे। वे एक जंगल में अकेले रहते थे। उन्हें एक ही उदान याद था। उपोसथ के दिन उसे कह कर धर्मोपदेश देते थे, जिसे सुनकर जंगल को गुंजित करते हुए देवता साधुकार देते थे। एक दिन पाँच-पाँच सौ भिक्षुओं के साथ त्रिपिटकधारी दो भिक्षु आये। क्षीणाश्रव भिक्षु उनके आने पर बहुत प्रसन्न हुए और कहे—"भन्ते ! आप लोग आकर बहुत अच्छा किये। आज आप लोगों के पास हम धर्मोपदेश सुनेंगे। जंगल के देवता भी सदा साधुकार देते धर्म सुनाते हैं।"

त्रिपिटकधारी भिक्षुओं ने उपदेश किया, किन्तु एक देवता ने भी साधुकार नहीं दिया, तब उन्होंने क्षीणाश्रव भिक्षु को उपदेश करने के लिए कहा।

क्षीणाश्रव भिक्षु ने धर्मासन पर जाकर केवल उस उदान को कहा। उदान के समाप्त होते ही 'साधु! साधु!! साधु!!! के शब्द से जंगल गूंजित हो उठा। इसे देखकर उन भिक्षुओं के शिष्यों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने जेतवन जाकर भगवान् से कहा। भगवान् ने—"भिक्षुओ! जो बहुत पढ़ता या भाषण देता है, उसे मैं धर्मधर नहीं कहता, धर्मधर तो वह है जो एक गाथा मात्र को याद करके सत्यों का ज्ञान प्राप्त करता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

२५९—न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति।
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥ ४ ॥

बहुत बोलने से (कोई) धर्मधर नहीं होता, प्रत्युत जो थोड़ा भी सुनकर धर्म का (नाम) काय से साक्षात् करता है, और जो धर्म में प्रमाद नहीं करता, वही धर्मधर है।

बाल पकने से स्थविर नहीं

(लकुण्टक भद्दिय स्थविर की कथा)

१९, ४

लकुण्टक भद्दिय स्थविर नाटे थे। एक दिन आरण्य से तीस भिक्षु भगवान् का दर्शन करने के लिए जेतवन आये। जिस समय वे शास्ता को वन्दना करने जा रहे थे, उसी समय लकुण्टक भद्दिय स्थविर भगवान् को वन्दना करके लौटे जा रहे थे, उन भिक्षुओं के आने पर भगवान् ने पूछा—"क्या तुम लोगों ने जाते हुए एक स्थविर को देखा है?"

"भन्ते! हम लोगों ने स्थविर को तो नहीं देखा, केवल एक श्रामणेर जा रहा था।"

"भिक्षुओ! वह श्रामणेर नहीं, स्थविर है।"

"भन्ते! अत्यन्त छोटा है।"

"भिक्षुओ! वृद्ध होने और स्थविर के आसन पर बैठने मात्र से स्थविर

नहीं कहाता, किन्तु जो आर्य सत्यों का ज्ञान प्राप्त कर महाजन समूह के लिये अहिंसक हो गया है, वह स्थविर है।" भगवान् ने यह कह कर इन गाथाओं को कहा—

२६०— न तेन थेरो होति येनस्स पलितं सिरो।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो'ति वुच्चति ॥ ५ ॥

सिर के (बाल) पकने से (कोई) स्थविर नहीं होता, केवल उसकी आयु परिपक्व हो गई है, वह तो तुच्छ वृद्ध कहा जाता है।

२६१—यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो इति पवुच्चति ॥६॥

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम है, वही विगतमल, धीर और स्थविर कहा जाता है।

रूपवान् होने से साधु-रूप नहीं होता

(बहुत से भिक्षुओं की कथा)

१९, ५

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय दहर भिक्षुओं और श्रामणेरों को अपनी धर्मचर्य्या और चीवर को रँगने आदि के कार्य को करते हुए देख— भगवान् के पास जाकर कहे—"भन्ते! आप इन्हें आज्ञा दें कि ये दूसरों के पास धर्म सीख कर भी हम लोगों के पास बिना ठीक से सुनाये, स्वाध्याय न करें; ऐसा करने से हम लोगों का लाभ-सत्कार बढ़ेगा।" भगवान् ने—"मैं तुम्हें वक्ता होने मात्र से साधु-रूप (= अच्छा) नहीं कहता, प्रत्युत जिसके अर्हत् मार्ग से ईर्ष्या आदि उच्छिन्न हो जाती है, वही साधु-रूप है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२६२—न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥७॥

ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ पुरुष वक्ता या रूपवान् होने मात्र से साधु-रूप नहीं होता।

२६३—यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपोति वुच्चति ॥ ८ ॥

जिसका यह बिल्कुल जड़ से उच्छिन्न हो गया है, समूल नष्ट हो गया है; वही द्वेष रहित मेधावी साधु-रूप कहा जाता है।

शमित-पाप श्रमण होता है

(हत्थक की कथा)

१९, ६

हत्थक नामक भिक्षु सदा वाद-विवाद में लगे रहते थे। वे तैर्थिकों से कहते थे—"अमुक समय अमुक स्थान पर अपना शास्त्रार्थ होगा।" वे तैर्थिकों के आने के पूर्व ही जाकर—"देखो, तैर्थिक डर कर भाग गये, यही उनकी हार है।" कहते थे। जब भगवान् को यह ज्ञात हुआ, तब वे हत्थक को बुला कर पूछे—"क्या भिक्षु ! तू सचमुच ऐसा करता है ?

"हाँ भन्ते !"

"भिक्षु ! क्यों ऐसा कर रहा है ? ऐसे झूठ बोलते हुए विचरण करने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता, प्रत्युत जो छोटे-बड़े सभी पापों को शमित कर लिया है वही श्रमण होता है।" भगवान् ने यह कहकर इन गाथाओं को कहा—

२६४—न मुण्डकेन समणो अब्बुतो अलिकं भणं।
इच्छालाभ समापन्नो समणो किं भविस्सति ॥ ९ ॥

जो व्रतरहित, मिथ्याभाषी है, वह मुण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता, इच्छा लाभ से भरा (पुरुष) क्या श्रमण होगा।

२६५—यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥ १० ॥

जो छोटे-बड़े पापों को सर्वथा शमन करने वाला है; पाप को शमित होने के कारण वह श्रमण कहा जाता है।

भिक्षु कौन ?

(किसी ब्राह्मण की कथा)

१६, ७

एक ब्राह्मण दूसरे धर्म में प्रव्रजित होकर भगवान् के पास आया और कहा—"हे गौतम ! आप अपने शिष्यों को भिक्षाटन करने से 'भिक्षु' कहते हैं, मैं भी भिक्षाटन करता हूँ, अतः मुझे भी भिक्षु कहिये ।" भगवान् ने—"ब्राह्मण ! केवल भिक्षाटन करके मात्र से कोई भिक्षु नहीं होता, प्रत्युत जो सब संस्कारों को जानकर विचरण करता है, वही भिक्षु है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२६६—न तेन भिक्खु (सो) होति यावता भिक्खते परे ।
विस्सं धम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता ॥११॥

दूसरों के पास जाकर भिक्षा माँगने से (कोई) भिक्षु नहीं होता है और न तो भिक्षु होता है विषम-धर्म को ग्रहण करने से ।

२६७—योध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियं वा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ॥ १२ ॥

जो यहाँ पुण्य और पाप को छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञान के साथ लोक में विचरता है, वह भिक्षु कहा जाता है ।

मौन रहने से मुनि नहीं होता

(तैर्थिकों की कथा)

१९ ८

भिक्षु गृहस्थों के घर निमंत्रित होने पर भोजनोपरान्त दानानुमोदन करते थे, किन्तु तैर्थिक 'सुख होतु' आदि कह कर ही चले जाते थे । लोग भिक्षुओं की प्रशंसा और उनकी निन्दा करते थे । यह जानकर तैर्थिकों ने—"हम लोग मुनि हैं, मौन रहते हैं, श्रमण गौतम के शिष्य भोजन के समय महाकथा कहते हैं।" कह कर निन्दा करना प्रारम्भ किया । भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कही । शास्ता ने—"भिक्षुओ ! मौन रहने मात्र से मैं मुनि नहीं कहता ।

क्योंकि कोई न जानने से नहीं कहता है, कोई दक्ष न होने से और कोई इस बात को दूसरे भी न जान जायँ। इसलिये केवल मौन मात्र से मुनि नहीं होता, किन्तु पाप के उपशमन से मुनि होता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२६८—न मोनेन मुनी होति मुल्हरूपो अविद्दसु।
यो च तुलं'व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥ १३ ॥

२६९—पापानि परिवज्जेति स मुनि तेन सो मुनि।
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥ १४ ॥

मौन धारण करने मात्र से कोई अविद्वान् मूढ़ मुनि नहीं होता। जो पण्डित मानो श्रेष्ठ तुला ग्रहण करके दोनों लोकों का मान करता है (=तौलता है) और पापों को छोड़ देता है, वह इस कारण मुनि है और मुनि कहा जाता है।

हिंसा करने से आर्य नहीं होता

(वंशी लगाने वाले की कथा)

१९, ९

श्रावस्ती में आर्य नामक एक बंशी लगाने वाला था। एक दिन भगवान् श्रावस्ती के उत्तर ग्राम-द्वार में भिक्षाटन कर आ रहे थे। उस समय वह बंशी से मछली पकड़ रहा था। भगवान् को भिक्षु संघ के साथ आते देख बंशी फेंक जाकर प्रणाम करके खड़ा हो गया। भगवान् ने सारिपुत्र आदि स्थविरों से "तेरा क्या नाम है?" पूछते हुए आर्य से भी पूछा। उसने "भन्ते! मेरा नाम आर्य है" कहा। शास्ता ने—"उपासक! तेरे जैसे प्राणि-हिंसक आर्य नहीं होते, आर्य तो अविहिंसक होते हैं।" कहकर इस गाथा को कहा—

२७०—न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ॥ १५ ॥

प्राणियों की हिंसा करने से (कोई) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियों की हिंसा न करने से आर्य कहा जाता है।

आश्रव-क्षय से निर्वाण

(बहुत से भिक्षुओं की कथा)

१९, १०

भगवान् के जेतवन में रहते समय बहुत शीलसम्पन्न भिक्षुओं के मन में ऐसे विचार हुए—"हम लोग शीलसम्पन्न हैं, समाधि-प्राप्त हैं; जब चाहेंगे निर्वाण प्राप्त कर लेंगे।" वे जब भगवान् के पास गये, तब भगवान् ने पूछा—"भिक्षुओ! क्या तुम्हारे प्रव्रजित होने का उद्देश्य पूर्ण हो गया?" उन्होंने अपने पूर्व के विचार को कह सुनाया। भगवान् ने उनके विचारों को सुन—"भिक्षुओ! केवल परिशुद्ध शील से युक्त या अनागामी होने मात्र से दुःख थोड़े हैं—नहीं सोचना चाहिये। बिना आश्रव-क्षय प्राप्त किये 'सुखी हूँ'—ऐसा चित्त भी नहीं उत्पन्न करना चाहिये।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२७१—न सीलब्बतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पन।
अथवा समाधि लाभेन विवित्तसयनेन वा ॥ १६ ॥

२७२—फुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं।
भिक्खु! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ॥ १७ ॥

न शील और व्रत के आचरण मात्र से, न बहुश्रुत होने से, न समाधि लाभ से या न एकान्त में शयन करने से अथवा न पृथक् जनों द्वारा अप्राप्त नैष्कर्म्य (= अनागामी) के सुख का अनुभव कर रहा हूँ,—सोचने मात्र से दुःख थोड़ा होता है। भिक्षु[1]! तब तक विश्वास न करो, जब तक आश्रवों का क्षय न हो जाय।

१—उन भिक्षुओं में से एक को सम्बोधित करके कहते हैं—अर्थकथा।

२०—मग्गवग्गो

अष्टाङ्गिक मार्ग श्रेष्ठ है

(पाँच सौ भिक्षुओं की कथा)

२०, १

भगवान् के जेतवन में रहते समय पाँच सौ भिक्षु चारिका से आकर आसन-शाला में बैठे हुए बातें कर रहे थे—"अमुक गाँव का मार्ग सुन्दर है ! अमुक गाँव का मार्ग खराब है, अमुक गाँव में कंकड़ हैं।" भगवान् ने उनकी बात सुन—"भिक्षुओ ! यह बाहरी मार्ग हैं। भिक्षु को आर्य-मार्ग में ही लगाना चाहिये, ऐसा करने से भिक्षु सब दुःखों से छूट जाता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२७३—मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥ १ ॥

मार्गों में अष्टाङ्गिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यों के चार-पद (= चार आर्य सत्य) श्रेष्ठ हैं, धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपदों (= मनुष्यों) में चक्षुष्मान् (= ज्ञाननेत्रधारी बुद्ध) श्रेष्ठ हैं।

२७४—एसोव मग्गो नत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया ।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥ २ ॥

दर्शन (= ज्ञान) की विशुद्धि के लिए यही मार्ग है, दूसरा नहीं इसी पर तुम आरूढ़ होओ, यही मार को मूर्च्छित करने वाला है।

२७५—एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥ ३ ॥

इस मार्ग पर आरूढ़ हो तुम दुःखों का अन्त कर दोगे। शल्य-समान दुःख का निवारण-स्वरूप निर्वाण को जान मैंने इसका उपदेश किया है।

२७६—तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥ ४ ॥

कार्य के लिए तुम्हें ही उद्योग करना है, तथागतों (= बुद्धों) का कार्य उपदेश कर देना है। (तदनुसार) मार्ग पर आरूढ़ हो, ध्यान में रत मार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

सभी संस्कार अनित्य हैं

(अनित्य-लक्षण की कथा)

२०, २

भगवान् के जेतवन में विहरते समय पाँच सौ भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान ग्रहण करके आरण्य में जा प्रयत्न करते हुए भी कोई विशेषता न प्राप्त कर पुनः भगवान् के पास विशेष रूप में कर्मस्थान कहलवाने के लिए आये ! भगवान् ने उनको पूर्व जन्म में अनित्य लक्षण की भावना किया हुआ देख—"भिक्षुओं ! काम-भव आदि में सभी संस्कार होकर अभाव को प्राप्त होने के कारण अनित्य ही हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

२७७—सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥५॥

'सभी संस्कार अनित्य हैं'—'ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है' तब सभी दुःखों से निर्वेद (= विराग) को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि (= निर्वाण) का मार्ग है।

सभी संस्कार दुःख हैं

(दुःख लक्षण की कथा)

२०, ३

इस गाथा को भी भगवान् ने उसी प्रकार के भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा—

२७८—सब्बे सङ्खारा दुक्खा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ६ ॥

'सभी संस्कार दुःख हैं'—ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

सभी धर्म अनात्म हैं

(अनात्म-लक्षण की कथा)

२०, ४

इस गाथा को भी भगवान् ने उसी प्रकार के भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा—

२७९—सब्बे धम्मा अनत्ता'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ ७ ॥

'सभी धर्म (= पञ्चस्कन्ध) अनात्म हैं'—ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

आलसी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं पाता

(योगाभ्यासी तिस्स स्थविर की कथा)

२०, ५

भगवान् के जेतवन में विहरते समय पाँच सौ कुलपुत्र भगवान् के पास प्रव्रजित होकर कर्मस्थान ग्रहण कर आरण्य में गये। उनमें से केवल एक जेतवन में ही रह गया। आरण्य में गये भिक्षु उद्योग करते हुए शीघ्र ही अर्हत्व पाकर भगवान् की वन्दना करने आये। आते समय मार्ग में एक उपासक ने उन्हें भोजन दान देकर दूसरे दिन के लिए भी निमंत्रित किया।

जब वे भिक्षु जेतवन में आकर भगवान् की वन्दना कर एक ओर बैठे तब भगवान् ने उनके साथ बड़े ही मधुर वचन से कुशल-क्षेम पूछा। उस भिक्षु ने जो जेतवन में ही रह गया था, यह देखकर सोचा—"शास्ता इनके साथ बहुत मीठी-मीठी बातें करते हैं, किन्तु मुझसे बोलते भी नहीं हैं, जान पड़ता है ये अर्हत्व पा लिये हैं, अच्छा मैं भी आज अर्हत्व पा भगवान् से बातचीत करूँगा।" वह रात भर जागकर चंक्रमण करते हुए नींद आने से

एक पत्थर पर गिर पड़ा, जिससे उसके जंघे की एक हड्डी टूट गई और वह बहुत जोरों से चिल्लाया। वे भिक्षु अपने साथी के शब्द को सुन चारों ओर से आकर उसकी दवा आदि करने लगे। वही करते हुए अरुणोदय हो गया, जिससे वे निमंत्रित उपासक के यहाँ नहीं जा सके।

भगवान् ने उन भिक्षुओं को देखकर पूछा—"भिक्षुओ! भिक्षा वाले गाँव नहीं गये?" उन्होंने सब समाचार कह सुनाया। तब भगवान् ने—"भिक्षुओं! यह अभी नहीं पहले भी तुम लोगों के लाभ में विघ्न डाला ही।" कह पाँच सौ विद्यार्थियों की कथा को प्रकाशित कर—"भिक्षुओ! जो उद्योग करने के समय उद्योग नहीं करता है, उच्च आकांक्षाओं को छोड़ देता है और आलसी होता है, वह ध्यान आदि की विशेषता को नहीं प्राप्त करता है।" उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२८०—उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो युवा बली आलसियं उपतो।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति॥

जो उद्योग करने के समय उद्योग न करने वाला, युवा और बली होकर भी आलस्य से युक्त होता है, जिसने उच्च आकांक्षाओं को छोड़ दिया है और जो कुसीदी (= दीर्घसूत्री) है, वह आलसी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं प्राप्त करता।

तीनों कर्म-पथों को शुद्ध करे

(सूकर प्रेत की कथा)

२०, ६

एक दिन महामौद्गल्यायन स्थविर लक्खण स्थविर के साथ गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुए मुसकराये। उन्हें मुसकराते हुए देखकर लक्खण स्थविर ने मुसकराने का कारण पूछा। उन्होंने भगवान् के पास चलने पर पूछने के लिये कहा। जब दोनों स्थविर भगवान् के पास गये, तब लक्खण स्थविर ने महामौद्गल्यायन स्थविर से मुसकराने का कारण पूछा। मौद्गल्यायन स्थविर ने कहा—"आवुस! मैंने गृद्धकूट से उतरते हुए एक ऐसे प्रेत को देखा, जिसका शरीर तीन गव्यूति का मनुष्य जैसा था, किन्तु सूअर के सदृश सिर था।

उसके मुख में पूँछ थी, जिससे कीड़े पधर रहे थे। मैंने कभी भी ऐसे सत्व को नहीं देखा था, अतः उसे देखकर मुसकराया।"

शास्ता ने—'मैंने भी इसी प्रेत को बोधि वृक्ष के नीचे देखा था, किन्तु किसी से नहीं कहा था। यह सत्व कश्यप बुद्ध के समय में भिक्षु होकर दो महास्थविरों में फूट डाल कर एक विहार से भगा दिया था, उसी के विपाक से एक बुद्धान्तर अवीचि नरक में पक कर, इस समय गृद्धकूट पर उक्त प्रकार के शरीर से दुःख भोग रहा है। भिक्षुओ! भिक्षु को काय आदि से बिल्कुल शान्त होना चाहिए।" कह कर इस गाथा को कहा—

२८१—वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो कायेन च अकुसलं न कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं॥

वाणी का संयम करे, मन का संयम करे और शरीर से कोई पाप न करे। इन तीनों कर्म-पथों को शुद्ध करे। (= ऋषि) के बताये मार्ग का अनुसरण करे।

प्रज्ञा-वृद्धि में लगे

(पोठिल स्थविर की कथा)

२०, ७

भगवान् के जेतवन में विहरते समय पोठिल नामक एक त्रिपिटकधारी धर्म-कथित थे। उनके पास बहुत से भिक्षु पढ़ते थे, किन्तु स्वयं ध्यान या मार्ग फल नहीं प्राप्त किये थे। इससे भगवान् उन्हें 'तुच्छ पोठिल' कह कर सम्बोधित करते थे। भगवान् के इस प्रकार के सम्बोधन से उन्हें बहुत संवेग पैदा हुआ और वे ध्यान करने के लिए अकेले चीवरपात्र लेकर निकल पड़े। श्रावस्ती से एक सौ बीस योजन दूर एक आरण्य में गये। वहाँ तीस अर्हत् भिक्षु रहते थे। वह उनके पास जाकर "भन्ते! मुझे आश्रय दीजिये।" कहे, किन्तु उन्होंने "आवुस! तुम त्रिपटकधारी धर्म-कथित होकर क्या कह रहे हो?" कह कर टाल दिया। पोठिल स्थविर क्रमशः पूछते हुए एक सात वर्ष की अवस्थावाले श्रामणेर के पास भी जाकर वैसे ही कहे। श्रामणेर ने कहा—"यदि आप आज्ञाकारी होंगे तो मैं आश्रय दूँगा।"

"यदि सत्पुरुष ! आग में भी कूदने को कहें तो कूद पड़ूँगा।"

श्रामणेर ने उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा—"अच्छा चीवर पहने हुए ही इस सामने के तालाब में प्रवेश कीजिये।"

पोठिल स्थविर श्रामणेर की बात सुनते ही पानी में प्रवेश करने लगे, तब वह उन्हें आज्ञाकारी जानकर उपदेश दिया। भगवान् ने जेतवन में ही बैठे हुए पोठिल के चित्त को एकाग्र हुआ देख सामने खड़े होकर कहने की भाँति उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२८२—योगा वे जायती भूरि अयोगा भूरि सङ्ख्यो।
एतं द्वेधापथं ञत्वा भवाय विभवाय च।
तथत्ता निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति ॥ १० ॥

योगाभ्यास से प्रज्ञा उत्पन्न होता है, और उसके अभाव से उसका क्षय होता है। उन्नति और विनाश के इन दो भिन्न मार्गों को जान अपने को ऐसा लगावे, जिससे प्रज्ञा की वृद्धि हो।

वन काटो, वृक्ष नहीं

(वृद्ध स्थविरों की कथा)

२०, ८

भगवान् के जेतवन में विहरते समय बहुत से वृद्ध पुरुष एक साथ प्रव्रजित होकर विहार के एक ओर कुटी बनाकर रहते थे। वे ध्यानभावना न कर दिन-रात बातचीत ही करते रहते थे। उनमें से एक की पुरानी स्त्री उनके लिए मधुर भोजन आदि भी बनाकर देती थी। वह जब मर गई तब वे सब वृद्ध भिक्षु एक दूसरे का गला पकड़कर रोने लगे। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् को कही। भगवान् ने काक जातक को कह, अतीत काल में भी उनके वैसे ही होने को बतला उन भिक्षुओं को आमंत्रित कर—"भिक्षुओ ! राग, द्वेष, मोह रूपी वन के कारण ही तुम लोगों ने इस दुःख को पाया, उस वन को काट देना चाहिये, ऐसे दुःख रहित होओगे।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

२८३—वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायती भयं ।
छेत्वा वनञ्च वनथञ्च निब्बना होथ भिक्खवो ॥११॥

भिक्षुओ ! वन को काटो, वृक्ष को मत, वन से भय उत्पन्न होता है । वन और झाड़ को काटकर वन रहित हो जाओ ।

२८४—यावं हि वनथो न छिज्जति अनुमत्तोपि नरस्स नारिसु ।
पटिबद्धमनो नु ताव सो वच्छो खीरपको'व मातरि ॥१२॥

जब तक अणुमात्र भी स्त्रियों में पुरुष की कामना नहीं खंडित रहती है, तब तक दूध पीने वाला बछड़ा जैसे माता में आबद्ध रहता है, वैसे ही वह पुरुष बँधा रहता है ।

आत्म-स्नेह को उच्छिन्न कर डालो

(सुवर्णकार स्थविर की कथा)

२०, ९

सारिपुत्र स्थविर का एक शिष्य था, जो सुवर्णकार-कुल से निकल कर प्रव्रजित हुआ था । उन्होंने उसे अशुभ कर्मस्थान दिया, किन्तु चार महीने तक उद्योग करने पर भी कुछ विशेषता नहीं प्राप्त हुई तब उसे लेकर भगवान् के पास गये । भगवान् ने उसके पूर्व-जन्म को देखते हुए पाँच सौ जन्मों में सुवर्णकार-कुल में ही उत्पन्न होने को देख, एक सुवर्ण-पद्म-पुष्प दिया और कहा कि वह उस पुष्प को बालुका के ऊपर रख कर भावना करे ।

वह भिक्षु पुष्प को देखकर भावना करते हुए चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर लिया । तब भगवान् ने ऋद्धि-बल से निर्मित उस पद्म-पुष्प को मुरझाने का अधिष्ठान किया । पुष्प के मुरझाते ही भिक्षु अनित्य-लक्षण का नमस्कार करने लगा । भगवान् ने भिक्षु की चित्त-प्रवृत्ति को देख गन्धकुटी में बैठे हुए ही प्रकाश कर सामने खड़े होकर कहने के समान उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२८५—उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं'व पाणिना ।
सन्ति मग्गमेव ब्रूहय निब्बानं सुगतेन देसितं ॥१३॥

हाथ से शरद् (ऋतु) के कुमुद की भाँति, आत्म-स्नेह को उच्छिन्न कर डालो, सुगत (=बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट (इस) शान्ति-मार्ग निर्वाण का अश्रय लो।

मूर्ख विघ्न नहीं बूझता

(महाधनी वाणिक् की कथा)

२०, १०

भगवान् के जेतवन में विहरते समय वाराणसी का एक महाधनी बनिया पाँच सौ बैलगाड़ियों पर कुसुम और लाल रंग में रँगे हुए वस्त्रों को लेकर बेचने के लिए श्रावस्ती गया। वह नदी के किनारे गाड़ियों को खड़ा कर दूसरे दिन नगर में जाने का विचार किया। रात में नदी में बड़ी बाढ़ आई। वह अब वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्म में भी वहीं रहने का विचार किया। भगवान् उसके विचार को जान मुस्कराये। आनन्द स्थविर ने भगवान् के मुस्कराने का कारण पूछा। भगवान् ने कहा—"आनन्द! वह बनिया तीनों ऋतुओं में वहीं रह कर वस्त्र बेचने का संकल्प कर रहा है, किन्तु उसकी आयु केवल अब सप्ताह ही भर है।" आनन्द स्थविर भगवान् से आज्ञा पाकर उसके पास गये। वह उनको भोजन दिया और आदर-सत्कार किया। तब उन्होंने उपदेश के सिलसिले सब कह सुनाया।

वह बनिया मृत्यु की भय से भयभीत हुआ भिक्षु-संघ के साथ तथागत को सप्ताह भर दान दिया। सातवें दिन अनुमोदन करते हुए भगवान् ने—"उपासक! पण्डित पुरुष को यहाँ वर्षा आदि में रहूँगा, या यह, यह करूँगा—नहीं सोचना चाहिये, किन्तु अपने जीवन के विघ्न का ही विचार करना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

२८६—इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्त गिम्हसु।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥ १४ ॥

यहाँ वर्षा में बसूँगा, यहाँ हेमन्त और ग्रीष्म में,—मूर्ख इस प्रकार सोचता है किन्तु (अपने जीवन के) विघ्न को नहीं बूझता है।

[वह उपदेश के अन्त में स्रोतापत्ति-फल पाया और शास्ता के अनुमोदन करके चले जाने के पश्चात् सिर के रोग से मर कर तुषित भवन में उत्पन्न हुआ ।]

आसक्त को मौत ले जाती है

(किसागोतमी की कथा)

२०, ११

किसागोतमी की कथा 'सहस्सवग्ग' में आई हुई है । जब वह चारों ओर घूमकर एक भी सरसों नहीं पाई और आकर भगवान् से कही, तब शास्ता ने—"मेरा ही पुत्र मर गया है—ऐसा सोचती है । यह तो प्राणियों का ध्रुव-धर्म है । मृत्युराज सभी प्राणियों को उनकी इच्छाओं को पूर्ण हुए बिना ही बाढ़ के समान खींचते हुए अपाय रूपी समुद्र में डाल देता है ।" कह कर धर्मोपदेश करते हुए इस गाथा को कहा—

२८७—तं पुत्तपसुसम्मत्तं ब्यासत्तमनसं नरं ।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ।। १५ ।।

सोये गाँव को जैसे बड़ी बाढ़ बहा ले जाय, वैसे ही पुत्र और पशु में लिप्त आसक्त पुरुष को मौत ले जाती है ।

निर्वाण-मार्ग को साफ करे

(पटाचारा की कथा)

२०, १२

पटाचारा की भी कथा सहस्सवग्ग में आ चुकी है । उसे भी भगवान् ने—"पटाचारे ! पुत्र आदि परलोक जाते समय रक्षक नहीं होते, इसलिये वे होने पर भी नहीं हैं । बुद्धिमान् को चाहिये कि वह शील का विशोधन कर अपने निर्वाणगामी मार्ग को ही साफ करे ।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा ।

२८८—न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बन्धवा ।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता ।। १६ ।।

पुत्र रक्षा नहीं कर सकते, न पिता, न बन्धु लोग ही। जब मृत्यु आती है, तो जातिवाले रक्षक नहीं हो सकते।

२८९—एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो।
निब्बान-गमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये ॥ १७ ॥

इस बात को जानकर पण्डित पुरुष शीलवान् हो, निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को शीघ्र ही साफ करे।



२१—पकिण्णकवग्गो

अधिक के लिए थोड़े सुख का परित्याग

(गङ्गारोहण की कथा)

२१, १

एक समय वैशाली में दुर्भिक्ष हुआ था, ताऊन का रोग फैला हुआ था और अमनुष्यों का उपद्रव हो रहा था। उस समय लिच्छविराजा राजगृह जाकर भगवान् को वैशाली लाये थे। भगवान् जब वैशाली में आकर 'रतन सुत्त' का पाठ कराये थे। तब सारा रोग शान्त हो गया था, पानी बरसा था और अमनुष्य-भय दूर हो गया था। जब भगवान् राजगृह से वैशाली आ रहे थे, तब नाना प्रकार से मार्ग को सजाकर महापरिहार्य के साथ उनका गमन हुआ था। राजा बिम्बिसार और लिच्छवि राजा—दोनों गंगा नदी के आर-पार अपने-अपने राष्ट्र में अभूतपूर्व उत्सव किये थे। भगवान् ने भिक्षुओं को इस उत्सव के होने के कारण को बतलाते हुए—"भिक्षुओ! मैं पूर्वकाल में शङ्ख नामक ब्राह्मण होकर सुसीम नामक प्रत्येक बुद्ध के चैत्य की पूजा किया था, यह उत्सव और सत्कार-सम्मान उसी विपाक से हुआ है। अतीत काल में मैंने अल्पमात्र ही त्याग किया था, जिसका ऐसा महान् फल हुआ है।" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२९०—मत्तासुखपरिच्चागा पस्से च विपुलं सुखं।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं ॥ १ ॥

थोड़े सुख के परित्याग से यदि अधिक सुख की प्राप्ति की सम्भावना देखे, तो बुद्धिमान् पुरुष अधिक सुख के ख्याल से अल्प सुख का त्याग कर दे।

वैर से नहीं छूटता

(मुर्गी के अण्डे का खाने वाली की कथा)

२१, २

श्रावस्ती के पास पाण्डुपुर नामक एक गाँव था। वहाँ की एक कन्या मुर्गी

के दिये हुए अण्डों को खा जाती थी। मुर्गी मरते समय उनके बच्चों को खाने योग्य होने की प्रार्थना करके मरी और उसी घर में बिल्ली होकर उत्पन्न हुई। तथा दूसरी मुर्गी। शेष कथा 'नहि वेरेन वेरानि' गाथा की कथा जैसी ही है। यहाँ शास्ता ने—"वैर अवैर से ही शान्त होता है, वैर से नहीं!" कह कर दोनों को भी उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२९१—परदुक्खूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति।
बेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न परिमुच्चति ॥ २ ॥

दूसरे को दुःख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है, वह वैर के संसर्ग में पड़ा (व्यक्ति) वैर से नहीं छूटता।

अकर्त्तव्य को करने से आश्रव बढ़ते हैं

(भद्दियवासी भिक्षुओं की कथा)

२१, ३

भगवान् ने जातियावन नामक विहार में विहरते समय भद्दियवासी भिक्षु ध्यान-भावना करना छोड़कर नाना प्रकार की पादुका बनाने में लगे रहते थे। "भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। शास्ता ने उन भिक्षुओं को डाँट— "भिक्षुओ! तुम लोग अन्य काम से आकर अन्य ही काम में लगे हो।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

२९२—यं हि किच्चं तदपविद्धं अकिच्चं पन कयिरति।
उन्नलानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥ ३ ॥

जो कर्त्तव्य है उसे छोड़ता है, किन्तु जो अकर्त्तव्य है उसे करता है। ऐसे बड़े मलवाले प्रमादियों के आश्रव बढ़ते हैं।

२९३—येसञ्च सुसमारद्धा निच्चं कायगतासति।
अकिच्चन्ते न सेवन्ति किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥ ४ ॥

जिन्हें नित्य कायगता-स्मृति उपस्थित रहती है, वे अकर्त्तव्य को नहीं करते और कर्त्तव्य को निरन्तर करने वाले होते हैं। (उन) स्मृति और सम्प्रजन्य से युक्त (पुरुषों) के आश्रव अस्त हो जाते हैं।

माता-पिता को मारकर निर्दुःखी

(लकुण्टक भद्दिय स्थविर की कथा)

२१, ४

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन बहुत से आगन्तुक भिक्षु भगवान् की वन्दना कर एक ओर बैठे हुए थे। उसी समय लकुण्टक भद्दिय स्थविर भगवान् से थोड़ी दूर पर जा रहे थे। भगवान् ने उनकी ओर संकेत कर कहा—"भिक्षुओ! देखते हो उस भिक्षु को वह माता-पिता को मार कर दुःख रहित हो जा रहा है।" वे भिक्षु भगवान् की बात सुन एक दूसरे का मुख देखने लगे, तथा सन्देह में पड़कर भगवान् से पूछे—"तथागत क्या कह रहे हैं?" तब शास्ता ने उन्हें उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

२९४—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ५ ॥

माता (= तृष्णा), पिता (= अहंकार), दो क्षत्रिय राजाओं (= शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि) और अनुचर के साथ सारे राष्ट्र (= संसार की सारी आसक्तियाँ) को मार कर ब्राह्मण (= क्षीणाश्रव) दुःख रहित हो जाता है।

[इस गाथा की कथा ऊपर ही जैसी है। उस समय भी शास्ता ने लकुण्टक भद्दिय स्थविर की ओर संकेत करके उपदेश देते हुए इसे कहा—]

२९५—मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये।
संशय वेय्यग्घपञ्चमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥ ६ ॥

माता, पिता, दो श्रोत्रिय (= ब्राह्मण-राजाओं) (= शाश्वत दृष्टि और उच्छेद दृष्टि) और पाँचवें व्याघ्र (= पाँच नीवरण) को मारकर ब्राह्मण दुःख रहित हो जाता है।

(विषय कामना द्वेष, आलस्य, चित्त का→ औद्धत्य, पश्चात्ताप, संशय

बुद्धानुस्मृति आदि की रक्षा

(दारुसाकटिक पुत्र की कथा)

२१, ५

राजगृह में एक सम्यक् दृष्टि का पुत्र और एक मिथ्यादृष्टि का पुत्र था। वे दोनों गुल्ली-डण्डा एक साथ खेलते थे। सम्यक् दृष्टि का पुत्र खेलते समय "नमो बुद्धस्स" कहता था और दूसरा "नमो अरहन्तानं"। सम्यक्-दृष्टि के पुत्र की ही सदा विजय होती थी। उसकी बार-बार विजय होने को देख मिथ्या-दृष्टि का पुत्र भी "नमो बुद्धस्स" कह कर खेलना शुरू किया और धीरे-धीरे इसी का अभ्यास कर लिया।

एक दिन उसका पिता गाड़ी लेकर उसके साथ जंगल गया और लकड़ी से गाड़ी को लाद आने लगा। मार्ग में श्मशान के पास बैलों को खोल कर विश्राम करने लगा! वे बैल दूसरे बैलों के साथ राजगृह नगर में चले गये। बाद में उन्हें वह खोजने चला और सन्ध्या को नगर में घूमते हुए पाया। जब वह बैलों को लेकर चला, तब नगर-द्वार बन्द हो चुका था, अतः बाहर नहीं निकल सका। इधर उसका पुत्र अकेला था। वह रात में गाड़ी के नीचे सो रहा। रात में वहाँ श्मशान से दो भूत आये। उनमें एक सम्यक्-दृष्टि था और दूसरा मिथ्या-दृष्टि। मिथ्या दृष्टि ने उस लड़के को देखकर खाना चाहा, किन्तु सम्यक्-दृष्टि ने मना किया, तथापि वह न मान जाकर लड़के का पैर पकड़ खींचा, हब तक पूर्व अभ्यास के अनुसार लड़का "नमो बुद्धस्स" कहकर बैठ गया। उसे सुनकर दोनों भूतों को महा भय उत्पन्न हुआ। वे उसका दण्ड-कर्म करने को सोच लड़के के माँ-बाप के वेष में हो, राजा बिम्बिसार के प्रासाद से सुवर्ण-थाल में भोजन लाकर उसे खिला कर सुला दिये और रात भर वहाँ रह कर उसकी रक्षा किये! भूतों ने सुवर्ण-थाल को बैलगाड़ी की लकड़ी में छिपा दिया। प्रातः नगर में यह समाचार फैला कि राजा की सुवर्ण-थाल और भोजन-शाला से भोजन की चोरी हो गयी है। सिपाही इधर-उधर खोजते हुए न पाकर नगर से बाहर भी खोजने लगे और खोजते हुए वहाँ आकर गाड़ी में पाये। वे "यही चोर है" कहकर लड़के को राजा के

पास ले गये। लड़के ने सब वृत्तान्त राजा से कह सुनाया। राजा उसके माँ-बाप और उसे लेकर भगवान् के पास जा सब बात सुनाकर पूछा—"भन्ते! बुद्धानुस्मृति ही रक्षक होती है अथवा धर्मानुस्मृति आदि भी?" तब भगवान् ने—"महाराज! न केवल बुद्धानुस्मृति ही रक्षक होती है, जिनका छः प्रकार से चित्त अभ्यस्त है, उन्हें अन्य रक्षा या मन्त्रोषधि का काम नहीं है।" कह कर छः बातों को दिखलाते हुए इन गाथाओं को कहा—

२९६—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥ ७ ॥

जिन्हें दिन-रात नित्य बुद्धानुस्मृति बनी रहता है, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

२९७—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥ ८ ॥

जिन्हें दिन-रात नित्य धर्मानुस्मृति बनी रहती है, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सता स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

२९८—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्घगता सति ॥ ९ ॥

जिन्हें दिन-रात नित्य सङ्घानुस्मृति बनी रहती है, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

२९९—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥ १० ॥

जिन्हें दिन-रात नित्य कायगता-स्मृति बनी रहती है, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

३००—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥ ११ ॥

जिनका मन दिन-रात नित्य अहिंसा में रत रहता है, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

३०१—सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥ १२ ॥

जिनका मन दिन रात नित्य भावना में रत रहता है, वे गौतम (-बुद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोते और जागते हैं।

प्रव्रज्या दुष्कर है

(वज्जिपुत्तक भिक्षु की कथा)

२१, ६

भगवान् के वैशाली के सहारे महावन में विहरते समय एक वज्जिपुत्र भिक्षु आरण्य में विहार करते हुए आश्विन पूर्णिमा को नगर के उत्सव में बजने वाले बाजे आदि को सुनकर उदास हो गया और अपने भिक्षु जीवन को सबसे तुच्छ समझने लगा। तब एक देवता ने गाथा बोलकर उसे उद्विग्न किया। वह भिक्षु दूसरे दिन भगवान् के पास आ वन्दना कर सब कह सुनाया। शास्ता ने—पाँच दुःखों को बतलाते हुए इस गाथा को कहा—

३०२—दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावासा घरा दुखा।
दुक्खो समानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगू।
तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥ १३ ॥

कष्टपूर्ण प्रव्रज्या में रत होना दुष्कर है, न रहने योग्य घर दुःखद है, न अनुकूल मनुष्य के साथ निवास करना दुःखद है, (संसाररूपी-) मार्ग का पथिक होना दुःखद है, इसलिए (संसार रूपी-) मार्ग का पथिक न बने, न दुःख में पतित होवे।

शीलवान् सर्वत्र पूजित होता है

(चित्त गृहपति की कथा)

२१, ७

कथा "असतं भावनमिच्छेय्य" गाथा के वर्णन में आई हुई है। भगवान् ने चित्त गृहपति की प्रशंसा करते हुए इस गाथा को कहा—

३०३—सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो।
यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

श्रद्धावान्, शीलवान्, यश और भोग से युक्त (पुरुष) जिस-जिस स्थान में जाता है, वहीं-वहीं पूजित होता है।

दूर ही से प्रकाशित होते हैं

(चूल सुभद्दा की कथा)

२१, ८

अनाथपिण्डिक सेठ की लड़की चूल सुभद्दा का विवाह उग्रनगरवासी उग्गत सेठ के पुत्र से हुआ था। उग्गत सेठ मिथ्या-दृष्टि था। वह नंगे साधुओं का आदर-सत्कार करता और दान देता था। जब वे नंगे साधु आते थे, तब चूल सुभद्दा को भी उन्हें प्रणाम करने के लिए कहता था। वह सम्यक् दृष्टि कन्या उन नंगे साधुओं के पास जाने में लज्जा करती हुई नहीं जाती थी। उसकी इस क्रिया पर एक दिन उसके श्वसुर आदि बहुत नाराज हुए और कहे—"तू सदा हमारे साधुओं की निन्दा करती तथा अपने भिक्षुओं की प्रशंसा करती है, जरा अपने साधुओं को तो बुलाओ।" चूल सुभद्दा ने उनकी बात सुन पाँच सौ भिक्षुओं के लिए भोजन की सामग्री ठीक कर प्रासाद के ऊपर जा जेतवन की ओर मुख करके पञ्चाङ्ग प्रणाम कर—"भन्ते! कल के लिए पाँच सौ भदन्त लोगों के साथ मेरा दान स्वीकार करें।" कह, आकाश में आठ मुट्ठी पुष्प फेंकी। वे पुष्प परिषद् के बीच बैठकर उपदेश देते हुए शास्ता के ऊपर जाकर वितान की भाँति खड़े हो गये। उसी समय अनाथपिण्डिक सेठ ने उपदेश सुनते हुए कहा—"भन्ते! कल के लिये मेरा दान स्वीकार करें।

"गृहपति ! मैं कल के लिए चूलसुभद्दा द्वारा निमंत्रित हूँ।"

"भन्ते ! चूलसुभद्दा यहाँ से बीस योजन दूर है, वह कैसे आपको निमन्त्रित की है ?"

"गृहपति ! दूर रहते हुए भी सत्पुरुष सामने खड़े होने के समान प्रकाशित होते हैं।" भगवान् ने इस गाथा को कहा—

३०४—दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो'व पब्बता।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ॥ १५ ॥

सत्पुरुष दूर होने पर भी हिमालय पर्वत की भाँति प्रकाशते हैं असत्पुरुष पास में भी होने पर रात में फेंके बाण की भाँति नहीं दिखलाई देते।

[दूसरे दिन भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के साथ आकाश मार्ग से उग्र नगर गये और चूलसुभद्दा का दान ग्रहण किये। दानानुमोदन के पश्चात् सारा नगर बौद्ध हो गया।]

वन में अकेला विहरे

(अकेले विहरने वाले स्थविर की कथा)

२१, ९

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक भिक्षु अकेले ही बैठते थे। अकेले ही चंक्रमण करते थे, अकेले ही खड़े होते थे। चारों परिषद् के बीच यह बात फैल गई। तब भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कही। भगवान् ने साधुकार दे—"भिक्षु को एकान्तवासी होना चाहिये।" एकान्तवास के आनृशंस्य को कह कर इस गाथा को कहा—

३०५—एकासनं एकसेय्यं एको चरमतन्दितो।
एको दममत्तानं वनन्ते रमतो सिया ॥ १६ ॥

एक ही आसन रखने वाला, एक ही शय्या रखने वाला, अकेला विचरने वाला बन, आलस्य रहित हो, अपने को दमन कर अकेला ही वनान्त में रमण करे।

२२—निरयवग्गो

असत्यवादी नरक जाता है

(सुन्दरी परिव्राजिका की कथा)

२२, १

भगवान् और भिक्षु संघ के बढ़ते हुए लाभ-सत्कार को तैर्थिकों ने देखकर उसे रोकने के लिए एक उपाय सोचा। उन्होंने सुन्दरी परिव्राजिका को कहा कि वह बुद्ध की अकीर्ति फैलाये। सुन्दरी उनकी बात स्वीकार कर नित्य सन्ध्या को जेतवन की ओर जाती थी और परिव्राजकों की कुटी में रहकर प्रातः नगर में प्रवेश करती थी। जब श्रावस्ती वासी "कहाँ से आ रही है?" पूछते थे, तब "रात भर श्रमण गौतम को रति में रमण कराके जेतवन से आ रही हूँ।" कहती थी। कुछ दिनों के बाद तैर्थिकों ने गुण्डों को रुपये दे, सुन्दरी परिव्राजिका को मरवा कर जेतवन में फूलों के ढेर के नीचे छिपवा दिया और दूसरे दिन राजा के पास सन्देश भेजा—"महाराज! हम लोग सुन्दरी परिव्राजिका को नहीं देख रहे हैं, वह सदा श्रमण गौतम के पास जाया करती थी।" कोशल नरेश ने सुनकर सुन्दरी को जेतवन में ढूँढ़ने को कहा। तैर्थिक सुन्दरी के मृत-शरीर को छिपाये हुए स्थान से निकाल कर विमान पर रख राजा के पास ले जाकर कहे—"महाराज! देखिये शाक्य पुत्रीय श्रमणों के कार्य। वे अपने शास्ता की अकीर्ति को छिपाने के लिए इसे मारकर छिपा दिये थे।" राजा ने उन्हें नगर में घूम-घूमकर कहने को कहा। तैर्थिक नगर की गलियों में घूम-घूमकर वैसा ही कहे। भिक्षुओं को भिक्षाटन करना भी कठिन हो गया। भगवान् ने इस बात को सुनकर कहा—"भिक्षुओ, यह अकीर्ति सप्ताह भर ही रहेगी, तुम लोग निन्दा करने वालों को इस गाथा को कह कर उत्तर दो।"

३०६—अभूतवादी निरयं उपेति यो चापि
कत्वा 'न करोमीति' चाह।

उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ १ ॥

असत्यवादी नरक में जाता है और वह भी जो कि करके 'नहीं किया'-कहता है। दोनों ही प्रकार के नीचकर्म करने वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं।

[जिन गुण्डों ने सुन्दरी को मारा था, वे जब शराब पीकर मस्त हुए, तब सब बक दिये। राजा तैर्थिकों को पकड़वाकर दण्ड दिया और नगर में घूम-घूमकर यह कहने को कहा—"शाक्य पुत्रीय श्रमणों का दोष नहीं है, हम लोगों ने ही सुन्दरी को मरवाया था।" वे नगर में घूम-घूम कर कहे। भगवान् तथा भिक्षु संघ की कीर्ति और भी बढ़ गयी और तैर्थिकों को कोई पूछने वाला भी नहीं रहा।]

अपने पाप से नरक जाते हैं

(दुश्चरित्र के विपाक को भोगने वाले प्राणियों की कथा)

२२, २

एक दिन गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुए महामौद्गल्यायन स्थविर मुसकराये। लक्खण स्थविर ने उनके मुसकराने का कारण पूछा। उन्होंने पहले आई कथा के समान ही भगवान् के पास जाने पर कहा—"आवुस ! मैंने ऐसे पाँच भिक्षुओं को देखा जिनका शरीर आदिप्त था, चीवर, कायबन्धन आदि भी जल रहे थे।" इसे सुनकर भगवान् काश्यप भगवान् के समय उनके किये हुए दुश्चरित्र को कह और भी बहुत से दुश्चरित्र-कर्म के विपाक को दिखलाते हुए इस गाथा को कहा—

३०७—कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्ञता।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उपपज्जरे ॥ २ ॥

कंठ में काषाय वस्त्र डाले कितने ही पापी असंयमी हैं, जो पापी कि अपने आप कर्मों से नरक में उत्पन्न होते हैं।

लोहे का गोला खाना उत्तम है

(वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुओं की कथा)

२२, ३

भगवान् ने वैशाली में विहरते समय वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुओं को सुना कि वे ऋद्धिमान् न होते हुए भी ऋद्धि का प्रदर्शन करते हैं, आदि कथा चौथी पराजिका की कथाओं में आई हुई है, तब उन्होंने उन भिक्षुओं की नाना प्रकार से निन्दा करके इस गाथा कहा—

३०८—सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो ।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥ ३ ॥

असंयमी दुराचारी हो, राष्ट्र का पिण्ड खाने से अग्निशिखा के समान तप्त लोहे का गोला खाना उत्तम है ।

परस्त्रीगमन न करे

(खेम की कथा)

२२, ४

अनाथपिण्डिक सेठ का खेम नामक एक अत्यन्त रूपवान् भाग्नेय था । उसे स्त्रियाँ देखकर मोहित हो जाती थीं । वह भी परस्त्रीगमन में लगा रहता था । एक दिन अनाथपिण्डिक सेठ ने इस बात को जान उसे लेकर भगवान् के पास गया और "भन्ते ! इसे उपदेश दीजिये" कहा । शास्ता ने उसे संवेदात्मक कथा सुनाकर परस्त्री-सेवन के दोष को दिखलाते हुए इन गाथाओं को कहा—

३०९—चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो
आपज्जती परदारूपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं
निन्दं ततियं निरयं चतुत्थं ॥ ४ ॥

३१०—अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका
भीतस्स भीताय रती च थोकिका ।
राजा च दण्डं गरूकं पणेति
तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥ ५ ॥

प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ—अपुण्य का लाभ, सुख से न निद्रा, तीसरे निन्दा और चौथे नरक ।

(अथवा) अपुण्य लाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यन्त रति और राजा का भारी दण्ड देना । इसलिये मनुष्य को परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिये ।

दृढ़तापूर्वक श्रामण्य ग्रहण करे

(दुर्वच भिक्षु की कथा)

२२, ५

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक भिक्षु बिना जाने तृण काटा । पीछे उसे संकोच हुआ और वह एक भिक्षु के पास जाकर कहा—"आवुस ! मैंने तृण काटा है, इसमें क्या आपत्ति होती है ?" दूसरा "आवुस ! तृण काटने में क्या आपत्ति है ?" कह कर स्वयं भी हाथ से तृणों को उखाड़ा । भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कहा । शास्ता ने उस भिक्षु की अनेक प्रकार से निन्दा करके उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३११—कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयाय उपकड्ढति ॥ ६ ॥

जैसे ठीक से न पकड़ने से कुश हाथ को ही छेदता है, (इसी प्रकार) श्रामण्य ठीक से न ग्रहण करने पर नरक में ले जाता है ।

३१२—यं किञ्चि सिथिलं कम्मं सङ्किलिट्ठं च यं वतं ।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥ ७ ॥

जो कर्म शिथिल है, जो व्रत मलयुक्त है और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध है; वह महाफल (–दायक) नहीं होता।

३१३—कयिरा चे कयिराथेनं दल्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ॥ ८ ॥

यदि (प्रव्रज्या कर्म) करना है, तो उसे करे, उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ लग जावे, ढीला-ढाला श्रमण धर्म अधिक मल बिखरता है।

पाप न करना श्रेष्ठ है

(ईर्ष्यालु स्त्री की कथा)

२२, ६

श्रावस्ती का एक उपासक एक दिन अपनी दासी से मैथुन किया। उपासक की स्त्री ईर्ष्यालु थी। वह उस दासी के हाथ-पैर को बाँधकर नाक और कान को छेद, एक कोठरी में बन्द कर दी। 'उसके इस कर्म को कोई न जाने' सोच, स्वामी के पास जा, उसके साथ धर्म-श्रवण के लिये विहार में चली गयी। उसी समय उस उपासक के कुछ पाहुन घर पर आये और किवाड़ को खोल कर उस दासी को निकाले। दासी विहार में जाकर परिषद् के बीच उस बात को भगवान् को सुनाई। शास्ता ने उसकी बात सुन—"इसे कोई नहीं जानता है— "सोच, अल्पमात्र भी दुश्चरित नहीं करना चाहिये, और दूसरे के नहीं जानने पर भी सुचरित (=पुण्य) को ही करना चाहिये। छिपा कर किया हुआ दुश्चरित (=पाप) पश्चात्ताप कराता है, किन्तु सुचरित प्रमोद को ही बढ़ाता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३१४—अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥ ९ ॥

दुष्कृत (= पाप) का न करना श्रेष्ठ है, दुष्कृत करने वाला पीछे अनुताप करता है। सुकृत का करना श्रेष्ठ है, जिसको करके (मनुष्य) अनुताप नहीं करता।

क्षण भर भी न चूके

(बहुत से आगन्तुक भिक्षुओं की कथा)

२२, ७

बहुत से भिक्षु एक सीमान्त गाँव में जाकर वर्षावास किये। पहले महीने में ग्रामवासी उनका बड़ा आदर-सत्कार किये। दूसरे महीने में चोरों ने उस गाँव में चोरी किया, जिससे ग्रामवासी परेशान होकर गाँव की ठीक से मरम्मत और रक्षा करने में लगकर भिक्षुओं को बहुत नहीं जानमान सके। वे भिक्षु वर्षावास के व्यतीत होने पर भगवान् का दर्शन करने जेतवन गये। भगवान् ने पूछा—क्या भिक्षुओ ! भली प्रकार से वर्षावास में रहे हो न !"

"भन्ते ! पहले महीने में ही हम लोग भली प्रकार रहे। दूसरे महीने में चोरों ने गाँव में चोरी की, जिससे ग्रामवासी गाँव की रक्षा करने में ही लग गये। उन्हें हम लोगों की सेवा करने को अवकाश नहीं मिला।"

"भिक्षुओ ! मत सोचो, सुखपूर्वक रहने वाला विहार दुर्लभ होता है, भिक्षु को जैसे उन मनुष्यों ने गाँव की रक्षा की, वैसे ही अपनी रक्षा करनी चाहिये।" भगवान् ने कह कर इस गाथा को कहा—

३१५—नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता॥ १०॥

जैसे सीमान्त का नगर भीतर-बाहर खूब रक्षित होता है, उसी प्रकार अपने को रक्षित रखे। क्षण भर भी न चूके, क्योंकि क्षण को चूके हुए लोग नरक में पड़कर शोक करते हैं।

मिथ्या-दृष्टि से दुर्गति

(निर्ग्रन्थों की कथा)

२२, ८

एक दिन भिक्षुओं ने निर्ग्रन्थों को देखकर परस्पर कहा—'आवुसो ! बिल्कुल नंगा रहने वाले अचेलक साधुओं से ये निर्ग्रन्थ अच्छे हैं, जो सामने का

आग ढँके रहते हैं।" निर्ग्रन्थों ने उनकी बात सुनकर कहा—"हम लोग इस कारण से नहीं ढँकते हैं, प्रत्युत पंशु-रज आदि भी प्राणी हैं, वे कहीं भिक्षा-पात्र में न पड़ जायँ—सोचकर ढँकते हैं।" इस प्रकार भिक्षु और निर्ग्रन्थों में बड़ी देर तक वाद-विवाद भी हुआ।

भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने—"नहीं लज्जा करने योग्य बात में लज्जा करके और लज्जा करने योग्य बात में लज्जा नहीं करके दुर्गति-परायण होते हैं।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३१६—अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥ ११॥

लज्जा न करने की बात में जो लज्जित होते हैं और लज्जा करने की बात में लज्जित नहीं होते—वे प्राणी मिथ्यादृष्टि को ग्रहण करने से दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१७—अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं॥ १२॥

भय न करने की बात में भय देखते हैं और भय करने की बात में भय नहीं देखते—प्राणी मिथ्या-दृष्टि का ग्रहण करने से दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

सम्यक्-दृष्टि से सुगति
(तैर्थिक-शिष्यों की कथा)
२२, ५

अन्य तैर्थिकों के श्रावक अपने लड़कों को शपथ कराये कि वे कभी भी किसी भिक्षु को प्रणाम न करें और विहार में न जायें। एक दिन वे जेतवन के बाहर खेल रहे थे। खेलते हुए उन्हें प्यास लगी। तब वे एक उपासक के लड़के को यह कह कर विहार में भेजे कि वह जाकर स्वयं पानी पी उनके लिए भी लाये। वह उपासक-पुत्र विहार में जाकर भगवान् को प्रणाम कर सब बात कहा। भगवान् ने उसे पानी पिला कर कहा—"जाओ, उन लड़कों को

भी यहीं पानी पीने के लिये भेज दो।" वह जाकर उन्हें भी भेजा। वे आकर पानी पी भगवान् के पास बैठ गये। भगवान् से उन्हें ऐसा उपदेश दिया कि वे अचल-श्रद्धा-युक्त हो गये। जब यह समाचार उनके माँ-बाप को मिला तब वे—"हमारे लड़के बुरी धारणा वाले हो गये।" कह कर बहुत रोये। पड़ोसियों ने उन्हें समझा कर भगवान् के पास भेजा। वे उन लड़कों को भगवान् को सौंप देने के लिए विहार में आये। भगवान् ने उनके विचारों को देख उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३१८—अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे च वज्जदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ॥१३॥

जो अदोष में दोषबुद्धि रखनेवाले हैं और दोष में अदोषदृष्टि रखने वाले प्राणी मिथ्या-दृष्टि को ग्रहण करके दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

३१९—वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥१४॥

दोष को दोष जानकर और अदोष को अदोष जानकर प्राणी सम्यक्-दृष्टि को धारण करके सुगति को प्राप्त होते हैं।



२३—नागवग्गो

अपना दमन सबसे उत्तम है

(अपने लिए कही गई कथा)

२३, १

भगवान् के कौशाम्बी में विहरते समय मागन्दिय ने नगरवासियों को घूस देकर तथागत तथा भिक्षु संघ का आक्रोशन करके भगा देने के लिए तैयार किया। वे भिक्षुओं को देखकर—"तुम लोग मूर्ख हो, चोर हो, ऊँट हो, बैल हो, गधे, नारकीय हो, पशु हो" आदि कह कर आक्रोशन करने लगे। आनन्द स्थविर भगवान् के पास जा वन्दना कर कहा—"भन्ते! ये नगरवासी हम लोगों को आक्रोशन करते हैं, गाली देते हैं, यहाँ से दूसरी जगह चलें।"

"कहाँ आनन्द?"

"भन्ते! दूसरे नगर को।"

"वहाँ मनुष्यों के आक्रोशन करने पर कहाँ जायेंगे?"

"भन्ते! वहाँ से भी दूसरे नगर को चलेंगे।"

"आनन्द! ऐसा नहीं करना चाहिये। जहाँ अधिकरण (= विवाद) उत्पन्न हुआ है, वहीं उसके शान्त हो जाने पर दूसरे स्थान पर जाना चाहिये। "आनन्द! कौन आक्रोशन करते हैं।

दास-नौकर से लेकर सभी आक्रोशन करते हैं।"

आनन्द! जैसे संग्राम-भूमि में गया हाथी चारों दिशाओं से आये हुए वाणों को सहता है, उसी प्रकार बहुत से दुःशीलों द्वारा कही गई बात को सह लेना हमारा कर्तव्य है।" भगवान् ने कह कर अपने प्रति उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३२०—अहं नागोव सङ्गामे चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥ १ ॥

जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं कटु-वाक्य को सहन करूँगा; क्योंकि दुःशील लोग ही अधिक हैं।

३२१—दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु योतिवाक्यं तितिक्खति ॥२॥

दान्त (= शिक्षित) (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, दान्त पर राजा चढ़ता है, मनुष्यों में भी दान्त (= अपना दमन किया हुआ) श्रेष्ठ है, जो (दूसरों के) कटु-वाक्यों को सहन करता है।

३२२—वरं अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्तो ततो वरं ॥ ३ ॥

खच्चर, अच्छा जाति के घोड़े और महानाग हाथी दान्त कर लिये जाने पर अच्छे होते हैं। जिसने अपने को दमन कर लिया है, वह सबसे अच्छा है।

सुदान्त ही निर्वाण जाता है

(महावत भिक्षु की कथा)

२३, २

एक भूतपूर्व महावत भिक्षु अचिरवती नदी के किनारे एक महावत को हाथी का दमन करते हुए देखकर भिक्षुओं से कहा—"यदि यह अमुक स्थान पर बर्छी धँसाये, तो हाथी शीघ्र ही सीख लेगा।" वह महावत उस भिक्षु की बात सुन हाथी के उस स्थान पर बर्छी धँसा शीघ्र ही सिखा दिया। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने उस भूतपूर्व महावत भिक्षु की नाना प्रकार से निन्दा कर "भिक्षु! इस यानों से निर्वाण को नहीं जाया जा सकता, अपने को दमन करके ही जाया जा सकता है, इसलिए अपने को ही दमन करो। इनको दमन करने से तुझे क्या?" उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३२३—नहि एतेहि यानेहि गच्छेय अगतं दिसं।
यथात्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥ ४ ॥

इन यानों से कोई निर्वाण की ओर नहीं जा सकता। अपने को जिसने दमन कर लिया है, वही सुदान्त वहाँ पहुँच सकता है।

धनपालक ग्रास नहीं खाता

(किसी ब्राह्मण के पुत्रों की कथा)

२३, ३

श्रावस्ती में एक आठ लाख की सम्पत्ति वाला धनी ब्राह्मण था। उसको चार पुत्र थे। ब्राह्मण ने अपने पुत्रों का विवाह कर सारी सम्पत्ति उनमें बराबर-बराबर बाँट दिया। चारों पुत्र ब्राह्मण की सेवा करते थे और वह ब्राह्मण चारों के पास क्रमशः रहता था। कुछ दिन बीतने पर उनको स्त्रियों ने ब्राह्मण का अनादर करना प्रारम्भ किया। पुत्र भी अपनी स्त्रियों को नहीं डाटे। फलतः ब्राह्मण किसी के घर नहीं रह सका। वह कपाल ले भिक्षावृत्ति करके जीवन-यापन शुरू किया। इस प्रकार भिक्षा माँग कर खाते हुए एक दिन उसने सोचा, "अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरे पुत्र मुझे जानते-मानते ही नहीं हैं, सम्भव है श्रमण गौतम के पास चल कर कहने से मेरा कुछ भला हो सके, क्योंकि श्रमण गौतम निर्भीक, मुँह पर कहने वाला और प्रेमपूर्वक भाषण करने वाला है।" वह भगवान् के पास गया और अपनी दशा कह सुनाया। भगवान् ने उसे पाँच गाथाओं को सिखा कर कहा कि जब ब्राह्मणों की परिषद् बैठे और जहाँ तेरे पुत्र भी हों, वहाँ इन्हें सुनाना। ब्राह्मण ने वैसा ही किया। एक दिन नगर भर के ब्राह्मण एकत्र हुए थे, उसके भी चारों पुत्र आकर बैठे थे। वह गया और बीच परिषद् में उठ कर उन गाथाओं को सुनाया। उस समय ऐसी कानून थी कि जो माँ बाप का पालन-पोषण नहीं करता, वह मार डाला जाता। अतः मृत्यु भय से भयभीत हो, उसके पुत्र पैरों पर गिर कर क्षमा माँगे और आजीवन पालन-पोषण करने को प्रतिज्ञा किये, तब ब्राह्मण ने—पुत्र स्नेह से उन्हें बचवाया।

अब वे ब्राह्मण का खूब अच्छी तरह पालन-पोषण करने लगे। कुछ दिनों के बाद वह ब्राह्मण भगवान् के पास आकर दो वस्त्र दान कर सदा अपने प्राप्त चार भोजनों में से दो भगवान् को दिया। एक दिन ब्राह्मण-पुत्रों ने भिक्षु-

संघ के साथ भगवान् को निमन्त्रित कर दान दे कहा—"अब हम लोग अपने पिता का पालन-पोषण भली प्रकार करते हैं।" तब भगवान् ने—"तुम लोगों ने बड़ा उत्तम किया, माता-पिता का पालन-पोषण प्राचीन पण्डितों द्वारा किया गया है।" कह, 'मातुपोसक-नागराज-जातक' को विस्तार के साथ बतला कर इस गाथा को कहा—

३२४—धनपालको नामकुञ्जरो कटकप्पभेदनो दुन्निवारयो ।
बद्धो कबलं न भुञ्जति सुमिरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥५॥

सेना तितर-बितर करने वाला, दुर्धर्ष धनपालक नामक हाथी, (आज) बन्धन में पड़ जाने पर कवल नहीं खाता, और (अपने) हाथियों के जंगल को स्मरण करता है।

आलसी बार-बार गर्भ में पड़ता है

(प्रसेनजित कोशल की कथा)

२३, ४

एक दिन प्रसेनजित कोशल बहुत खाकर धर्मोपदेश सुनने के लिए भगवान् के पास आकर झँपने लगा। कथा पहले आ चुकी है। उसे उपदेश देते हुए भगवान् ने—"महाराज! अत्यन्त बहुत भोजन करने से यह दुःख होता है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३२५—मिद्धि यदा होति महग्घसो च निद्दायिता सम्परिवत्तसायी ।
महावराहो'व निवापपुट्ठो पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥ ६ ॥

आलसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोने वाला, खिला पिला कर पुष्ट किये मोटे सूअर की तरह मन्द बार-बार गर्भ में पड़ता है।

आज चित्त को पकड़ूँगा

(सानु श्रामणेर की कथा)

२३, ५

श्रावस्ती की एक उपासिका ने अपने पुत्र को बड़ी श्रद्धा से प्रव्रजित

किया। उसका सानु श्रामणेर नाम पड़ा। वह उपदेश करने में बड़ा दक्ष था। उपदेश देकर सदा अपने माँ-बाप को पुण्यांश देता था। उसके पूर्व जन्म की माँ यक्षिणी होकर उत्पन्न हुई थी, वह उसका अनुमोदन करके यक्षिणियों में बहुत सम्मानित हो गई थी। सानु जवान होने पर कामवासना के वशीभूत हो गृहस्थ हो जाने के लिए घर गया। उसी समय उसकी भूतपूर्व माता यक्षिणी ने उसके उस विचार को जान कर आ शरीर में प्रवेश कर गई। जब गाँव भर के लोग जुटे तब कही—"यह यदि धर्म करेगा तो ठीक है, नहीं तो कहीं जाकर भी नहीं बच सकता है।" थोड़ी देर में सानु श्रामणेर को होश आया और वह अपनी उस दशा को देख बड़ा दुःखी हुआ। गृहस्थ होने के विचार को छोड़कर फिर विहार में चला गया। उसकी माँ ने अष्टपरिष्कार तैयार कर उसकी उपसम्पदा करायी। उसके उपसन्न होने के थोड़े ही दिन बाद शास्ता ने चित्त-निग्रह में उत्साह बढ़ाने के लिए उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३२६—इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं
येनिच्छकं यत्थ कामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो॥ ७॥

पहले यह चित्त मनमाना जिधर चाहा उधर स्वच्छन्द जाता रहा, उसे आज मैं अच्छी तरह अपने वश में लाऊँगा—अंकुश ग्रहण करने वाला जैसे भड़के हाथी को।

अप्रमाद में रत होओ

(बद्धरेक हाथी की कथा)

२२, ६

कोशल नरेश को बद्धरेक नाम का एक महाबलवान् हाथी था। वह वृद्ध होने पर एक दिन तालाब के कीचड़ में फँस गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब नहीं निकला, तब लोगों ने राजा से कहा। राजा महावत को भेजा।

वह जाकर किनारे संग्राम-भेरी बजवाया। संग्राम-भेरी को सुन, हाथी वेग से उठ कर किनारे आ गया। भिक्षुओं ने इस बात को भगवान् से कहा। भगवान् ने—"भिक्षुओ! हाथी ने कीचड़ से अपना उद्धार कर लिया, किन्तु तुम लोग क्लेश-दुर्ग में पड़े हो, इसलिये योनिशः प्रयत्न करके तुम लोग भी अपना उद्धार करो।" कह कर इस गाथा को कहा—

३२७—अप्पमादरता होथ स-चित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं पङ्के सत्तोव कुञ्जरो ॥ ८ ॥

अप्रमाद में रत होओ, अपने चित्त की रक्षा करो। पंक में फँसे हाथी की तरह इस कठिन संसार से अपना उद्धार करो।

अकेला विहार करे

(पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा)

२३, ७

कथा "परे च न विजानन्ति" गाथा के वर्णन में आई हुई है। जब कुशल क्षेम पूछने पर भिक्षुओं ने—"भन्ते! आपने अकेले रह कर बड़ा दुष्कर किया है। जान पड़ता है सेवा-टहल भी करने वाला कोई न था।" कहा, तब शास्ता ने—"भिक्षुओ! पारिलेय्यक हाथी द्वारा मेरे सब काम किये गये, इस प्रकार के सहायक को पाकर एक साथ रहना उचित है और नहीं पाने पर अकेले रहना ही श्रेष्ठ है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

३२८—सचे लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारधीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा ॥

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पण्डित मित्र मिल जाये तो सभी विघ्नों को दूर कर उसके साथ स्मृतिवान् और प्रसन्न होकर विहार करे।

३२९—नो च लभेथ निपकं सहायं सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
राजाव रट्ठं विजितं पहाय एको चरे मातङ्गरञ्ञेव नागो ॥

यदि साथ विचरण करने वाला अनुकूल पंडित मित्र न मिले तो राजा की भाँति पराजित राष्ट्र को छोड़—हस्तिराज के समान अकेला विचरण करे।

३३०—एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा।
अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो॥ ११॥

अकेला रहना उत्तम है। मूर्ख के साथ मित्रता अच्छी नहीं। अकेले विचरे, पाप न करे। हस्तिराज की तरह अनुत्सुक होकर रहे।

माता-पिता की सेवा सुखकर है

(मार की कथा)

२३, ८

एक समय भगवान् हिमवन्त की ओर आरण्यक-कुटी में विहार कर रहे थे। उस समय राजा नाना प्रकार से राष्ट्रवासियों को पीड़ित करते थे। तब भगवान् के मन में ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—"क्या बिना किसी को पीड़ा दिये राज्य कर सकते हैं न?' मार ने भगवान् के इस वितर्क को जान आकर कहा—"भन्ते! भगवान् राज्य करें, सुगत! राज्य करें, सुखपूर्वक बिना किसी को पीड़ित किये राज्य कर सकते हैं।" भगवान् ने मार को फटकारते हुए—"मार! तेरा उपदेश दूसरा है और मेरा दूसरा ही। पाप! तेरे साथ मुझे मंत्रणा नहीं करनी है। मैं तो ऐसा कहता हूँ"—कह कर इन गाथाओं को कहा—

३३१—अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया तुट्ठीसुखा या इतरीतरेन।
पुञ्ञं सुखं जीवितसंखयम्हि सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहाणं॥

काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखकर है। जो मिले उससे सन्तुष्ट रहना सुख है। मृत्यु के उपरान्त पुण्य सुख है। सभी दुःखों का प्रहाण सुख है।

३३२–सुखा मेत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा ।
सुखा सामञ्ञता लोके अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा ॥ १३ ॥

संसार में माता और पिता की सेवा सुखकर है । श्रमणभाव (=संन्यास) सुखकर है और ब्राह्मणपन (= निष्पाप होना) सुखकर है ।

३३३–सुखं याव जरा शीलं सुखा श्रद्धा पतिट्ठिता ।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥ १४ ॥

वृद्धावस्था तक शील का पालन सुखकर है, स्थिर श्रद्धा का होना सुखकर है । ज्ञान का लाभ करना सुखकर है । पापों का न करना सुखकर है ।



२४—तण्हावग्गो

तृष्णा की जड़ खोदो

(कपिल मच्छ की कथा)

२४, १

भगवान् के जेतवन में विहरते समय श्रावस्ती के नगर द्वार पर बसे हुए केवट्ट गाँव के मलाहों के लड़कों ने अचिरवती नदी में जाल फेंक कर सुवर्ण-वर्ण की एक मछली को पकड़ा। उसके शरीर का रंग सुवर्ण जैसा था, किन्तु मुख से बड़ी दुर्गन्ध निकलती थी। मलाहों ने उसे राजा को दिखाया। राजा एक द्रोणी में उसे रखवा उनके साथ शास्ता के पास गया। उस समय मछली ने मुख खोला, जिससे सारा जेतवन दुर्गन्ध से भर गया। राजा ने भगवान् को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! क्यों इसका शरीर सुवर्ण जैसा है, किन्तु मुख से दुर्गन्ध निकलती है?

"महाराज! यह काश्यप भगवान् के शासन में कपिल नामक एक त्रिपिटकधर अभिमानी और दुराचारी भिक्षु था। इसने किसी की भी बात नहीं मानकर काश्यप भगवान् के शासन को गिराया था। जो इसने बहुत दिनों तक बुद्ध-वचन का पाठ किया और बुद्ध की प्रशंसा की, उसके फल से सुवर्ण-वर्ण हुआ है, और जो इसने भिक्षुओं को भला-बुरा कहा, उसके फल से इसके मुख से दुर्गन्ध निकल रही है। महाराज! इससे कहलायें?"

"कहलाइये भन्ते!"

तब शास्ता ने पुछा—"मैं ही कपिल है।"

"कहाँ से आये हो?"

"भन्ते! अवीचि महानरक से।"

"इस समय तू कहाँ जायेगा?"

"अवीचि नरक को ही भन्ते!" यह कह कर वह उदास हो द्रोणी में शिर

पटक कर मर गया और उसी समय अवीचि नरक में जाकर उत्पन्न हुआ। लोग संविग्न हो गये, उन्हें रोमांच हो आया। तब भगवान् ने उस समय एकत्रित हुए लोगों की चित्त-प्रवृत्ति को देखकर "धम्म चरियं ब्रह्मचरियं" आदि सुत्तानिपात के कपिल सुत्त का उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३३४—मनुजस्स प्रमत्त चारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवति हुराहुरं फलमिच्छं'व वनस्मि वानरो ॥१॥

प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भाँति बढ़ती है, वन में फूल की इच्छा से कूद-फाँद करते बानर की तरह वह जन्मजन्मान्तर में भटकता रहता है।

३३५—यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवड्ढं'व वीरणं ॥ २ ॥

यह विष रूपी नीच तृष्णा जिसे अभिभूत कर देता है, उसके शोक वर्षाकाल में वीरण तृण की भाँति वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

३३६—यो चेतं सहती जम्मिं तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पतन्ति उदविन्दू'व पोक्खरा ॥ ३ ॥

जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जल के बिन्दु।

३३७—तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो'व वीरणं।
मा वो नलं व सोतो व मारो भञ्जि पुनप्पुनं ॥ ४ ॥

इसलिए मैं तुम्हें, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूँ—"जैसे खस के लिए लोग उशीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ खोदो। मत तुम्हें स्रोत में (उत्पन्न) नरकुल की भाँति मार बार-बार तोड़े।"

तृष्णा को दूर करे

(सूअर की बच्ची की कथा)

२४, २

वेणुवन में विहार करते समय भगवान् एक दिन भिक्षाटन जाते हुए एक सूअर की बच्ची को देखकर मुसकराये। आनन्द स्थविर ने भगवान् के मुसकराने का कारण पूछा। शास्ता ने कहा—"आनन्द! यह सूअर की बच्ची ककुसन्ध भगवान् के शासन में एक आसनशाला के पास मुर्गी होकर उत्पन्न हुई थी। वह एक योगावचर भिक्षु के स्वाध्याय करने के शब्द को सुनकर वहाँ से च्युत हो उबरी नाम की राजकन्या होकर उत्पन्न हुई। वह एक दिन पाखाना घर में कीड़ों को देखकर फुलवक-संज्ञा को भावना कर प्रथम-ध्यान को प्राप्त हो गई। वह जीवन भर वहाँ रहकर च्युत हो ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ से च्युत होकर आवागमन के अनुसार चक्कर करती हुई इस समय सूअर की बच्ची हुई है। इसी बात को देखकर मैंने मुसकराया।" उसे सुनकर आनन्द स्थविर प्रमुख भिक्षु महान् संवेग को प्राप्त हुए। शास्ता ने उन्हें संवेग उत्पन्न कर भव-तृष्णा के दोषों को दिखलाते हुए नगर की वीथी में खड़े हुए ही इन गाथाओं को कहा—

३३८—यथापि मूले अनुपद्दवे दल्हे
छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहते
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥ ५ ॥

जैसे दृढ़मूल के बिल्कुल नष्ट हो जाने से कटा हुआ वृक्ष फिर भी बढ़ जाता है, वैसे तृष्णा और अनुशय के समूल नष्ट न होने से यह दुःख-चक्र बार-बार प्रवर्तित होता रहता है।

३३९—यस्स छत्तिंसति सोता मनापस्सवना भुसा।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥ ६ ॥

जिसके छत्तीस स्रोत संसार में प्रिय पदार्थों की ओर अत्यन्त प्रवाहित होते हैं, उसके रागपूर्ण संकल्प उसे दुर्दृष्टि की ओर बहा ले जाते हैं।

३४०—सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तञ्च दिस्वा लतं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ॥ ७ ॥

यह स्रोत सभी ओर बहते हैं। लता फूटकर निकलती है। उस उत्पन्न हुई लता को देख, उसके मूल का प्रज्ञा से काट डालो।

३४१—सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सातसिता सुखेसिनो ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥८॥

तृष्णा की धारायें प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं। सुख के फेर में पड़े उसकी धारा में पड़ते हैं और बार-बार जन्म-जरा के चक्र में आते हैं।

३४२—तासिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो।
सञ्ञोजनसङ्गसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय ॥९॥

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं संयोजनों में फँसे लोग पुनः पुनः चिरकाल तक दुःख पाते हैं।

३४३—तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो।
तस्मा तसिनं विनोदये भिक्खू आकङ्खी विरागमत्तनो ॥१०॥

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, अपने वैराग्य की आकांक्षा रख भिक्षु तृष्णा को दूर करे।

बन्धन की ओर दौड़ता है

(एक चीवर छोड़े भिक्षु की कथा)

२४, ३

भगवान् के वेणुवन में विहार करते समय महाकश्यप स्थविर का एक शिष्य चारों ध्यानों को प्राप्त करके भी अपने मामा के घर एक स्त्री के

गुह्य-स्थान को देखकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो गया। घर के लोगों ने उसे आलसी देखकर घर से निकाल दिया। वह चोरी करके जीवन-यापन करने लगा। एक दिन चोरी करते हुए उसे पकड़कर राजा को दिखाये। राजा ने प्राण-दण्ड की आज्ञा दिया। जिस समय जल्लाद उसे मारने के लिए ले जा रहे थे, उस समय भिक्षाटन के लिए जाते हुए महाकाश्यप स्थविर ने उसे देख, उसके पास आ कर कहा—"पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो।, स्थविर के कहते ही उसे स्मरण हो आया और वध स्थान को जाते हुए ही ध्यानों को प्राप्त कर लिया।

जल्लाद जब उसे वधस्थान में ले जाकर मारना चाहे, तो उसे बिल्कुल ही भय नहीं हुआ। हथियार भी चलाने पर उसके शरीर पर असर नहीं करता था। उसने यह समाचार राजा को सुनाया। राजा ने आश्चर्य चकित हो उसे छोड़ देने की आज्ञा दी। शास्ता के पास भी जाकर इसे कहे। शास्ता ने प्रकाश व्याप्त कर उसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३४४—यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥११॥

जो सांसारिक बन्धनों से छूट, (तप) वन में वास करता हुआ फिर (तप-) वन को छोड़ संसार-तृष्णा (= बन) की ही ओर दौड़ता है, उस व्यक्ति को (वैसे ही) जानो जैसे (बन्धन) से मुक्त (पुरुष) फिर बन्धन ही की ओर दौड़े।

[वह इस उपदेश को सुनकर उदय-व्यय की भावना कर स्रोतापत्ति फल को पा, समापत्ति के सुख का अनुभव करते हुए आकाशमार्ग से जा भगवान् को प्रणाम कर राजा सहित परिषद् के बीच अर्हत्व पाया।]

इच्छा दृढ़ बन्धन है

(बन्धनागार की कथा)

२४, ४

एक दिन बहुत से आगन्तुक भिक्षुओं ने श्रावस्ती में भिक्षाटन करके राजकीय बन्धनागार में बहुत से चोरों को बँधा हुआ देखा। वे जब भगवान् के

पास गये, तब उन्होंने प्रणाम कर पूछा—"भन्ते ! हम लोगों ने बन्धनागार में बहुत से चोरों को जंजीर, रस्सी आदि से बँधा हुआ देखा। वे ऐसा बँधे थे कि किसी प्रकार भी भाग नहीं सकते हैं। क्या भन्ते ! इस बन्धन से भी कोई दृढ़तर बन्धन है ?"

"भिक्षुओ ! यह क्या बन्धन है ! जो कि धन-धान्य, पुत्र स्त्री आदि का क्लेश-बन्धन है, यह उससे सैकड़ों, हजारों गुना दृढ़तर है।" कहकर भगवान् ने इन गाथाओं को कहा—

३४५—न तं दल्हं बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥१२॥

यह जो लोहे, लकड़ी या रस्सी का बन्धन है, उसे बुद्धिमान् (जन) दृढ़ बन्धन नहीं कहते, (वस्तुतः दृढ़ बन्धन है जो यह) मणि, कुण्डल, पुत्र, स्त्री में इच्छा का होना है।

३४६—एतं दल्हं बन्धनमाहु धीरा
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥ १३ ॥

धीर पुरुष इसी को दृढ़ बन्धन अपहारक शिथिल और दुस्त्याज्य कहते हैं, वह अपेक्षारहित हो, तथा काम-सुखों को छोड़, इस (दृढ़-) बन्धन को छिन्नकर प्रव्रजित होते हैं।

राग-रक्त स्रोत में पड़ते हैं

(खेमा थेरी की कथा)

२४, ५

राजा बिम्बसार की अग्रमहिषि खेमा को अपने रूप का बड़ा अभिमान था। वह "बुद्ध रूप की निन्दा करते हैं" सुनकर कभी भी भगवान् के पास वेणुवन नहीं जाती थी। एक दिन गायकों द्वारा वेणुवन की प्रशंसा सुनकर वेणुवन-दर्शनार्थ जाने को मन हुआ। भगवान् ने उनके आगमन को जान,

परिषद् के बीच उपदेश हुए एक अत्यन्त रूपवती स्त्री को बनाया, जो भगवान् के पीछे खड़ी हुई पंखा झल रही थी। खेमा वेणुवन पहुँच कर जब उस रूपवती को देखी तब बैठकर उसी के रूप को आश्चर्य में पड़कर देखने लगी। भगवान् ने—"खेमे! तू समझती है कि रूप में सार है, किन्तु इस शरीर के असार होने को देख!" कह कर "आतुरं असुचिं" गाथा को कहा। गाथा को सुनकर वह स्रोतापन्न हो गई। तब भगवान् ने—"खेमे! ये प्राणी राग में अनुरक्त, द्वेष से दूषित और मोह से मूढ़ हुए अपने तृष्णा-स्रोत को नहीं लाँघ सकते हैं, प्रत्युत उसी में पड़े रहते हैं।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३४७—ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं
सयं कतं मक्कटकोव जालं।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा
अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय ॥ १४ ॥

जो राग में रक्त हैं, वह जैसे मकड़ी अपने बनाए जाल को पकड़ती है, (वैसे ही) अपने बनाये, स्रोत में पड़ते हैं। धीर (पुरुष) इस (स्रोत) को भी छेदकर सारे दुःखों को छोड़ आकांक्षारहित हो चल देते हैं।

[उपदेश को सुन कर वह अर्हत्व पा ली और भगवान् के पास प्रव्रजित हो, अग्र-श्राविका हुई।]

सभी को त्याग दो

(उग्गसेन श्रेष्ठी-पुत्र की कथा)

२४, ६

राजगृह में प्रतिवर्ष पाँच सौ नट आकर विशेष रूप से खेल दिखाते थे। एक बार जब नटों का खेल हो रहा था, तब राजगृह नगर के श्रेष्ठी का उग्गसेन नामक पुत्र एक नट-कन्या के खेल को देखकर उस पर मोहित हो उसी से अपना विवाह कर नटों के साथ हो लिया। वह उनके साथ घूमते हुए थोड़े

ही दिनों में नट-विद्या में निपुण भी हो गया। दूसरे वर्ष जब नटों का समूह राजगृह आया, तब वह घोषणा करवा दिया कि 'कल श्रेष्ठी-पुत्र उग्गसेन का खेल होगा, देखने वाले लोग आयें।'

उस दिन प्रातःकाल भगवान् ने वेणुवन में विहार करते हुए उग्गसेन को देखा। जब उग्गसेन साठ हाथ ऊँचे बाँस पर चढ़कर खेल दिखाना शुरू किया, तब भगवान् भिक्षाटन के लिये निकले और वहाँ जाकर ऐसा किये कि सभी दर्शक उग्गसेन की ओर से मुख मोड़ कर भगवान् को ही देखने लगे। उग्गसेन उदास होकर बैठ रहा। भगवान् ने उसे उदास देख, महामौद्गल्यायन स्थविर से कहा—"मौद्गल्यायन! उग्गसेन को कहो कि वह अपना खेल दिखाये।" स्थविर ने उग्गसेन को खेल दिखाने के लिए कहा। स्थविर की बात सुन, उग्गसेन प्रसन्न हो बाँस के ऊपर खड़े होकर नाना प्रकार के खेल दिखाया। तब शास्ता ने—"उग्गसेन! बुद्धिमान् व्यक्ति को भूत, भविष्यत् और वर्तमान के स्कन्धों में आसक्ति को त्याग कर जन्म आदि से भी छुटकारा पाना चाहिये।" कह कर इस गाथा को कहा—

३४८—मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसी ॥१५॥

भूत, भविष्यत् और वर्तमान के (सभी स्कन्धों को) त्याग दो, (उन्हें त्याग) भव को पार हो सभी से मुक्त मन वाला हो, फिर जन्म और जरा को नहीं प्राप्त होंगे।

[उपदेश को सुन अर्हत्व पा बाँस से उतर कर उग्गसेन भिक्षु हो गया।]

रागी अपने लिये बन्धन बनाता है

(एक तरुण भिक्षु की कथा)

२४, ७

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक तरुण भिक्षु पर एक स्त्री मोहित होकर उसे गृहस्थ बनाने के लिए नाना प्रकार के प्रलोभन दी। वह भिक्षु उसकी बातों में आकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो जाने के लिए तैयार हो गया।

जब भिक्षुओं को इस बात का पता लगा, तब वे उसे समझाकर भगवान् के पास ले गये। भगवान् ने उस स्त्री के पूर्व चरित्र को कहते हुए 'चुल्ल धनुग्गह जातक' को प्रकाशित कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३४९—वितक्कपमथितस्स जन्तुनो तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति एसो खो दल्हं करोति बन्धनं ॥१६॥

जो प्राणी सन्देह से मथित, तीव्र राग से युक्त, शुभ ही शुभ देखने वाला है, उसका तृष्णा और भी अधिक बढ़ती है, वह (अपने लिये) और भी दृढ़ बन्धन बनाता है।

३५०—वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो।
एस खो व्यन्तिकाहिनी एसच्छेच्छति मारबन्धन ॥१७॥

सन्देह के शान्त हो जाने में जो रत है, सदा सचेत रह (जो) अशुभ की भावना करता है, वह मार के बन्धन को छिन्न करेगा, तृष्णा का विनाश करेगा।

अन्तिम देहधारी

(मार की कथा)

२४, ८

भगवान् के जेतवन मे विहरते समय एक दिन बहुत से आगन्तुक भिक्षु आये। वे राहुल के रहने के स्थान पर जाकर उन्हें उठाये। राहुल सोने के लिए अन्य स्थान नहीं देखते हुए, गन्धकुटी के बरामदे में जाकर सो रहे। उस समय राहुल श्रामणेर होते हुए भी अर्हत्व पा लिये थे। मार ने उन्हें बरामदे में सोया हुआ देख हाथी का वेष धारण कर आ सूँड से उनके सिर को घेर कर क्रौंच शब्द किया। शास्ता ने गन्धकुटी के भीतर से ही मार को जान—"मार! तेरे जैसे लाखों भी मेरे पुत्र को भय नहीं उत्पन्न कर सकते हैं, मेरा पुत्र निर्भीक, तृष्णा रहित, महाबलवान और महाबुद्धिमान है।" कह कर इन गाथाओं को कहा —

३५१—निट्ठङ्गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमोयं समुस्सयो ॥ १८ ॥

जिसने अर्हत्व पा लिया है, जो (राग आदि के त्रास से) निर्भीक है, जो तृष्णा रहित और निर्मल है, जिसने भव के शल्यों को काट दिया, यह उसका अन्तिम देह है।

३५२—वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बापरानि च ॥
स वे अन्तिम-सारीरो महापञ्ञोति वुच्चति ॥ १९ ॥

जो तृष्णा-रहित परिग्रह रहित, निरुक्ति और पद (=चार प्रतिसम्भिदा) का जानकर है, और जो अक्षरों को पहले पीछे रखना जानता है, वही अन्तिम शरीरवाला तथा महा प्रज्ञ कहा जाता है।

बुद्ध सर्वज्ञ हैं

(उपक आजीवक की कथा)

२४, ९

भगवान् सर्वप्रथम ऋषिपतन मृगदाय में पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देने के लिए उरुवेला से कासी की ओर आ रहे थे। मार्ग में उन्हें उपक आजीवक मिला। वह तथागत को देख—"आवुस! तेरी इन्द्रियाँ परिशुद्ध और विमल हैं, तुम किसे उद्देश्य करके प्रव्रजित हुए हो, कौन तुम्हारे शास्ता हैं, या तुम किसके धर्म को मानते हो?" पूछा। तब शास्ता ने—"मेरे आचार्य या उपाध्याय नहीं हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

३५३—सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कुमुद्दिसेय्यं ॥ २० ॥

मैं (राग आदि) सभी का परास्त करना वाला हूँ, सभी बातों का जानकार हूँ, सभी धर्मों (=तृष्णा, दृष्टि आदि) में अलिप्त हूँ, सर्व-त्यागी हूँ, तृष्णा के नाश से मुक्त हूँ, (विमल ज्ञान को) अपने ही जानकर (मैं अब) किसको (अपना गुरु) बतलाऊँ ?

तृष्णा-नाश से सर्व-विजय

(शक्र के प्रश्न की कथा)

२४, १०

एक बार देवताओं में यह प्रश्न उठा कि दानों में कौन दान श्रेष्ठ है ? रसों में कौन रस श्रेष्ठ है ? रतियों में कौन रति श्रेष्ठ है ? और तृष्णा-क्षय क्यों श्रेष्ठ कहा जाता है ? कोई भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता था। देवताओं ने सबसे पूछने के बाद शक्र (= इन्द्र) से पूछा। यह भी इनका उत्तर न दे सकते हुए, देवताओं के साथ ही जेतवन में भगवान् के पास आकर इन प्रश्नों को पूछा। भगवान् ने—'महाराज ! सब दानों में धर्म-दान श्रेष्ठ है, सब रसों में धर्म-रस श्रेष्ठ है, सब रतियों में धर्म-रति श्रेष्ठ है और तृष्णा-क्षय अर्हत्व दिलाने के कारण श्रेष्ठ ही है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३५४—सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥ २१ ॥

धर्म का दान सारे दानों में बढ़कर है, धर्म-रस सारे रसों से प्रबल है, धर्म में रति सब रतियों से बढ़कर है, तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है।

तृष्णा में पड़कर अपना हनन करता है

(अपुत्रक श्रेष्ठी की कथा)

२४, ११

श्रावस्ती के एक अपुत्रक श्रेष्ठी के मर जाने के बाद कोशल नरेश ने सात

दिन तक उसके धन को गाड़ियों से ढुलवाकर राजभवन से मँगा, दोपहर में भगवान् के पास गया। भगवान् ने उससे दोपहर में आने का कारण पूछा। राजा ने सब समाचार कहकर—"भन्ते! उस अपुत्रक श्रेष्ठी के पास इतना धन था, फिर भी वह रूखा सूखा खाता था, फटा-पुराना पहनता था और टूटे हुए रथों पर चलता था।" कहा। इसे सुनकर भगवान् ने कहा—"महाराज! वह पूर्वकाल में तगरशिखी नामक प्रत्येक बुद्ध को दान दिलाया था, जिससे यह धन-सम्पत्ति पाया, किन्तु दान दिला कर पीछे पश्चात्ताप किया था, जिससे उसका मन अच्छा खाने, पहनने में नहीं लगता था। सम्पत्ति के कारण भतीजे को जंगल में ले जाकर मार डाला था, जिससे उसे एक भी सन्तान नहीं हुई। इस समय वह मरकर महारौरव नरक में उत्पन्न हुआ है, क्योंकि पुराना किया हुआ पुन्य समाप्त हो गया और उसने नया पुण्य नहीं किया।" राजा ने भगवान् की बात सुन कहा—"भन्ते! उसने बड़ा बुरा कर्म किया जो कि आप जैसे बुद्ध के पास के ही विहार में रहते हुए भी न दान दिया, न धर्म श्रवण किया और अपनी इतनी धन-सम्पत्ति को छोड़कर मर गया।" शास्ता ने—"ऐसे ही महाराज! दुर्बुद्धि पुरुष धन-सम्पत्ति पाकर निर्वाण की तलाश नहीं करते हैं और धर्म-सम्पत्ति के कारण उत्पन्न तृष्णा उनका दीर्घ काल तक हनन करती है।" कहकर इस गाथा को कहा—

३५५—हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अञ्ञे' व अत्तनं॥ २२॥

(संसार को) पार होने की कोशिश न करने वाले दुर्बुद्धि (पुरुष) को भोग नष्ट करते हैं. भोग की तृष्णा में पड़कर (वह) दुर्बुद्धि पराये की भाँति अपने ही को हनन करता है।

कहाँ का दान महाफलवान होता है

(अङ्कुर की कथा)

२४, १२

कथा "ये झानपसुता धीरा" गाथा के वर्णन में आई हुई है। भगवान् के तावतिंस-भवन में पाण्डुकम्बल शिलासन पर बैठे समय देवताओं में यह चर्चा

चली कि इन्दक के अपने लिये लाये भोजन में से कलछी भर अनुरुद्ध स्थविर को दिलाया दान का फल अंकुर के दस हजार वर्ष तक बारह योजन तक चूल्हों की कतार बनवाकर दिये हुए दान से भी महाफल हुआ। इसे सुनकर शास्ता ने—"अंकुर! दान चुनकर देना चाहिये। ऐसा करने से वह अच्छे खेत में भली प्रकार बोये हुए बीज के सदृश महाफल होता है, किन्तु तूने वैसा नहीं किया, इसी हेतु तेरा दान महाफल नहीं हुआ।" कहकर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३५६—तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २३॥

खेतों का दोष तृण है, प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिये रागरहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

३५७—तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २४॥

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिये द्वेषरहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल है।

३५८—तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २५॥

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष मोह है, इसलिये मोह-रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

३५९—तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं॥ २६॥

खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिये इच्छारहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।

२५—भिक्खुवग्गो

सर्वत्र संवर से दुःखों से मुक्ति

(पाँच भिक्षुओं की कथा)

२५, १

भगवान् के जेतवन में विहरते समय पाँच ऐसे भिक्षु थे जो पञ्चेन्द्रिय में से एक का संवर करते थे। एक दिन उन पाँचों में यह बात न तय हो पाती थी कि किसका संवर करना कठिन है। वे अन्त में भगवान् के पास गये और पूछे—"भन्ते! इन पाँच इन्द्रियों में से किसका संवर दुष्कर है?" भगवान् ने किसी को भी हीन न बतला—"भिक्षुओ! इन सबका संवर दुष्कर ही है, भिक्षु को चाहिये कि इन सभी द्वारों का संवर करे! इनके संवर से सारे दुःखों से मुक्ति हो जाती है" कहकर इन गाथाओं को कहा—

३६०—चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ॥ १ ॥

आँख का संवर (=संयम) भला है, भला है कान का संवर, घ्राण का संवर भला है, भला है जीभ का संवर।

३६१—कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥ २ ॥

शरीर का संवर भला है, भला है वचन का संवर, मन का संवर भला है, भला है सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर। सर्वत्र संवर-युक्त भिक्षु सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।

संयमी ही भिक्षु है

(हंस को मारने वाले भिक्षु की कथा)

२५, २

भगवान् के जेतवन में विहरते समय दो तरुण भिक्षु अचिरवती नदी के किनारे जा नहाकर धूप ले रहे थे। उस समय आकाश से हंसों का एक झुण्ड उड़ता हुआ जा रहा था। उसे देख एक भिक्षु ने कंकड़ उठाकर एक हंस की आँख में मारा जो उसकी दोनों आँखों को छेदकर बाहर निकल गया। हंस बोलता हुआ भूमि पर आ गिरा। भिक्षुओं ने उस भिक्षु की इस क्रिया की बड़ी निन्दा की और जाकर भगवान् से कहा। भगवान् ने उस भिक्षु को बुलाकर नाना प्रकार से डाँट—"भिक्षु! क्यों तूने ऐसे धर्म में प्रव्रजित होकर जीवहिंसा की? तुझे संकोचमात्र भी नहीं हुआ। तूने बहुत बड़ा अपराध किया है। भिक्षु को हाथ, पैर और वचन से संयत होना चाहिये।" कहकर कालिङ्ग जातक का उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३६२—हत्थसञ्ञतो पादसञ्ञतो वाचाय सञ्ञतो सञ्ञतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं॥३॥

जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो घट के भीतर (=आध्यात्म) रत, समाधियुक्त, अकेला और सन्तुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं।

मधुर-भाषी

(कोकालिक की कथा)

२५, ३

कोकालिक भिक्षु अग्रश्रावकों को आक्रोशन करके पृथ्वी में धँस कर जब मर गया* और पद्म नरक में उत्पन्न हुआ, तब उसके सम्बन्ध में चर्चा सुन भगवान् ने "भिक्षुओ! न केवल इसी समय पहले भी कोकालिक भिक्षु अपने मुख के ही कारण नष्ट हो गया।" कह, बहुभाणिक जातक को प्रकाशित कर—

---

* देखो, कोकालिक सुत्त, सुत्तनिपात।

"भिक्षुओ ! भिक्षु को मुख में संयम रखना चाहिये।" ऐसे उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३६३—यो मुखसञ्ञतो भिक्खु मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥

जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत नहीं होता है, अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है।

धर्म में रमण करने से परिहानि नहीं

(धम्माराम स्थविर की कथा)

२५, ४

भगवान् के यह कहने पर कि "चार महीने के पश्चात् मेरा परिनिर्वाण होगा।" पृथक्जन भिक्षु आँसू नहीं रोक सके, अर्हन्तों को भी धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। उस समय धम्माराम नाम के एक स्थविर "मैं अभी राग-रहित नहीं हुआ और शास्ता का परिनिर्वाण होने जा रहा है, शास्ता के रहते ही मुझे अर्हत्व प्राप्त करना चाहिये।" सोच, एकान्त में जाकर केवल धर्म का चिन्तन करते थे, धर्म में ही रत रहते थे, भिक्षुओं के साथ बातचीत नहीं करते थे, न तो बोलने पर उत्तर ही देते थे। भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही। भगवान् ने उन्हें बुलवा कर पूछा—"भिक्षु ! सत्य है कि तू अन्य "भिक्षुओं से बातें नहीं करता ?"

"भन्ते ! सत्य है।"

"भिक्षु ! तू क्यों ऐसा कर रहा है ?"

तब धम्माराम स्थविर ने अपने सारे विचारों को कह सुनाया। उसे सुनकर भगवान् ने उन्हें साधुकार दे—"भिक्षुओ ! अन्य भी भिक्षु को जिसे मुझ पर स्नेह हो, धम्माराम के समान ही होना चाहिये। माला-गन्ध आदि से मेरी पूजा करने वाले पूजा नहीं करते, प्रत्युत जो धर्म के अनुसार आचरण करते हैं, वही मेरी पूजा करते हैं।" कहकर इस गाथा को कहा—

३६४—धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति ॥ ५ ॥

धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करते, धर्म का अनुस्मरण करते भिक्षु सद्धर्म से च्युत नहीं होता ।

अपने लाभ की अवहेलना न करे

(विपक्ष सेवक भिक्षु की कथा)

२५, ५

एक तरुण भिक्षु कुछ दिन देवदत्त के यहाँ रहकर देवदत्त के उत्पन्न लाभ-सत्कार से खाया और पुनः वेणुवन विहार में आया । भिक्षुओं ने यह बात भगवान् से कही । भगवान् ने उससे पूछा—"क्या भिक्षु ! तूने सचमुच ऐसा किया ?"

"हाँ, भन्ते ! अपने एक मित्र के कारण कुछ दिन वहाँ रह गया, किन्तु मैं देवदत्त के पक्ष में नहीं हूँ और न तो उसका मत ही मुझे रुचता है ।"

"भिक्षु ! यद्यपि तू उसका मत नहीं मानता, तथापि देखने वाले तुझे समझते हैं कि तू देवदत्त के पक्ष में है । तूने न केवल इसी समय पहले भी ऐसा किया था ।" कह कर महिलामुख जातक को बतला—"भिक्षुओ ! भिक्षु को अपने लाभ से ही सन्तुष्ट होना चाहिये, दूसरे के लाभ की चाह नहीं करनी चाहिये, जो दूसरे के काम की चाह करता है, उसे ध्यान, विपश्यना में से एक भी प्राप्त नहीं होते ।" उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३६५—सलाभं नातिमञ्ञेय्य नाञ्ञेसं पिहयं चरे ।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खू समाधिं नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिये । दूसरों के लाभ की चाह (= स्पृहा) नहीं करनी चाहिये । दूसरों के लाभ की चाह करने-वाला भिक्षु समाधि को नहीं प्राप्त करता ।

३६६—अप्पलाभोपि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्ञेति ।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं ॥ ७ ॥

शुद्ध जीविका वाला

चाहे अल्प ही लाभ हो, जो शुद्धजीविका वाला और आलस्य रहित भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता है, उसकी देवता प्रशंसा करते हैं।

ममता-रहित भिक्षु है

(पञ्चग्र-दायक ब्राह्मण की कथा)

२५, ६

श्रावस्ती में पञ्चग्र-दायक नामक ब्राह्मण था, वह खेत बोने के पश्चात् फसल तैयार होने तक पाँच बार भिक्षु-संघ को दान देता था। एक दिन भगवान् उसके निश्चय को देखकर भिक्षाटन करने के लिए जाते समय उसके द्वार पर जाकर खड़े हो गये। उस समय ब्राह्मण घर में बैठकर द्वार की ओर पीठ करके भोजन कर रहा था। ब्राह्मणी ने यदि यह श्रमण गौतम को परसा हुआ भोजन दे देगा, तो मुझे फिर पकाना पड़ेगा।" सोच भगवान् की ओर पीठ करके उन्हें छिपाती हुई खड़ी हो गई, जिससे कि ब्राह्मण उन्हें न देख सके। उस समय भगवान् ने अपनी छः वर्ण की ज्योति फेंकी और इधर ब्राह्मणी भी भगवान् को दूसरे जगह न जाते देख, हँस पड़ी। ब्राह्मण "यह क्या?" सोच पीछे भगवान् को खड़ा देख, हाथ जोड़कर बन्दना किया और अवशेष भोजन देकर यह प्रश्न पूछा—"हे गौतम! आप अपने शिष्यों को भिक्षु कहते हैं, कोई भिक्षु कैसे होता है?" शास्ता ने उसके प्रश्न को सुनकर अतीत काल में उसकी नाम-रूप की कथा में श्रद्धा देखकर इस गाथा को कहा—

३६७—सब्बसो नामरूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥ ८ ॥

जिसकी नामरूप (= पञ्चस्कन्ध) में बिल्कुल ही ममता नहीं, और जो (उनके) नहीं होने पर शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहा जाता है।

मैत्री-भावना से निर्वाण

(बहुत से भिक्षुओं की कथा)

२५, ७

आयुष्मान् महाकात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण स्थविर कुराघर से जेतवन में जा भगवान् का दर्शन कर जब वापस आये, तब उनकी माँ ने एक दिन उपदेश सुनने के लिए जिज्ञासा की और नगर में भेरी बजवाकर सबके साथ उनके पास उपदेश सुनने गई। जिस समय वह उपदेश सुन रही थी, उसी समय नव सौ चोर अवसर पाकर उसके घर में सेंध काटकर सोना, चाँदी आदि ढोना शुरू किये। दासी चोरों को घर में प्रवेश किया देख उपासिका से जाकर कही। उसने "जा, चोरों को जो इच्छा हो ले जायें तू उपदेश सुनने में विघ्न नहीं डाल।" चोरों का सरदार—जो उपासिका को देखने आया था, उपासिका की बात सुन, जाकर चोरों को समझाया और सब चुराया हुआ समान पुनः पूर्ववत् रखाकर धर्म-सभा में आकर उपदेश सुनने लगा। जब उपदेश समाप्त हुआ तब चोरों का सरदार उपासिका के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगते हुए सब बात बताया और कहा—"यदि आप क्षमा करती हैं तो अपने पुत्र के पास मुझे प्रव्रजित कराइये।" ऐसे ही सब चोरों ने प्रार्थना की। उपासिका अपने पुत्र से प्रार्थना करके उन्हें प्रव्रजित करायी। वे प्रव्रजित और उपसम्पन्न होकर अलग-अलग कर्मस्थान के एक पर्वत पर जा वृक्षों के नीचे दूर-दूर पर बैठ कर श्रमण-धर्म करने लगे। शास्ता ने एक सौ बीस योजन दूर जेतवन विहार में बैठे हुए ही उन भिक्षुओं को देख प्रकाश को व्याप्त कर उनकी चर्य्या के अनुसार उपदेश देते हुए सामने बैठकर कहने के सदृश इन गाथाओं को कहा—

३६८—मेत्ताविहारी यो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ ९ ॥

जो मैत्री के साथ विहार करने वाला बुद्ध शासन में प्रसन्न भिक्षु है, वह संस्कारों को शमन करने वाले और सुखमय पद को प्राप्त करता है।

३६९—सिञ्च भिक्खु! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बानमेहिसि॥ १०॥

भिक्षु! इस नाव को उलीचो, उलीचने पर यह तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। राग औरद्वेष को छिन्नकर, फिर तुम निर्वाणको प्राप्त होगे।

३७०—पञ्च छिन्दे पञ्च जहे पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खुओघतिण्णोति वुच्चति॥ ११॥

(सत्यकायदृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श, कामराग और व्यापाद इन) पाँच (अवरभागीय संयोजनों) को काटे, (रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या इन) पाँच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को छोड़ दे। आगे (उनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति समाधि और प्रज्ञा इन) पाँच (इन्द्रियों) की भावना करे, (राग, द्वेष, मोह, मान और मिथ्या दृष्टि इन) पाँच के संसर्ग को अतिक्रमण कर चुका भिक्षु (काम, भव दृष्टि और अविद्या के) ओघों (=बाढ़ों) से पार हुआ कहा जाता है।

३७१—झाय भिक्खु! मा च पमादो
मा ते कामगुणे भमस्सु चित्तं।
मा लोहगुलं गिली पमत्तो
मा कन्दि दुक्खमिदन्ति डय्हमानो॥१२॥

भिक्षु! ध्यान में लगो, मत प्रमाद करो, तुम्हारा चित्त मत भोगों के चक्कर में पड़े। प्रमत्त होकर मत लोहे के गोले को निगलो। '(हाय!) यह दुःख' कहकर दग्ध होते (पीछे) मत तुम्हें क्रन्दन करना पड़े।

३७२—नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बानसन्तिके॥१३॥

प्रज्ञाविहीन (पुरुष) को ध्यान नहीं होता है, ध्यान न करने वाले को प्रज्ञा नहीं हो सकती । जिसमें ध्यान और प्रज्ञा (दोनों) हैं वही निर्वाण के समीप है ।

३७३—सुञ्ञागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो ।
अमानुसी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥ १४ ॥

शून्य गृह में प्रविष्ट, शान्तचित्त भिक्षु को भले प्रकार से धर्म की विपश्यना करते हुए अमानुषी-रति (= आनन्द) होती है ।

३७४—यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं ।
लभति पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं ॥ १५ ॥

जैसे-जैसे (भिक्षु रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन) पाँच स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश पर विचार करता है, (वैसे ही वैसे वह) ज्ञानियों की प्रीति और प्रमोद (रूपी) अमृत को प्राप्त करता है ।

३७५—तत्रायमादि भवति इध पञ्ञस्स भिक्खुनो ।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठी पातिमोक्खे च संवरो ।
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते ॥ १६ ॥

इस धर्म में प्रज्ञावान् भिक्षु को आदि में करना है—इन्द्रिय-संयम, सन्तोष और प्रातिमोक्ष की रक्षा । शुद्ध जीविका वाले, निरालस तथा भले मित्रों का साथ करे ।

सेवा सत्कार वाला

३७६—पटिसन्थारवुत्तस्स आचारकुसलो सिया ।
सानन्द
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥ १७ ॥

जो सेवा-सत्कार स्वभाव वाला तथा आचार पालन में निपुण है वह सानन्द दुःख का अन्त करेगा ।

राग और द्वेष को छोड़ो

(पाँच सौ भिक्षुओं की कथा)

२५, ८

भगवान् के जेतवन में विहरते समय पाँच सौ भिक्षु शास्ता के पास कर्मस्थान ग्रहण कर प्रातःकाल फूले हुए जूही के फूलों को सन्ध्या को कुम्हला कर गिरते हुए देख, कहे—"तुम्हारे कुम्हला कर गिरने से पूर्व ही हम लोग राग आदि से मुक्त होंगे।" शास्ता ने उन भिक्षुओं को देख—"भिक्षुओ! भिक्षु को कुम्हला कर गिरने वाले फूल के समान दुःख छुटकारा पाने के लिये उद्योग करना चाहिये हो।" कह कर गन्धकुटी में बैठे हुए ही आलोक व्याप्त कर इस गाथा को कहा—

३७७—वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो॥ १८॥

जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही भिक्षुओ! राग और द्वेष को छोड़ दो।

भिक्षु उपशान्त कहा जाता है

(शान्तकाय स्थविर की कथा)

२५, ९

शान्तकाय नामक एक स्थविर थे। वे शरीर से हरेक प्रकार से शान्त रहते थे। भिक्षुओं ने भगवान् से कहा—भन्ते! शान्तकाय स्थविर के समान भिक्षु को हम लोगों ने नहीं देखा है, इनके बैठने के स्थान पर हाथ, पैर भी नहीं चलता है, शरीर का हिलना भी नहीं होता है।" उसे सुनकर शास्ता ने—"भिक्षुओ! भिक्षु को शान्तकाय स्थविर के समान ही उपशान्त होना चाहिये कह कर इस गाथा को कहा—

३७८—सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तोति वुच्चति॥ १९॥

शरीर और वचन से शान्त, भली प्रकार समाधियुक्त, शान्ति सहित तथा लोग के आमिष को वमन कर दिये हुए भिक्षु को 'उपशान्त' कहा जाता है।

मनुष्य अपना स्वामी आप है

(नङ्गलकुल स्थविर की कथा)

२५, १०

श्रावस्ती में एक निर्धनपुरुष हल चलाकर जीवन-यापन करता था। एक दिन उसे एक भिक्षु ने ले जाकर प्रव्रजित किया। वह प्रव्रजित होते समय अपने हल (=नङ्गल) को सीमा-गृह के पास एक वृक्ष पर टाँग दिया। कुछ दिनों के पश्चात् उसे उदासी उत्पन्न हुई और उस हलको लेकर गृहस्थ हो जाने के लिए वृक्ष के नीचे गया, किन्तु वहाँ पहुँचते ही उसे विरक्ति हो आई तथा अपने आप को अनेक प्रकार से समझाकर लौट आया। वह जब-जब उदासी उत्पन्न होती थी, तब-तब जाता था और विरक्त होकर लौट आता था। भिक्षुओं ने उसे बार-बार हल (=नङ्गल) के पास जाते देख 'नङ्गलकुल' नाम ही रख दिया। वह एक दिन वहाँ जाकर विरक्त हो लौटते समय अर्हत्व पा लिया। और फिर वहाँ जाना छोड़ दिया।

भिक्षुओं ने उसे अब वहाँ जाते न देख पूछा—"आवुस नङ्गलकुल! अब तू वहाँ नहीं जाता है?"

आवुसो! जब तक संसर्ग रहा, तब तक गया। अब संसर्ग न होने से नहीं जाता हूँ।"

इसे सुन भिक्षुओं ने भगवान् से कहा—"भन्ते! यह नङ्गलकुल झूठ बोलता है, अर्हत्व-प्राप्ति की घोषणा करता है।" भगवान् ने इसे सुन—"भिक्षुओ! मेरा पुत्र अपने आपको उपदेश दे प्रव्रजित होने के कृत्य को समाप्त कर लिया।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

३७९—अत्तना चोदयात्तानं पटिवासे अत्तमत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि ॥२०॥

स्मृतिमान्

मनुष्य अपने ही आपको प्रेरित करेगा, अपने ही आपको संलग्न करेगा, वह आत्मा-गुप्त (= अपने द्वारा रक्षित) स्मृतिमान् भिक्षु सुख से विहार करेगा।

३८०—अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति।
अस्मा सञ्ञमत्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो ॥२१॥

मनुष्य अपना स्वामी आप है, अपने ही अपनी गति है, इसलिये अपने को संयमी बनावे, जैसे कि सुन्दर घोड़े को बनिया (संयत करता है)।

शान्तपद को प्राप्त करता है

(वक्कलि स्थविर की कथा)

२५, ११

वक्कलि स्थविर श्रावस्ती में ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। वे तरुणाई के समय भिक्षाटन करते हुए तथागत के सुन्दर रूप को देखकर प्रमुदित हो—"यदि मैं इनके पास भिक्षु हो जाऊँगा, तो सदा इन्हें देख पाऊँगा।" सोच प्रव्रजित हो गये। वे प्रव्रज्या के दिन से ध्यान-भावना आदि न कर केवल तथागत के रूप-सौन्दर्य को ही देखा करते थे। भगवान् भी उनके ज्ञान की परिपक्वता को देखते हुए कुछ नहीं कहते थे। जब शास्ता ने देखा कि वक्कलि-स्थविर का ज्ञान परिपक्व हो गया है, तब—"वक्कलि! इस अपवित्र शरीर को देखने से क्या लाभ? वक्कलि! जो धर्म को देखता है, वह मुझे देखता है।" कहकर उपदेश दिया।

इस प्रकार उपदेश देने पर भी वक्कलि स्थविर शास्ता का साथ छोड़कर नहीं जाते थे। तब शास्ता ने—"यह भिक्षु बिना संवेग को प्राप्त हुए नहीं समझेगा" सोच; वर्षोपनायिका के दिन "हट जा वक्कलि! हट जा वक्कलि!!" कह कर हटा दिया। वे 'अब शास्ता मुझसे नहीं बोलेंगे, क्या मुझे जीवित रहने से?' सोच गृद्धकूट पर्वत पर से कूद कर प्राण देने के विचार से गृद्धकूट पर चढ़े शास्ता ने उनकी इस दशा को देखकर उनके पास आलोक फेंका। आलोक को देख स्थविर को बलवती प्रीति उत्पन्न हुई भगवान् ने इस गाथा को कहा—

३८२—पामोज्जबहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥ २२ ॥

बुद्ध शासन में प्रसन्न बहुत प्रमोदयुक्त भिक्षु संस्कारों को उपशमन करने वाले सुखमय शान्तपद को प्राप्त करता है।

[शास्ता के उपदेश करके बुलाने पर वक्कलि स्थविर प्रतिसम्भिदाओं के साथ अर्हत्व प्राप्त कर आकाश मार्ग से आकर प्रणाम किये ।]

चन्द्रमा की भाँति प्रकाश करता है

(सुमन श्रामणेर की कथा)

२५, १२

सात वर्ष की अवस्था का अर्हत्व-प्राप्त सुमन श्रामणेर जब अनुरुद्ध स्थविर के साथ श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार में आया, तब पृथक् जन भिक्षु उसके कान, हाथ आदि को पकड़ कर कहते थे—"श्रामणेर! उदास तो नहीं हो?" भगवान् ने यह देख सुमन श्रामणेर की शक्ति को प्रकट करने के लिए आनन्द स्थविर को बुलाकर कहा—"आनन्द! मैं अनवतप्त के जल से पैर धोना चाहता हूँ, किसी श्रमणेर को भेजकर एक घड़ा पानी मँगाओ।" आनन्द-स्थविर ने जाकर श्रामणेरों से कहा किन्तु कोई भी तैयार नहीं हुआ। अर्हत् श्रामणेर जानते ही थे कि भगवान् सुमन श्रामणेर को ही भेजना चाहते हैं इसलिए वे जाना नहीं चाहे और पृथक्जन असमर्थ होने से। सबसे अन्त में आनन्द स्थविर ने सुमन से कहा। वह बहुत बड़ा घड़ा लेकर आकाश-मार्ग से जाकर पानी लाया। जिस समय वह पानी लेकर आकाश से आ रहा था, उस समय भगवान् ने उसे दिखला कर बड़ी प्रशंसा की और पास आने पर पूछा—"श्रामणेर! तू कितने वर्ष का है?

"भन्ते! मैं सात वर्ष का हूँ।"

"अच्छा, आज से तू भिक्षु होगा।" भगवान् ने इस प्रकार कहकर सुमन को दायज-उपसम्पदा दिया। दायज उपसम्पदा सुमन और सोपाक—दो ही को मिली थी।

उसके उपसम्पन्न हो जाने पर भिक्षुओं में यह चर्चा चली—"आवुसो ! आश्चर्य है, इस प्रकार के छोटे श्रामणेर का भी ऐसा अनुभाव होता है ! इससे पूर्व हमने दूसरे के ऐसे अनुभाव को नहीं देखा था।" शास्ता ने भिक्षुओं की बात को सुन—"भिक्षुओ ! मेरे शासन में छोटा भी भली प्रकार प्रतिपन्न हो, ऐसी सम्पत्ति को पाता ही है" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३८२—यो हवे दहरो भिक्खु युञ्जति बुद्धसासने ।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ॥ २३ ॥

जो दहर (= अल्पवयस्क)-भिक्षु बुद्ध शासन में संलग्न होता है, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है।



२६—ब्राह्मणवग्गो

कामनाओं को दूर करो

(बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण की कथा)

२६, १

श्रावस्ती में एक बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण था। वह एक दिन भगवान् के उपदेश को सुनकर नित्य सोलह भिक्षुओं को दान देने लगा। जब भिक्षु उसके घर जाते थे, तब वह अत्यन्त श्रद्धा से—"आइये अर्हन्त लोग, बैठिये अर्हन्त लोग, भोजन कीजिए अर्हन्त लोग" आदि कहा करता था। उसकी बात को सुनकर अर्हन्तों के मन में होता था कि यह हम लोगों के अर्हत् होने को जानता है और पृथक्जन भिक्षुओं को लज्जा हो आती थी। इस प्रकार एक दिन संकोच में पड़कर उसके घर कोई भी भिक्षु भोजन करने नहीं गया। यह देख ब्राह्मण दुःखी हो भगवान् के पास आया और कहा—"भन्ते ! एक भी आर्य मेरे घर भोजन करने नहीं गये।" इसे सुन भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर न जाने का कारण पूछा। भिक्षुओं ने सारी बात कह सुनायी, तब भगवान् ने—"भिक्षुओ ! वह ब्राह्मण श्रद्धा से अर्हन्त कहता है, श्रद्धा से कहने में आपत्ति नहीं होती है। चूँकि ब्राह्मण को अर्हन्तों में अधिक प्रेम है, इसलिए तुम्हें भी तृष्णा के स्रोत को काटकर अर्हत्व पाना ही युक्त है!" कहकर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३८३—छिन्द सोतं परक्कम्म कामे पनुद ब्राह्मण ! ।
सङ्खारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण ! ॥ १ ॥

ब्राह्मण ! (तृष्णा के) स्रोत को काट दे, पराक्रम कर (और) कामनाओं को दूर कर दे। ब्राह्मण ! संस्कार के क्षय को जानकर अकृत (= निर्वाण) का साक्षात्कार कर लोगे।

सभी बन्धन अस्त हो जाते हैं
(बहुत से भिक्षुओं की कथा)
२६, २

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन तीस दिशावासी भिक्षु आये। सारिपुत्र स्थविर ने उनके अर्हत्व-प्राप्ति के निश्चय को देख शास्ता के पास जाकर खड़े हुए ही पूछा—"भन्ते ! दो धर्म कौन से हैं ?" शास्ता ने—"सारिपुत्र ! शमथ और विपश्यना दो धर्म कहे जाते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

संयम, समाधि

३८४—यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो ॥ २ ॥

जब ब्राह्मण दो धर्मों (= शमथ और विपश्यना) में पारंगत हो जाता है, तब उस जानकार के सभी बन्धन (= संयोग) अस्त हो जाते हैं।

निर्भय और अनासक्त ब्राह्मण है
(मार की कथा)
२६, ३

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय एक दिन मार मनुष्य के वेश में आकर भगवान् से पूछा—"भन्ते ! पार किसे कहते हैं ?" शास्ता मार को जान—"पापी ! तुझे पार से क्या ? उसे तो वीतराग ही पाते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

३८५—यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति।
निर्भय वीतद्दरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३ ॥ अनासक्त

जिसके पार (= आँख, कान, नाक, जीभ, काया मन,) अपार (= रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म) और पारापार (= मैं और मेरा) नहीं है, जो निर्भय और अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

उत्तमार्थ-प्राप्त ब्राह्मण है

(किसी ब्राह्मण की कथा)

२६, ४

भगवान् के जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर पूछा—"हे गौतम ! आप अपने श्रावकों को ब्राह्मण कह कर पुकारते हैं। मैं तो जाति ही से ब्राह्मण हूँ।" भगवान् ने—"ब्राह्मण ! मैं जाति गोत्र से ब्राह्मण नहीं कहता हूँ, केवल उत्तमार्थ अर्हत्व प्राप्त को ही ब्राह्मण कहता हूँ।" कह कर इस गाथा का कहा—निर्मल

३८६—झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ४॥

जो ध्यानी, निर्मल, आसनबद्ध (= स्थिर), कृतकृत्य, आश्रवरहित है, जिसने उत्तमार्थ (= निर्वाण) को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बुद्ध सदा तपते हैं

(आनन्द स्थविर की कथा)

२६, ५

भगवान् के भिगारमातु-प्रासाद में विहार करते समय एक दिन आनन्द स्थविर ने भगवान् को प्रणाम कर कहा—"भन्ते आज मुझे प्रकाश देखते समय आपका ही प्रकाश सबसे बढ़कर मिला।" शास्ता ने उसे सुन—"आनन्द ! सूरज दिन में चमकता है, और रात्रि में चन्द्रमा। राजा होने पर सुशोभित होता है और अर्हत् एकान्त में बैठकर समापत्ति में होने पर; किन्तु बुद्ध लोग रात में भी, दिन में भी पाँच प्रकार के तेज से सुशोभित होते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

३८७—दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा॥ ५॥

दिन में सूरज तपता है, रात्रि में चन्द्रमा प्रकाश करता है। (आभूषणों से) अलंकृत होने पर राजा तपता है, ध्यानी होने पर ब्राह्मण तपता है और बुद्ध रात-दिन (अपने) तेज से तपते हैं।

ब्राह्मण, श्रमण और प्रव्रजित क्यों ?

(किसी ब्राह्मण प्रव्रजित की कथा)

२६, ६

एक ब्राह्मण बाह्य परिव्राजकों के पास प्रव्रजित होकर एक दिन भगवान् के पास जाकर पूछा—"हे गौतम ! आप अपने शिष्यों को प्रव्रजित कहते हैं, मैं भी प्रव्रजित हूँ न ?" भगवान् ने उसकी बात सुन—"ब्राह्मण ! प्रव्रजित होने मात्र से मैं प्रव्रजित नहीं कहता, किन्तु जिसने अपने चित्त के मलों को हटा दिया है उसी को प्रव्रजित कहता हूँ।" कह कर इस गाथा को कहा—

३८८—बाहितपापोति ब्राह्मणो समचरिया समणोति वुच्चति ।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितोति वुच्चति ॥६॥

जिसने पाप को धोकर बहा दिया है, वह ब्राह्मण है। जो समता का आचरण करता है, वह श्रमण है, (चूँकि) उसने अपने (चित्त-) मलों को हटा दिया, इसलिये वह प्रव्रजित कहा जाता है।

ब्राह्मण को मारना महापाप है

(सारिपुत्र स्थविर की कथा)

२६, ७

श्रावस्ती नगरवासी मनुष्य एक स्थान पर एकत्र होकर सारिपुत्र स्थविर के गुण की प्रशंसा कर रहे थे—"हमारे आर्य ऐसे सहनशील हैं कि आक्रोशन करने वालों या मारने वालों पर भी क्रोध नहीं करते हैं।" इसे एक मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण ने कहा—"उन्हें कोई क्रोधित करना जानता ही नहीं होगा, देखो मैं क्रोधित करता हूँ।"

"यदि तुम उन्हें क्रोधित कर सकते हो तो करो।" मनुष्यों ने कहा।

वह दोपहर में स्थविर को भिक्षाटन करते देख, पीछे से जाकर पीठ पर मारा। स्थविर 'यह क्या है ?' सोच पीछे की ओर देखे नहीं। ब्राह्मण का शरीर दग्ध सा हो उठा। वह "मैंने ऐसे गुणवान् भिक्षु को मारा है, महा अपराध किया है" सोच उनके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगी और स्थविर को अपने घर ले जा कर भोजन कराया। जब स्थविर भोजन करके विहार में आये, तब भिक्षुओं ने आपस में बात करनी शुरू की—"आयुष्मान् सारिपुत्र ने अच्छा नहीं किया, जो कि मारे हुए ब्राह्मण के घर ही भोजन भी किया, वह अब किसे बिना मारे छोड़ेगा। अब तो वह भिक्षुओं को मारते ही विचरण करेगा।"

शास्ता ने भिक्षुओं की बात सुन—"भिक्षुओ! ब्राह्मण को मारने वाला ब्राह्मण नहीं है, गृहस्थ-ब्राह्मण द्वारा श्रमण ब्राह्मण मारा गया होगा। क्रोध अनागामी मार्ग से नाश हो जाता है।" कह कर उपदेश देते हुए इन गाथाओं को कहा—

३८९—न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति ॥ ७ ॥

ब्राह्मण (=निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण को भी उस (प्रहारदाता) पर (कोप) नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण को जो मारता है उसे धिक्कार है और धिक्कार है उसको भी जो (उसके लिए) कोप करता है।

३९०—न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो ततो सम्मति एव दुक्खं ॥

ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थों) से मन को हटा लेता है, जहाँ-जहाँ मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ-वहाँ दुःख (अवश्य) ही शान्त हो जाता है।

त्रि-संवरयुक्त ब्राह्मण है

(महाप्रजापती गौतमी की कथा)

२६, ८

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन भिक्षुणियों ने भगवान् के

पास जाकर कहा—"भन्ते ! महाप्रजापति गौतमी अपने ही हाथों वस्त्र रँग कर चीवर पहन ली, उसका कोई भी आचार्य या उपाध्याय नहीं है, हमें उसके साथ उपोसथ आदि करने में संकोच होता है।" इसे सुनकर भगवान् ने—"मैंने महाप्रजापती को आठ गुरुधर्मों को दिया, मैं ही उसका आचार्य हूँ, मैं ही उपाध्याय हूँ। कायदुश्चरित से रहित क्षीणाश्रवों के प्रति संकोच नहीं करना चाहिये।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३९१—यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ९॥

किसके मन, वचन और कार्य से दुष्कृत (=पाप) नहीं होते, (जो इन तीनों ही स्थानों से संवर-युक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बुद्ध धर्मोपदेशक को नमस्कार करे

(सारिपुत्र स्थविर का कथा)

२६, ९

सारिपुत्र स्थविर अश्वजित स्थविर के पास धर्म-श्रमण करके स्रोतापत्ति-फल को प्राप्त करने से लेकर जिस दिशा में स्थविर रहते थे, उधर हाथ जोड़ उसी ओर सिर कर सोते थे। भिक्षुओं ने भगवान् से जाकर कहा—"भन्ते ! जान पड़ता है सारिपुत्र आज भी मिथ्या दृष्टि ही हैं, वे सदा दिशा नमस्कार करते हैं।" भगवान् ने उनकी बात सुन सारिपुत्र स्थविर को बुलवाकर पूछा—"क्या सारिपुत्र ! यह ठीक है कि तू दिशा-नमस्कार करता है ?"

"भन्ते ! आप तो स्वयं जानते ही हैं।"

भगवान् ने सारिपुत्र स्थविर के यह कहने पर—"भिक्षुओ ! सारिपुत्र दिशा नमस्कार नहीं करता है, प्रत्युत अपने आचार्य को नमस्कार करता है। जिस आचार्य के सहारे भिक्षु धर्म जाने, उसे अपने उस आचार्य को नमस्कार करना चाहिये ही।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३९२—यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो॥ १०॥

जिस (आचार्य) से सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे वैसे ही सत्कार-पूर्वक नमस्कार करे, जैसे अग्निहोत्र को ब्राह्मण।

जटा-गोत्र से ब्राह्मण नहीं

(जटिल ब्राह्मण की कथा)

२६, १०

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन एक जटाधारी ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर कहा—"हे गौतम ! आप अपने श्रावकों को ब्राह्मण कहते हैं, मैं भी माता-पिता से सुजात ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, क्या आप मुझे ब्राह्मण कह सकते हैं न ?" इसे सुन शास्ता ने—"ब्राह्मण ! मैं न जटा धारण करने मात्र से और न तो जाति-गोत्र मात्र से ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने सत्य को प्राप्त कर लिया है, वही ब्राह्मण है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३९३—न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है, वही सुचि (=पवित्र) और वही ब्राह्मण है।

स्नान से पाप नहीं कटता

(पाखण्डी ब्राह्मण की कथा)

२६, ११

भगवान् के वैशाली के कूटागार शाला में विहरते समय वैशालीवासी एक पाखण्डी (=कुहक) ब्राह्मण नगर के पास एक वृक्ष पर चढ़ कर दोनों पैरों को वृक्ष की डाल में लगा कर नीचे की ओर सिर करके लटक गया। जब नगर वासी वहाँ आये तब—"मुझे सौ गायें दो, कार्षापण दो, परिचारिक दो, यदि नहीं दोगे तो यहाँ से गिर मर कर नगर को उजाड़ दूँगा।" लोग डर कर उसे सब कुछ दे दिये। भिक्षुओं ने भी भिक्षाटन करते हुए उसे देखा था। उन्होंने जाकर भगवान् से कहा। भगवान् ने "भिक्षुओ ! न केवल इसी समय वह

पाखण्डी है, पहिले भी था, किन्तु उस समय पण्डितों को नहीं ठग सका।" कह कर जातक का उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

३९४—किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥१२॥

हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तेरा क्या (बनेगा, और) मृगचर्म के पहनने से तेरा क्या ? भीतर (मन) तो तेरा (राग आदि मलों से) परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

वही ब्राह्मण है

(किसी गोतमी की कथा)

२६, १२

भगवान् के गृद्धकूट पर्वत पर विहरते समय एक रात शक्र देव-परिषद् के साथ भगवान् के पास आकर कुशल-क्षेम पूछ रहा था। उसी समय किसा-गोतमी थेरी भगवान् को वन्दना करने के लिये आकाशमार्ग से आई और शक्र को देखकर आकाश से ही प्रणाम कर लौट गई। शक्र ने भगवान् से पूछा—"भन्ते ! यह कौन है, जो कि आती हुई आपको आकाश से ही प्रणाम कर लौट गई ?" शास्ता ने—'महाराज ! यह किसागोतमी नामक मेरी पुत्री है जो पंशुकुल (=चीथड़ा) धारण करने वाली थेरियों में अग्र है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३९५—पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झायतं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

जो पंशुकुल (=फटे चीथड़ों से बना चीवर) को धारण करता है, जो दुबला पतला और नसों से मढ़े शरीर वाला है, जो अकेला बन में ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अपरिग्रही और त्यागी ब्राह्मण है

(एक ब्राह्मण की कथा)

२६, १३

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर पूछा—"हे गौतम !

आप अपने शिष्यों को ब्राह्मण कहते हैं, मैं भी तो ब्राह्मण-योनि से उत्पन्न हुआ हूँ, क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ? इसे सुन शास्ता ने—"ब्राह्मण! मैं ब्राह्मण-योनि से उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं कहता, जो अपरिग्रही और निर्मल है, वही ब्राह्मण है।" कह कर इस गाथा को कहा—

३९६—न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं।
'भो वादि' नाम सो होति स चे होतिसकिञ्चनो॥
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥१४॥

माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसी को मैं ब्राह्मण नहीं कहता "भो वादी[1]" है, वह तो संग्रही है, मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही और त्यागी है।

संग और आसक्ति-विरत ब्राह्मण है

(उग्गसेन की कथा)

२६, १४

'कथा 'मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो'' गाथा के वर्णन में आई हुई है। उस समय भिक्षुओं ने जब भगवान् से कहा—"भन्ते! उग्गसेन ने 'नहीं डरता हूँ' कहा।" तब शास्ता ने "भिक्षुओ! मेरे पुत्र जैसे बन्धनों को काटे हुए व्यक्ति नहीं ही डरते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

३९७—सब्बसञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १५॥

जो सारे संयोजनों (= बन्धनों) को काटकर, (तृष्णा से) नहीं डरता है, उस (राग आदि के संग और आसक्ति से विरत को मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बुद्ध ब्राह्मण हैं

(दो ब्राह्मणों की कथा)

२६, १५

श्रावस्ती के दो ब्राह्मणों में होड़ लगी, दोनों अपने बैलों को एक दूसरे

१—उस समय के ब्राह्मण को 'भो' कह कर सम्बोधन करते थे।

से बलवान कहते थे। वे इसका निपटारा करने के लिए अचिरवती के किनारे जाकर गाड़ी में बालू लाद बैलों को जोत हाँकने लगे, रस्सी, नद्धा सब टूट गया, किन्तु गाड़ी अपनी जगह न छोड़ी। भिक्षुओं ने उसे देखकर जा शास्ता से कहा। तथागत ने—"भिक्षुओ! यह बाहरी रस्सी और नद्धे हैं, जो कोई भी इन्हें काट देता है। भिक्षु को भीतरी क्रोध के नद्धे तथा तृष्णा की रस्सी को काटना चाहिए।" कह कर इस गाथा को कहा—

३९८—छेत्वा नन्दिं वरत्तञ्च सन्दामं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १६॥

नद्धा (= क्रोध), रस्सी (= तृष्णा), पगहे (= ६ प्रकार की दृष्टिया), और जाबे (= अनुशय) को काटकर तथा जूये (= अविद्या) को फेंक जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

क्षमा-बली ब्राह्मण है

(आक्रोशक-भारद्वाज की कथा)

२६, १६

राजगृह में धनञ्जय नाम की एक ब्राह्मणी स्रोतापत्ति-फल प्राप्त करने के समय से सदा फिसल कर या खाँसकर "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स" कहती थी। एक दिन उसके घर भोज था। वह उस दिन भी फिसल कर वैसे ही भगवान् की वन्दना की। इसे सुनकर उसके पति का भाई भारद्वाज उसे बहुत डाँटा—"नष्ट हो दुष्टा! जहाँ नहीं, वहाँ ही उस मुण्डे श्रमण की ही प्रशंसा करती है।" और कहा—"आज मैं श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ करूँगा।" ब्राह्मणी ने—"जाओ ब्राह्मण! शास्त्रार्थ करो, उस भगवान् के साथ शास्त्रार्थ में कौन समर्थ है? फिर भी तुम जाओ।" ब्राह्मण क्रोध के साथ भगवान् के पास जाकर प्रश्न पूछ उत्तर पाकर प्रव्रजित हो अर्हत्व पा लिया। वह फिर घर नहीं गया। उसके पश्चात् जब आक्रोशक भारद्वाज को यह ज्ञात हुआ तब वह भगवान् को नाना प्रकार से आक्रोशन करता हुआ, गाली देता हुआ, असभ्य शब्दों को बोलता हुआ वेणुवन गया और वह भी

भगवान् के मधुर शब्दों को सुनकर प्रव्रजित हो अर्हत्व पा लिया। इसी प्रकार उसके सुन्दरिक भारद्वाज और बिलिङ्गिक भारद्वाज नामक दो छोटे भाई भी शास्ता को बुरा-भला कहते हुए जाकर प्रव्रजित हो अर्हत्व पा लिए।

एक दिन धर्म-सभा में भिक्षुओं ने इसकी चर्चा चलायी—"आवुसो ! बुद्धगुण आश्चर्य हैं, चारों भाइयों के आक्रोशन करने पर भी शास्ता उनका शान्ति-बल से युक्त होने के कारण क्रोधियों पर क्रोध न करते हुए महाजन-समूह का उद्धार करता हूँ।" कह कर इस गाथा को कहा—

३९९—अक्कोसं वधबन्धञ्च अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १७ ॥

जो बिना दूषित (= चित्त) किये गाली, बध, और बन्धन को सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसके बल (= सेना) का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अन्तिम शरीरधारी ब्राह्मण है

(सारिपुत्र स्थविर की कथा)

२६, १७

भगवान् के वेणुवन में विहरते समय एक दिन सारिपुत्र स्थविर पाँच सौ भिक्षुओं के साथ भिक्षाटन करते नालक गाँव को गये। उनकी माँ सबको बैठाकर भोजन करायी। वह भोजन परसते समय उन्हें बहुत बुरा-भला कही—"क्या तू जूठा खाने के लिए ही अस्सी करोड़ धन को छोड़कर प्रव्रजित हुआ" आदि। भोजनोपरान्त जब सब भिक्षु विहार लौटे, तब भगवान् ने आयुष्मान् राहुल से पूछा—"राहुल ! आज कहाँ भिक्षा के लिए गया था ?"

"भन्ते ! उपाध्याय की माँ के घर।"

"क्या सारिपुत्र ने उसे कुछ कहा भी ?"

आयुष्मान् राहुल ने भगवान् को सब सुना दिया और कहा—भन्ते ! मेरे उपाध्याय ने उसकी गाली सुनकर भी कुछ नहीं कहा। इसे सुनकर भिक्षुओं ने

सारिपुत्र स्थविर के गुणों की प्रशंसा की—"आवुसो! सारिपुत्र स्थविर बड़े ही क्षमाशील हैं, जो क्रोधमात्र भी नहीं किये।" भगवान् ने उनकी बात सुन—"भिक्षुओ! क्षीणाश्रव क्रोध नहीं करते।" कह कर इस गाथा को कहा—

४००—अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सुतं।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १८॥

जो क्रोध न करने वाला, व्रती, शीलवान्, अनुत्सुक, दान्त (= संयमी), और अन्तिम शरीर वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

भोगों में अलिप्त ब्राह्मण है

(उप्पलवण्णा थेरी की कथा)

२६, १८

कथा "मधुवा मञ्ञति बालो" गाथा के वर्णन में आई हुई है। वहाँ कहा गया है कि धर्म सभा में यह चर्चा चली—"क्या क्षीणाश्रव भी काम का सेवन करते हैं" भगवान् ने उसे सुन—"भिक्षुओ! क्षीणाश्रव दोनों प्रकार के कामों का सेवन नहीं करते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

४०१—वारि पोक्खरपत्ते'व आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ १९॥

कमल के पत्ते पर जल और आरे के नोक पर सरसों कि भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

आसक्त रहित ब्राह्मण है

(किसी ब्राह्मण की कथा)

२६, १९

श्रावस्ती के एक ब्राह्मण का दास भाग कर भिक्षुओं के पास जा प्रव्रजित हो अर्हत्व पा लिया। ब्राह्मण उसे खोजते हुए एक दिन भगवान् के पीछे-पीछे भिक्षाटन के लिए जाते हुए देखा और जाकर उसके चीवर को जोर से पकड़ लिया। भगवान् पीछे घूमकर उसे पकड़ा हुआ देख—"ब्राह्मण! यह फेंके बोझ वाला है।" ब्राह्मण ने अर्हत्व समझ चीवर छोड़ दिया और फिर "ऐसा है

गौतम ?" पूछा। शास्ता ने "हाँ, ब्राह्मण! फेंके बोझ वाला है।" कह कर इस गाथा को कहा—

४०२—यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो।
पन्नभारं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २०॥

जो यहीं (= इसी जन्म में) अपने दुःख के विनाश को जान लेता है, जिसने अपने बोझ को उतार फेंका और जो आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता ब्राह्मण है

(खेमा भिक्षुणी की कथा)

२६, २०

भगवान् के गृद्धकूट पर्वत पर विहरते समय एक रात शक्र देवपरिषद् के साथ आकर भगवान् से कुशल-क्षेम पूछ रहा था। उसी समय खेमा भिक्षुणी भगवान् को प्रणाम करने के लिए आकाश मार्ग से आई और शक्र (= इन्द्र) को देखकर आकाश से ही प्रणाम कर लौट गई। शक्र ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! यह आने वाली कौन भिक्षुणी है जो आती हुई आकाश से आपको प्रणाम कर लौट गई?" शास्ता ने उसकी यह बात सुन—"महाराज! यह खेमा नामक महाप्रज्ञावान्, मार्ग-अमार्ग की जानकार मेरी पुत्री है। कह कर इस गाथा को कहा—

४०३—गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २१॥

जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम अर्थ (= निर्वाण) को पाये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

संसर्ग रहित ब्राह्मण है

(कन्दरा-वासी तिस्स स्थविर की कथा)

२६, २१

भगवान् के जेतवन में विहरते समय तिस्स स्थविर शास्ता के पास कर्म-

स्थान ग्रहण कर एक कन्दरा में चले गये और वहाँ रहकर श्रमण-धर्म करने लगे। कन्दरावासी देवता उन्हें वहाँ नहीं रहने देना चाहते हुए एक दिन उनके उपस्थाक के पुत्र के शरीर पर आवेश करके कहा—"तुम लोग स्थविर के पैर को धोकर उनके पैर के धोवन को इसके सिर पर डालो, तो मैं इसे छोड़ दूँगा।" जब स्थविर दोपहर में भोजन करने गये, तब उपस्थाक ने वैसा ही किया।

इधर देवता उसे छोड़ जाकर कन्दरा के द्वार पर खड़ा हो स्थविर को आते हुए देख—"महावैद्य! मत यहाँ प्रवेश करो।" कहा। स्थविर ने उपसम्पदा के समय से अपने शील को परिशुद्ध देखकर पूछा—"मैंने कब वैद्यकर्म किया है?"

"आज ही!"

स्थविर को यह सुनते ही बलवती प्रीति उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा—"देवता भी मेरे शील को परिशुद्ध देखकर ही ऐसा कह रहा है, क्योंकि उसे दूसरा कुछ दोष दिखाई ही नहीं दिया।" वे वहीं खड़े-खड़े अर्हत्व पा—"देवते! तू यहाँ से निकल जा। तेरे जैसे व्यक्ति के साथ मुझे शुद्ध का संवास नहीं।" कहा।

तिस्स स्थविर वर्षावास समाप्त कर जब जेतवन लौटे और भिक्षुओं के पूछने पर सब बतलाये, तब भिक्षुओं ने पूछा—"आवुस! देवता के निषेध करने पर तुम्हें क्रोध नहीं उत्पन्न हुआ।"

"नहीं आवुसो।" इसे सुनकर भिक्षुओं ने भगवान् से कहा—"भन्ते! तिस्स स्थविर अपनी अर्हत्व प्राप्ति बतला रहे हैं, जो झूठ बोलते हैं।"

भगवान् ने—"भिक्षुओ! मेरा पुत्र क्रोध नहीं करता।" कह कर इस गाथा को कहा—

४०४—असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२२॥

गृहस्थ और बेघर वाले दोनों ही से जो संसर्ग नहीं रखता है, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा अल्पेच्छ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अहिंसक ब्राह्मण है

(किसी भिक्षु की कथा)

२६, २२

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक भिक्षु भगवान् के पास कर्मस्थान को ग्रहण करके आरण्य में जा प्रयत्न करते हुए शीघ्र ही अर्हत्व प्राप्त कर शास्ता को अपने पाये गुण को बतलाने के लिए जेतवन के लिए प्रस्थान किया। उसी दिन एक स्त्री अपने पति के साथ झगड़ा करके पीहर जाने के लिए घर से निकली। मार्ग में उस भिक्षु को जाते देख पीछे-पीछे जाने लगी। पति घर पर आ स्त्री को न देख उसके पीहर की ओर चल दिया। मार्ग में भिक्षु के पीछे-पीछे जाते देख—"अवश्य भिक्षु द्वारा प्रलोभित की गई होगी।" सोचकर भिक्षु को पकड़ कर बहुत मारा और स्त्री को लेकर लौट गया। भिक्षु ने जेतवन जाकर भिक्षुओं के पूछने पर सब समाचार कह सुनाया। भिक्षुओं ने पूछा—"आवुस ! उसके मारते समय तुम्हें क्रोध नहीं हुआ ?" इसे सुनकर—"आवुस ! मुझे तनिक भी क्रोध नहीं हुआ।" भिक्षुओं ने उसे झूठ बोलकर अर्हत्व-प्राप्ति को प्रगट करता हुआ समझ भगवान् से कहा। भगवान् ने—"भिक्षुओ ! क्षीणाश्रव दण्ड रहित होते हैं, वे प्रहार करने वालों पर भी क्रोध नहीं करते हैं।" कहकर इस गाथा को कहा—

४०५—निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च।
यो हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २३ ॥

चर-अचर (सभी) प्राणियों में प्रहार-विरत हो, जो न मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

संग्रह-रहित ब्राह्मण है

(चार श्रामणेरों की कथा)

२६, २३

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक ब्राह्मण चार भिक्षुओं के लिए भोजन तैयार करा विहार जाकर सङ्किच्च, पण्डित, सोपाक और रेवत—इन चार

सात वर्ष की अवस्था वाले श्रामणेरों को लाया। ब्राह्मणी उन छोटे-छोटे श्रामणेरों को देखकर बहुत रुष्ट हुई। वह उन्हें नीचे आसनों पर बैठा पुनः ब्राह्मण को एक वृद्ध भिक्षु को लाने के लिए भेजी। ब्राह्मण विहार जाकर सारिपुत्र स्थविर को बुला लाया। वे आकर श्रामणेरों को बैठे देख "मेरा पात्र लाओ" कह कर पात्र ले चल दिये। फिर ब्राह्मण ब्राह्मणी के कहने पर विहार गया और महामौद्गल्यायन स्थविर को बुला लाया। वे भी आकर श्रामणेरों को देख चले गये। इसके बाद ब्राह्मणी ने एक वृद्ध ब्राह्मण को बुलाने के लिए ब्राह्मण को भेजा। उस समय शक्र (= इन्द्र) ने श्रामणेरों को प्रातःकाल से भूख से पीड़ित होता देख, वृद्ध ब्राह्मण के वेष में आया। ब्राह्मण उसे देख प्रसन्न होकर घर लाया। वह आकर श्रामणेरों को प्रणाम कर भूमि पर बैठ रहा। ब्राह्मणी ने उसके इस कार्य को देखकर बहुत रुष्ट हुई और निकालने के लिए कही। ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों उसे निकालते हुए परेशान हो गये, किन्तु निकाल न सके। अन्त में वे विवश होकर श्रामणेरों के साथ उसे भी खिलाये। भोजनोपरान्त चार आकाश-मार्ग से और एक पृथ्वी से वहाँ से प्रस्थान किये। तब से वह घर पञ्चछिद्रघर कहा जाने लगा।

श्रामणेरों के विहार में आने पर भिक्षुओं ने सारी बात जानकर पूछा—"क्या आवुसो! ब्राह्मणी के क्रोधित होने पर तुम लोग क्रोधित नहीं हुए?" उसे सुन श्रामणेरों ने—"नहीं भन्ते!" उत्तर दिया। भिक्षुओं ने श्रामणेर 'क्रोधित नहीं हुए' कह कर झूठ बोलते हुए अर्हत्व प्राप्ति को प्रगट करते हैं—सोचकर भगवान् से कहा। भगवान् ने "भिक्षुओ! क्षीणाश्रव विरोधियों के साथ भी विरोध नहीं करते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

४०६—अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २४॥

जो विरोधियों के बीच विरोध रहित है, जो दण्डधारियों के बीच (दण्ड-) रहित है, संग्रह करने वालों में जो संग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

राग आदि से रहित ब्राह्मण है

(महापन्थक स्थविर की कथा)

२६, २४

भगवान् के वेणुवन में विहरते समय भिक्षुओं में यह चर्चा चली—"जान पड़ता है क्षीणाश्रवों में भी क्रोध होता है जो कि महापन्थक स्थविर ने चूल-पन्थक को विहार से निकाल दिया था।" भगवान् ने भिक्षुओं की बात सुन - 'भिक्षुओ ! क्षीणाश्रवों में राग आदि क्लेश नहीं होते, मेरे पुत्र ने अर्थ और धर्म को देखते हुए ऐसा किया था।" कह कर इस गाथा को कहा—

४०७—यस्स रागा च दोसो च मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२५॥

आरे के ऊपर सरसों की भाँति, जिसके (चित्त से) राग द्वेष, मान, म्रक्ष, (=अमरख) फेंक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सत्य-वक्ता ब्राह्मण है

(पिलिन्दिवच्छ स्थविर की कथा)

२६, २५

पिलिन्दिवच्छ स्थविर प्रव्रजितों को भी, गृहस्थों को भी "आओ वसल (=नीच), जाओ वसल" कह कर बुलाते थे। भिक्षुओं को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। उन्होंने भगवान् से कहा। भगवान् ने स्थविर को बुलाकर "क्या वच्छ ! सत्य है कि तू 'वसल' कह कर पुकारता है?" पूछ, सत्य है भन्ते !" कहने पर—"भिक्षुओ ! वच्छ पर तुम लोग मत रुष्ट होओ। मेरा पुत्र पहले पाँच सौ जन्मों तक ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर 'वसलवाद' का अभ्यास किया है। क्षीणाश्रव दूसरों को मर्माहत करने वाले वचन नहीं बोलते। कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

४०८—अकक्कसं विञ्ञापनिं गिरं सच्चं उदीरये।
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

जो ऐसी अकर्कश, सार्थक तथा सत्य-वचन को बोले, जिससे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बिना दिये न लेने वाला ब्राह्मण है

(किसी स्थविर की कथा)

२६, २६

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण अपनी चादर को उतार कर किनारे रख, घर में द्वार की ओर मुख करके बैठा था। उस समय एक क्षीणाश्रव स्थविर भिक्षाटन करके भोजन से निवृत्त हो विहार जाते समय, उस वस्त्र को पंशुकूल समझ कर उठा लिये। ब्राह्मण अपने वस्त्र को उन्हें ले जाते हुए देखकर दौड़ा। स्थविर ब्राह्मण को आता देख—"ब्राह्मण! यह तेरा वस्त्र है? मैंने इसे पंशुकूल समझ कर उठाया था।" कह कर उसे दे दिये। उन्होंने विहार जाकर इस बात को भिक्षुओं से कहा। भिक्षु "आवुस! वह वस्त्र कैसा था? छोटा, लम्बा, मोटा या महीन था? कह कर मजाक करने लगे। स्थविर ने उनकी बातें सुन—"आवुसो! मुझे उसमें राग नहीं है, मैंने केवल पंशुकूल समझ कर लिया था।" भिक्षुओं ने—"मुझे उसमें राग नहीं है' कह कर झूठ बोलता हुआ अर्हत्व-प्राप्ति को प्रगट करता है सोच, भगवान् से कहा। भगवान् ने—भिक्षुओ! यह सत्य कह रहा है। क्षीणाश्रव दूसरों की वस्तुओं को नहीं ग्रहण करते।" कह कर इस गाथा को कहा—

४०९—योध दीघं व रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादियते तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

जो दीर्घ, ह्रस्व मोटी या पतली, शुभ या अशुभ—संसार में (किसी भी) बिना दी गई वस्तु को नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

आशा-रहित ब्राह्मण है

(सारिपुत्र स्थविर की कथा)

२६, ·७

सारिपुत्र स्थविर एक बार पाँच सौ भिक्षुओं के साथ एक देहात के

विहार में वर्षावास रहे। मनुष्यों ने बहुत से वर्षावासिक वस्त्रों को देने का वचन दिया। स्थविर ने प्रवारणा करके भगवान् के दर्शनार्थ जेतवन आते समय भिक्षुओं को कहा—"वर्षावासिक वस्त्र मिलने पर तरुण श्रामणेरों से भेजना या रखकर सन्देश देना।" जब स्थविर जेतवन पहुँचे और भिक्षुओं ने उस बात को सुना, तब—"आवुसो! जान पड़ता है आज भी सारिपुत्र स्थविर को तृष्णा है ही।" प्रत्युत मनुष्यों का पुण्य से और तरुण श्रामणेरों को चीवर-लाभ से परिहानि न हो—सोचकर उसने ऐसा कहा।" कह कर इस गाथा को कहा—

४१०—आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मि लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥२८॥

इस लोक और परलोक के विषय में जिनकी आशाएँ (=तृष्णा =चाह) नहीं रह गई है, जो आशा-रहित और आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

निर्वाण प्राप्त ब्राह्मण है

(महामौद्गल्यायन स्थविर की कथा)

२६, २८

कथा पहले जैसी ही है। यहाँ शास्ता ने महामौद्गल्यायन स्थविर के तृष्ण-रहित होने को प्रगट करने के लिए इस गाथा को कहा—

४११—यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ २९॥

जिसे आलय (=तृष्णा) नहीं है, जो जानकार संशय-रहित हो गया है तथा जिसने बैठकर अमृत पद निर्वाण को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

पुण्य-पाप रहित ब्राह्मण है

(रेवत स्थविर की कथा)

२६, २९

कथा "गामे वा यदि वारञ्ञे" गाथा के वर्णन में आई हुई है। भिक्षुओं द्वारा रेवत श्रामणेर की प्रशंसा सुन—"भिक्षुओ ! मेरे पुत्र के न पुण्य हैं, न पाप हैं, इसके दोनों प्रहीण हो गये हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

४१२—योध पुञ्ञञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं। ३० ॥

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों की आशक्ति को छोड़ दिया है, जो शोक-रहित, निर्मल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

तृष्णा-नष्ट ब्राह्मण है

(चन्दाभ स्थविर की कथा)

२६, ३०

राजगृह में चन्दाभ नामक एक ब्राह्मण था। वह पूर्व जन्म में कश्यप के चैत्य में चन्दन लगाया था, जिसके पुण्य से इस जन्म में उसकी नाभी से चन्द्र-मण्डल सदृश आभा निकलती थी। ब्राह्मण उसे लेकर नगर-नगर घूम कर "जो इसके शरीर को स्पर्श करता है, वह जो चाहता है, पाता है" कहते खूब रुपये लेकर उसके शरीर को स्पर्श करने देते थे।

एक समय जब भगवान् जेतवन में विहार कर रहे थे, तब उसे लिये हुए ब्राह्मण श्रावस्ती पहुँचे। सन्ध्या समय श्रावस्तीवासियों को भगवान् के पास उपदेश सुनने के लिए उपासकों को आते देख वे रोकना चाहे, किन्तु उपासक नहीं रुके। ब्राह्मण भी शास्ता के अनुभाव को देखने के लिए चन्दाभ को लेकर जेतवन गये। भगवान् के पास जाते ही चन्दाभ की आभा लुप्त हो गई। वह समझा कि शास्ता आभा लुप्त करने के मन्त्र जानते हैं; अतः भगवान् से कहा—"हे गौतम ! मुझे भी आभा को लुप्त करने के मन्त्र दीजिये।" भगवान् ने कहा—"मैं प्रव्रजित होने पर ही दे सकता हूँ।"

चन्दाभ भगवान् की बात सुनकर प्रव्रजित हो थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया। जब ब्राह्मण उसे लेकर चलने के लिए आये, तब कहा—"तुम लोग जाओ, अब मैं नहीं जाने वाला हो गया।" भिक्षुओं ने इसे सुन भगवान् से कहा—"भन्ते! चन्दाभ भिक्षु मैं अर्हत्व पा लिया हूँ; कह कर झूठ बोलता है।" शास्ता ने—"भिक्षुओ! मेरे पुत्र की तृष्णा क्षीण हो गई, वह सत्य ही कहता है। कह कर इस गाथा को कहा—

४१३—चन्दं'व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३१ ॥

जो चन्द्रमा की भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ निर्मल है तथा जिसकी सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

मोह-त्यागी ब्राह्मण है

(सीवलि स्थविर की कथा)
२६, ३१

कोलिय कन्या सुप्पवासा सात वर्ष तक गर्भ में धारण कर महादुःख उठा करके सीवलि को उत्पन्न की। सीवलि स्थविर बचपन में ही घर से निकल कर प्रव्रजित हो अर्हत्व पा लिये। भिक्षु धर्म-सभा में चर्चा चलाये—'आवुसो! इस प्रकार अर्हत्व-प्राप्ति के उपनिश्रय (= पूर्वकृत पुण्य) होने पर भी वह भिक्षु इतने समय तक माँ के पेट में दुःख सहा।" भगवान् ने भिक्षुओं की बात सुन—"भिक्षुओ! मेरा पुत्र इतने दुःखों से छूटकर इस समय निर्वाण का साक्षात्कार करके विहर रहा है। कह कर इस गाथा को कहा—

४१४—यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३२ ॥

जिसने इस दुर्गम संसार, (जन्म-मृत्यु) चक्कर में डालने वाले मोह (रूपी) उल्टे मार्ग को त्याग दिया है, जो (संसार से) पारंगत ध्यानी तथा तीर्ण (= तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

भोग तथा जन्म-नष्ट ब्राह्मण है

(सुन्दरसमुद्र स्थविर की कथा)

२६, ३२

श्रावस्ती नगरवासी सुन्दरसमुद्र नामक एक कुलपुत्र भगवान् का उपदेश सुन राष्ट्रपाल आदि के समान बहुत प्रयत्न करके माँ बाप से आज्ञा लेकर प्रव्रजित हो, भिक्षुओं के साथ राजगृह जाकर रहता था। उसके माँ-बाप ने उसे गृहस्थ बनाकर लाने के लिए एक गणिका को बहुत सा धन देकर राजगृह भेजे। वह राजगृह जाकर सात मंजिला प्रासाद किराये पर ले प्रातःकाल यवागु और दोपहर में भोजन तैयार कर सुन्दरसमुद्र को भिक्षाटन जाते समय देती थी। धीरे-धीरे "भन्ते! यहीं बैठ कर खाइए" कह कर वहीं बैठाकर खिलाना प्रारम्भ की। दो-तीन दिन के बाद "भन्ते! अन्दर आयें, बाहर लड़के धूल उड़ाते हैं।" कह कर अन्दर बैठा कर खिलाई। एक दिन वह लड़कों को रोटी आदि देकर कही कि जब स्थविर आवें, तब वे खूब हल्ला करें। लड़कों ने स्थविर को आते देख वैसा ही किया। गणिका "भन्ते! नीचे लड़के बड़ा हल्ला करते हैं, ऊपर चलिए।" कह कर उन्हें आगे-आगे चला, अपने नीचे से प्रत्येक किवाड़ को बन्द करते आई। सातवें मंजिल पर पहुँच कर स्थविर को बैठा (विनय-पिटक में आये) चालीस प्रकार के हाव भाव और स्त्री-लीला को दिखला कर कही—"आप भी तरुण हैं, और मैं भी तरुणी हूँ, आइये, वृद्धावस्था में हम दोनों प्रव्रजित होंगे।"

स्थविर को—"अहो! मैंने कितना बड़ा अपराध किया, जो बिना विचारे ही यहाँ आया!" महासंवेग उत्पन्न हुआ। उसी समय महाकारुणिक सर्वज्ञ तथागत के जेतवन विहार में बैठे हुए पैंतालीस योजन दूर गणिका और भिक्षु के होते संग्राम को देख, वहाँ बैठे ही प्रकाश को व्याप्त कर—"भिक्षु! दोनों ही भोगों को इच्छा-रहित हो त्यागो।" कह कर इस गाथा को कहा—

४१५—योध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३३ ॥

जो यहाँ भोगों को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

[उपदेश के अन्त में स्थविर अर्हत्व को पा ऋद्धिबल से आकाश में उड़कर प्रासाद के छत को छेद कर शास्ता की स्तुति करते ही आकर शास्ता को वन्दना किये।]

तृष्णा तथा जन्म-नष्ट ब्राह्मण है

(जटिल की कथा)

२६, ३३

जटिल श्रेष्ठी अपने तीनों पुत्रों का सब धन-सम्पत्ति सौंप कर राजा से आज्ञा ले शास्ता के पास प्रव्रजित हो कुछ ही दिनों में अर्हत्व पा लिया। एक समय शास्ता पाँच भिक्षुओं के साथ भिक्षाटन करते हुए उसके पुत्रों के गृह द्वार पर गये। वे भिक्षु-संघ के साथ भगवान् को आधे महीने तक भोजन दिये। भिक्षु की धर्म-सभा में चर्चा चलाये। शास्ता ने उनकी बात सुन—"भिक्षुओ! मेरे पुत्र को उनके प्रति तृष्णा या मान नहीं है।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

४१६—योध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥ ३४॥

जो यहाँ तृष्णा को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, जिसकी तृष्णा और जन्म नष्ट हो गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

तृष्णा तथा जन्म-नष्ट ब्राह्मण है

(जोतिय स्थविर की कथा)

२६, ३४

राजगृह का जोतिय श्रेष्ठी भगवान् का उपदेश सुन, प्रव्रजित हो, थोड़े ही दिनों में अर्हत्व प्राप्त कर जोतिय स्थविर नाम से प्रगट हुआ। उसको अर्हत्व होने के साथ ही उसकी सारी धन-सम्पत्ति अन्तर्धान हो गई। सतूलकाय स्त्री भी उत्तर कुरु चली गई। एक दिन भिक्षुओं ने जातिय स्थविर को आमन्त्रित कर—"आवुस! उस प्रासाद, स्त्री या धन में तुझे

तृष्णा है ?" पूछा—"नहीं है आवुसो !" कहने पर शास्ता से कहे—"भन्ते ! यह झूठ बोलकर अर्हत्व प्राप्ति को प्रगट कर रहा है।" शास्ता ने—"भिक्षुओ ! मेरे पुत्र को उसमें तृष्णा नहीं है।" कह कर इस गाथा को कहा—

४१७—योध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३५ ॥

जो यहाँ तृष्ण को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, जिसकी तृष्णा और जन्म नष्ट हो गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बन्धन-मुक्त ब्राह्मण है

(नटपुत्र की कथा)

२६, ३५

एक नटपुत्र भगवान् के उपदेश को सुन कर प्रव्रजित हो थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया। एक दिन भिक्षु भिक्षाटन के लिए जाते हुए एक नट को खेल करते हुए देख उससे पूछे—"आवुस ! यह तेरे खेले हुए खेलों को ही खेलता है, क्या तुझे इसमें स्नेह है या नहीं ?" इसे सुन उसने कहा—"आवुसो ! अब मुझे स्नेह नहीं है।" भिक्षुओं ने भगवान् के पास जाने पर—"भन्ते ! यह स्नेह नहीं है, कह कर झूठ बोलते हुए अर्हत्व-प्राप्ति को प्रगट कर रहा है। कहा। भगवान् ने—"भिक्षुओ ! मेरा पुत्र सब योगों (=बन्धनों) को छोड़ चुका है। कह कर इस गाथा को कहा—

४१८—हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३६ ॥

जो मानुषी बन्धनों को छोड़, दिव्य बन्धनों को भी छोड़ चुका है, जो सभी बन्धनों से रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

रति-अरति-त्यागी ब्राह्मण है

(नटपुत्र की कथा)

२६, ३६

कथा पूर्व के समान ही है। यहाँ शास्ता ने—"भिक्षुओ ! मेरा पुत्र रति

और अरति को छोड़ चुका है।" कह कर इस गाथा को कहा—

४१९- हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधिं
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३७ ॥

रति और अरति को छोड़ जो शान्त और क्लेश रहित है, (जो ऐसा) सर्व लोक विजयी वीर है, उसे मैं ब्रह्मण कहता हूँ।

अर्हत् ब्राह्मण है

(वङ्गीस स्थविर की कथा)

२६, ३७

राजगृह में वङ्गीस नामक एक ब्राह्मण मरे हुए व्यक्तियों के सिर को ठोंक कर उनके उत्पत्ति-स्थान को बतलाया था। ब्राह्मण उसे लेकर नगर-नगर घूमते हुए उसके सहारे खाते-पीते थे। एक समय वे उसे लेकर श्रावस्ती पहुँचे और लोगों को वङ्गीस के पास आने के लिए कहे, किन्तु लोग "वङ्गीस क्या है शास्ता के सामने।" कह कर भगवान् के पास ही चले गये, कोई भी वङ्गीस के पास नहीं गया। वङ्गीस भी शास्ता के अनुभाव को देखने के लिए ब्राह्मणों के साथ भगवान् के पास गया। भगवान् ने उसके आगमन को जान नरक, पशु-योनि, मनुष्य-लोक, देवलोक में उत्पन्न हुए व्यक्तियों की खोपड़ी के साथ एक अर्हत् की खोपड़ी को भी लाकर रख दिया। जब वङ्गीस आया तब उन्होंने कहा—"वङ्गीस! तू इन्हें बतला सकता है कि ये कहाँ उत्पन्न हुए हैं? वङ्गीस ने "हाँ, बता सकता हूँ" कह कर चार को क्रमशः बता दिया, किन्तु पाँचवें बार, चुप हो गया! भगवान् ने कहा—"वङ्गीस! इसे तू नहीं जानता है, किन्तु मैं जानता हूँ।"

"हे श्रमण! मुझे भी उस मंत्र को बतलाइये, जिससे मैं भी जान सकूँ।"

"वङ्गीस! बिना प्रव्रजित हुए को मैं नहीं बताता।"

भगवान् की बात सुन—"मैं इस मन्त्र को थोड़े ही दिन में सीख कर सर्वज्ञाता हो जाऊँगा" सोच भगवान् के पास प्रव्रजित हो थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा लिया। एक दिन ब्राह्मणों ने आकर जब उसे चलने को कहा, तब "तुम लोग जाओ, अब मैं जाने योग्य नहीं" उत्तर दिया। भिक्षुओं ने इसे

सुनकर भगवान् से कहा। शास्ता ने—"भिक्षुओ! इस समय मेरा पुत्र च्युति और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है।" कह कर इन गाथाओं को कहा—

४२०—चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३८ ॥

जो प्राणियों की च्युति (= मृत्यु) और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, जो आशक्ति रहित सुगत (= सुन्दर गति को प्राप्त) और बुद्ध (=ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४२१—यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३९ ॥

जिसकी गति को देवता, गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो क्षीणाश्रव और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अकिंचन ब्राह्मण है

(धम्मदिन्ना थेरी की कथा)

२६, ३८

भगवान् के वेणुवन में विहरते समय राजगृहवासी विशाख नामक एक उपासक भगवान् के उपदेश को सुन कर अनागामी हो घर गया और अपनी स्त्री धम्पदिन्ना को बुलाकर सब सम्पत्ति सौंपने लगा। धम्पदिन्ना पति की इस दशा को देख स्वयं भी प्रव्रजित होने की इच्छा की। विशाख उपासक न उसकी इच्छा जान प्रसन्न हो उत्सव के साथ भिक्षुणियों के पास ले जाकर प्रव्राजित कराया। वह कई भिक्षुणियों के साथ जनपद में जाकर उद्योग करती हुई थोड़े ही दिनों में अर्हत्व पा ली।

धम्मनिन्ना अर्हत्व प्राप्त कर जब राजगृह लौटी, तब एक दिन विशाख उपासक उसके पास जाकर चूलवेदल्ल सुत्त में आये हुए प्रश्नों को पूछा। धम्मदिन्ना सभी प्रश्नों का उत्तर दे "आवुस, विशाख! यदि इच्छा हो, तो जाकर शास्ता से भी इन प्रश्नों को पूछना।" कही। विशाख भगवान् के पास

जाकर प्रणाम कर सब समाचार कह सुनाया। शास्ता ने—"मेरी पुत्री धम्मदिन्ना ने सब ठीक कहा है, मैं भी इन प्रश्नों का उत्तर यही देता।" कह कर उपदेश देते हुए इस गाथा को कहा—

४२२—यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्य में कुछ नहीं है, जो अकिंचन और परिग्रह-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अकम्प्य ब्राह्मण है

(अंगुलिमाल स्थविर की कथा)

२६, ३९

कथा "न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति" गाथा के वर्णन में आई हुई है। भिक्षुओं ने भगवान् से कहा—"भन्ते! अंगुलिमाल अर्हत्व-प्राप्ति को बतला रहे हैं।" इसे सुन शास्ता ने—"भिक्षुओ! मेरा पुत्र अंगुलिमाल नहीं डरता है, क्षीणाश्रव ऋषभों (साड़ों) के बीच ज्येष्ठ ऋषभ (साँड़) मेरे पुत्र के समान भिक्षु नहीं डरते हैं।" कह कर इस गाथा को कहा—

४२३—उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

जो ऋषभ (=उत्तम), प्रवर (= श्रेष्ठ) वीर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

प्रज्ञा-पूर्ण ब्राह्मण है

(देवहिक ब्राह्मण कथा)

२६, ४०

जेतवन में विहरते समय भगवान् को एक दिन वायु-रोग हुआ। उन्होंने उपवान स्थविर को गर्म-जल लाने के लिए देवहिक ब्राह्मण के पास भेजा।

ब्राह्मण स्थविर के आने पर बहुत प्रसन्न हुआ और शीघ्र ही जल गर्म : रा वहिंगा द्वारा जेतवन लाया तथा उपवन स्थविर को राब का वर्तन भी लाने के लिए दे दिया।

स्थविर विहार में आकर राब को गर्म-जल में घोल कर भगवान् को दिये। उसे पीते ही शास्ता का रोग शान्त हो गया। ब्राह्मण ने भगवान् को अच्छा हुआ देख जाकर पूछा—"भन्ते! किसे दिया हुआ दान महाफलवान् होता है?" तब शास्ता ने—"इस प्रकार के ब्राह्मण को दिया हुआ महाफलवान् होता है" ब्राह्मण को प्रकाशित करते हुए इस गाथा को कहा—

४२४—पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि।
सब्बवोसित वोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥४२॥

जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और अगति (अपाय) को जिसने देख लिया है, जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो चुका है, जिसकी प्रज्ञा पूर्ण हो चुकी है, जिसने सब कुछ अपना पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।



बोधिनी

(शब्दानुक्रम से)

अकिञ्चन—राग, द्वेष और मोह से रहित।

अनुशय—कामराग, भवराग, प्रतिघ (= प्रतिहिंसा), मान, मिथ्या-दृष्टि, विचिकित्सा (= सन्देह) और अविद्या—ये सात अनुशय हैं।

आभास्वर—रूपलोक की एक देवजाति।

आयतन—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन—यह छः भीतरी आयतन है, वैसे ही रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म—यह छः बाहरी।

आर्य—स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, और अर्हत्व को आर्य कहते हैं।

आश्रव—कामाश्रव, भवाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव—यह चार आश्रव हैं। पाँच कामगुण सम्बन्धी राग कामाश्रव है। रूप और अरूप भवों में उत्पन्न होने का छन्दराग, ध्यान की इच्छा, शाश्वत-दृष्टि सहगत उत्पन्न राग, भवों के लिए प्रार्थना भवाश्रव है। पूर्वान्त अपरान्त वाली बासठ प्रकार की दृष्टियाँ दृष्टाश्रव हैं। दुःख दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपदा, पूर्वान्त, अपरान्त पूर्वापरान्त तथा प्रतीत्य समुत्पाद—इन आठ बातों के अज्ञान को अविद्याश्रव कहते हैं। चूँकि यह चारों आश्रव अर्हत् में नहीं होते, इसलिये वह आश्रव-मुक्त कहे जाते हैं।

इन्द्र—यह तावतिंस देवलोक का राजा है। तावतिंस देवलोक में उत्पन्न सभी इन्द्र कहे जाते हैं, फिर भी देवराज इन्द्र जो उस देवलोक का अधिपति होता है, उसे देवेन्द्र शक्र कहते हैं। इन सभी इन्द्रों की आयु दिव्य वर्ष गणना के अनुसार दो हजार वर्ष की होती है, जो मनुष्य लोक की वर्ष गणना से नब्बे लाख वर्ष।

इन्द्रकील— पुर्वकाल में नगर-द्वार के ठीक सामने पत्थर का बहुत बड़ा स्तम्भ खड़ा किया जाता था, जिससे आक्रमण के समय शत्रु द्वार को तोड़ न सके। वह खूब दृढ़ और ठोस होता था। इसी से स्थिरता की उपमा उससे दी जाती थी।

उपधि—स्कन्ध, काम, क्लेश और कर्म ।

ऊर्ध्वस्रोत—यह अनागामी की अवस्था है । मनुष्य-योनि से च्युत होकर वह शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वहीं क्रमशः उच्च से उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर लेता है । इसी से ऊर्ध्व-स्रोत कहते हैं ।

ऋजुभूत—जिनमें किसी प्रकार की कुटिलता नहीं है । स्रोतापन्न से लेकर अर्हत् तक का यह नाम है ।

कायगता-स्मृति—अपने शरीर के विषय में स्मृति । यह शरीर, केश, रोम, नख, दाँत, त्वक्, मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थिमज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा (= तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, उदरस्थ, पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (= वर), आँसू, चर्बी, लार, पोंटा, लसिका, मूत्र और मस्तक में मस्तिष्क—इन बत्तीस गन्दिगियों से भरा हुआ है । इन पर मनन करने से शरीर के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है और मुक्ति की ओर प्रवृत्ति होती है । इन पर मनन करके इनके विषय में सतत जागरूक रहने को कायगता-स्मृति कहते हैं ।

क्षीणाश्रव—जिनके चारों आश्रव क्षीण हो गये हों = अर्हत् ।

छत्तीसस्रोत—अठारह धातु बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से छत्तीस ।

थेरी—स्थविरा, वृद्ध भिक्षुणी ।

नामरूप—व्यक्ति मानसिक और शारीरिक—इन दो अवस्थाओं का पुञ्ज है, उन्हें नाम और रूप कहते हैं । यहाँ जो कुछ सूक्ष्म-पुञ्ज है, वह सब नाम है और जो स्थूल है, वह सब रूप । वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—यह नाम की चार अवस्था है और शेष रूप । इस प्रकार व्यक्ति की अवस्थाओं के साधारणतः पाँच पुञ्ज दीख पड़ते हैं, उन्हें ही 'पञ्च स्कन्ध' भी कहते हैं ।

निर्वाण—परम सुख मोक्ष (= मुक्ति) का ही नाम निर्वाण है । राग, द्वेष, मोह का क्षय ही निर्वाण है । विस्तारपूर्वक जानने के लिए देखो मेरा "चार आर्य सत्य" नामक ग्रन्थ ।

पञ्चस्कन्ध—देखो, 'नामरूप'

प्रतिसम्भिदा—इसका शाब्दिक अर्थ है प्रभेद। जो यहाँ ज्ञानप्रभेद के अर्थ में प्रयुक्त है। यह चार प्रकार की होती है—(१) अर्थ प्रतिसम्भिदा (२) धर्म-प्रतिसम्भिदा (३) निरुक्ति प्रतिसम्भिदा और (४) प्रतिमान प्रतिसम्भिदा। नाना अर्थों का उसके लक्षण-विभावन आदि करने में समर्थ अर्थ-प्रभेद में लगा हुआ ज्ञान अर्थ-प्रतिसम्भिदा है। ऐसे ही धर्म, निरुक्ति (= व्याकरण) और प्रतिमान को भी जानना चाहिये।

प्रातिमोक्ष—भगवान् ने भिक्षुओं को जिन नियमों का पालन करने को आदेश दिया है, उन्हीं के संग्रह को प्रातिमोक्ष (= पातिमोक्ख) कहते हैं। उन नियमों का पालन करना प्रत्येक भिक्षु का परम कर्त्तव्य है।

पाँच नीवरण—कामच्छन्द, व्यापार, स्त्यान-मृद्ध, औद्धात्य-कौकृत्य और विचिकित्सा—यह पाँच नीवरण है। जब तक यह बातें रहती है, तब तक समाधि का लाभ नहीं हो सकता। इसी से इन्हें नीवरण (चित्त का ढक्कन) कहते हैं।

मार—यह तीन प्रकार के होते हैं—(१) क्लेश मार (२) मृत्यु या मरण मार और (३) देवपुत्र मार। लोभ, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, विचिकित्सा, स्त्यान औद्धात्य, अह्री, अन्-अपत्रपा (= असकोच) ते दश क्लेश हैं। इन्हीं को क्लेश-मार कहते हैं। जिस समय और जिस हेतु से आदमी की मृत्यु होती है, उसे मरणमार कहते हैं। देवपुत्र मार कामावचर के छठें देवलोक पर निर्मित वशवर्ती में रहता है, द्रोही राजकुमार की भाँति वहाँ एक प्रादेशिक शासक होता है, इससे सब डरा करते है, क्योंकि यह कुशल-कर्मों का विरोधी है, अधिकांश मारदेवपुत्र च्युत होकर नरक में पड़ते हैं। दूषी आदि मारों की दुर्गति यहाँ द्रष्टव्य है।

मार्ग—इसे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग कहते हैं, जो ये हैं—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वाणी (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीव (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि इनमें पहले दो ज्ञान सम्बन्धी प्रज्ञा हैं, बीच के चार अचार सम्बन्धी शील हैं और अन्तिम दो योग सम्बन्धी समाधि हैं।

मार्ग-फल—यह आठ होते हैं—चार मार्ग और चार फल। जैसे—(१) स्रोतापत्ति मार्ग (२) स्रोतापत्ति-फल (३ सकृदागामी-मार्ग (४) सकृदागामी फल (५) अनागामी मार्ग (६) अनागामी फल (७) अर्हत् मार्ग और (८) अर्हत् फल।

मिथ्या-दृष्टि—आत्मा में विश्वास करना तथा किसी भी पदार्थ को नित्य और सुख करके मानना। शाश्वत दृष्टि और उच्छेद-दृष्टि के साथ ६२ प्रकार की दृष्टियाँ मिथ्या दृष्टि हैं।

शाश्वत और उच्छेद दृष्टि—मारने के बाद कूटस्थ वही स्थिर आत्मा = जीव एक शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है—ऐसी मिथ्या धारणा को शाश्वत दृष्टि कहते हैं और मरने के बाद व्यक्तित्व का लोप हो जाता है, वह नहीं रहता – ऐसी मिथ्या धारणा को उच्छेद दृष्टि कहते हैं। इन दोनों अन्तों को छोड़, बौद्ध दर्शन मध्य का मार्ग बताता है। यह कि, चित्त की संतति प्रतीत्यसमुत्पन्न हो एक योनि से दूसरी योनि में प्रवाहित होती है। जिस प्रकार पहले पहर की प्रदीप शिखा दूसरे पहर में बिल्कुल वही नहीं रहती है और न अत्यन्त भिन्न हो जाती है, उसी तरह जनमने वाला न तो बिल्कुल वही है और न भिन्न; किन्तु उसकर दातम्य संततिगत है।

शून्य और अनमित्त—समाविस्थ हो योगी जब सत्ता मात्र के अनित्य दुःख, अनात्म स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है, तब उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है और वह शरीर त्याग के बाद फिर जन्म ग्रहण नहीं करता। यही अर्हत् का पद है। निर्वाण तो एक ही है, किन्तु प्राप्त करने के मार्ग के भेद से इसके तीन नाम हैं। जिस योनि में अनात्म का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है, उसके इम निर्वाण को 'शून्य' कहते हैं। जिसने अनित्य का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया, उसके इस निर्वाण को 'अनिमित्त' तथा जिसने दुःख का साक्षात्कार करके तृष्णा का प्रहाण किया है, उसके इस निर्वाण को 'अप्रणिहित' कहते हैं।

शैक्ष्य—अर्हत् पद को नहीं प्राप्त हुए स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्व मार्ग शैक्ष्य कहे जाते हैं, क्योंकि अभी उन्हें सीखना है।

श्रामणेर—भिक्षु होने का उम्मेदवार बौद्ध श्रमण, जिसे भिक्षु-संघ ने अभी उपसम्पन्न नहीं किया है।

संयोजन—सत्काम-दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रतपरामर्श, कामराग, रूपराग, अरूपराग, प्रतिघ, मान, औद्धत्य और अविद्या—ये दस संयोजन हैं। जब तक प्राणी इससे बँधा रहता है, तब तक आवागमन के चक्र से नहीं छूटता।

समथ-विपश्यना—पाँच नीवरणों को दूर करके जो समाधि प्राप्त होती है, उसे 'समथ समाधि' कहते हैं और अनित्य, अनात्म, दुःख का विचार कर जो संयोजनों का प्रहाण करता है, उसे 'विपश्यना-समाधि' कहते हैं। पहले को लौकिक और दूसरे को लोकोत्तर समाधि भी कहते हैं।

सम्बोध्यङ्ग—स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीती, प्रश्रब्धि, समाधि और उपक्षा—ये सात सम्बोध्यङ्ग हैं। इन सातों को सिद्ध करके ही कोई परम-ज्ञान का लाभ कर सकता है। सम्बोधि (=ज्ञान) का अङ्ग होने से ही इन्हें सम्बोध्यङ्ग कहते हैं।

विशेष

९७ वीं गाथा दो अर्थ वाली है। इसका शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है—"जो श्रद्धाहीन अकृतज्ञ, सेंध मारने वाला, अवकाशहीन, निराश है, वही उत्तम पुरुष है।" किन्तु जो यथार्थ अर्थ है वह गाथा के साथ दिया गया है।

मिलाओ-

गाथा १०९ : मनु, २, १११

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।

गाथा १२९ : हितोपदेश १, २

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः॥

गाथा १३१ : मनु, ५, ४५

यौऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥

महाभारत—

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।
आत्मनः सुखमिच्छन् स प्रेत्य नैव सुखी भवेत् ॥

गाथा १६० : भगवद्‌गीता ६. ५

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

गाथा २६० : मनु, २

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।

गाथा २८ : योगभाष्य १, ४७

प्रज्ञाप्रासादमारुह्याऽशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्रज्ञोऽनुपश्यति ॥



गाथा-सूची



राष्ट्रीय-गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे भारत-भाग्यविधाता ॥
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंग ।
बिन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधि तरंग ॥
तव शुभ नामे जागे, तब शुभ आशिष मागे, गाहे तव जय गाथा ।
जन-गण-मंगलदायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता ॥
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे ॥



पुस्तक प्राप्तिस्थानम्

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटा प्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

पो० बा० नं० ६७

कचौड़ी गली, वाराणसी ।

आवरण मुद्रक : Ⓚ खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन, वाराणसी-१